जैनागम नवनीत
आगम निबंध माला
[भाग- ४]

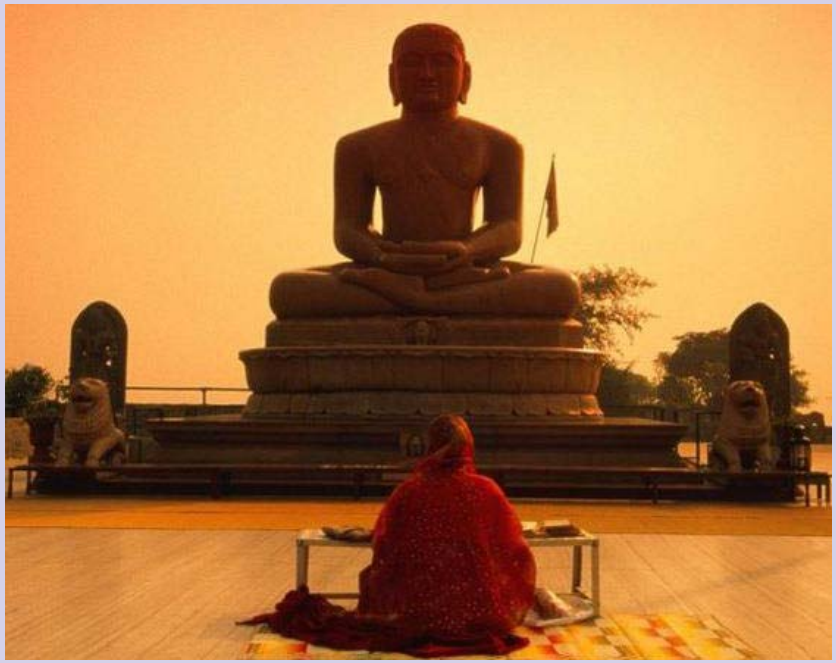

साहित्य सूचि

[इन्टरनेट पर उपलब्ध-जैन ई लाइब्रेरी तथा आगम मनीषी]

हिन्दी साहित्य :-

१ से ३२	आगम सारांश हिंदी
३३ से ४०	(१) गुणस्थान स्वरूप (२) ध्यान स्वरूप (३) संवत्सरी विचारणा (४) जैनागम विरूद्ध मूर्तिपूजा (५) चौद नियम (६) १२ व्रत (७) सामायिक सूत्र सामान्य प्रश्नोत्तर युक्त (८) सामायिक प्रतिक्रमण के विशिष्ट प्रश्नोत्तर (९) हिन्दी में श्रमण प्रतिक्रमण (१०) श्रावक सविधि प्रतिक्रमण
५१ से ६०	जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर भाग-१ से १०
६१-६२	जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर विविध दो भागों में
६३-६४	आचारांग प्रश्नोत्तर दो भागों में
६५	ज्ञानगच्छ में.....प्रकाशगुरु का शासन.....
६६	स्था. मान्य ३२ जैनागम परिचय एवं साहित्य समीक्षा
६७(१०१)	जैनागम नवनीत निबंधमाला भाग-१
६८(१०२)	जैनागम नवनीत निबंधमाला भाग-२
६९(१०३)	जैनागम नवनीत निबंधमाला भाग-३
७०(१०४)	जैनागम नवनीत निबंधमाला भाग-४

गुजराती साहित्य :-

१ से ९	जैनागम सुत्तागमे गुजराती लिपि में- ९ भागों में
१०	जैन श्रमणों की गोचरी, श्रावक के घर का विवेक
११	जैनागम ज्योतिष गणित एवं विज्ञान
१२ से १९	जैनागम नवनीत-मीठी मीठी लागे छे महावीरनी देशना(८)
२०-२९	जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर भाग-१ से १०
३०-३१	(१) १४ नियम, (२) १२ व्रत
३२	जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर विविध भाग-१
३३-३४	आचारांग प्रश्नोत्तर दो भागों में
३५(१०५)	स्था. मान्य ३२ आगम परिचय एवं साहित्य समीक्षा (प्रेस में)

(योग-७० + ३५ = १०५)

जय महावीर

जय गुरु समरथ

जय गुरु चम्पक

जैनागम नवनीत

आगम निबंध माला

[भाग–४]

आगम मनीषी

श्री त्रिलोकचन्द जी जैन

राजकोट

आगम निबंध माला : भाग–४

प्रकाशक : श्री जैनागम नवनीत प्रकाशन समिति, राजकोट

[पुष्पांक–१०४]

सम्पादक : आगम मनीषी श्री त्रिलोकचन्दजी जैन

प्रकाशन समय : ०१।१।२०१५

प्रथम आवृत्ति : प्रत : १०००

मूल्य : 50-00 पाँच पुस्तकों का सेट : 250-00

ऐच्छिक उदारता–पुस्तक मिलने पर आप पुस्तक की कीमत ५०/– अथवा एक साथ पाँच भागों की रकम २५०/– अथवा कोई भी सहयोग राशि भेजना चाहें तो सूचित खाते में भेज सकेंगे । मनीओर्डर भी स्वीकार्य होगा परंतु मनीओर्डर में प्राप्तकर्ता का नाम–गोविंदभाइ पटेल लिखेंगे । एड्रेस और A/c No निम्नोक्त रहेगा ।

A/c No. : 18800100011422 Tilokchand Golchha
Bank Of Baroda, Rajkot (Raiya Road)

प्राप्तिस्थान : श्री त्रिलोकचन्द जैन
ओम सिद्धि मकान
६, वैशालीनगर, रैया रोड,
राजकोट–360 007 (गुजरात)
Mo. 98982 39961 / 98980 37996

EMAIL : agammanishi@org
www.agammnishi.org / jainlibrary.e.org

कोम्प्युटराईज–	डी. एल. रामानुज,	मो.९८९८० ३७९९६
फोरकलर डिजाइन–	हरीशभाई टीलवा,	मो.९८२५० ८८३६१
प्रिन्टिंग प्रेस–	किताबघर प्रिन्टरी	मो.९८२४२ १४०५५
बाईन्डर–	हबीबभाई, राजकोट	मो.९८२४२ १८७४७

प्रकाशकीय-संपादकीय

मानव जीवन अनेक उतार-चढावों का पिटारा है । जो इसमें संभल संभलकर चले वही श्रेष्ठ लक्ष्य को पा सकता है अन्यथा कभी भी भटक सकता है । वैसी स्थिति में आगमज्ञान प्रकाश ही जीवन का सही मार्गदर्शक बन सकता है ।

इस ज्ञान श्रृंखला में पाठकों को ३२ आगम सारांश एवं ३२ आगम प्रश्नोत्तर के बाद अब नया अवसर आगमिक निबंधों का संग्रह-निबंध निचय अनेक भागों के रूप में हस्तगत कराया जायेगा । जिसमें आगम सारांश और आगम प्रश्नोत्तर की पुस्तकों में से ही विषयों को उट्टंकित कर निबंध की शैली में प्रस्तुत किया जायेगा ।

ये निबंध पाठकों, लेखकों, मासिकपत्र प्रकाशकों एवं जीवन सुधारक जिज्ञासुओं को उपयोगी, अति उपयोगी हो सकेंगे । इसी शुभ भावना से आगम ज्ञान सागर को इस तीसरी निबंध श्रेणी में तैयार किया गया है ।

(१) स्वाध्याय संघों के सुझाव से----- आगम सारांश

(२) आचार्यश्री देवेन्द्रमुनिजी की प्रेरणा से---- आगम प्रश्नोत्तर

(३) नूतनपत्रिका संपादक से प्रेरणा पाकर--- आगम निबंध

आशा है, आगम जिज्ञासु इस तीसरे आगम उपक्रम से जरूर लाभान्वित होंगे ।इस निबंध माला के प्रथम, द्वितीय और तृतीय भाग प्रकाशित हो चुके है । अब यह चौथा भाग पाठकों के करकमलों में पहुँचाया जा रहा है । इसमें भगवती शतक-१३से संपूर्ण ज्ञाता आदि अंगसूत्र, उपांग आदि सूत्र तक में से कुछ विषयों का संकलन किया गया है तथा गुणस्थान स्वरूप,ध्यान स्वरूप, १४ नियम, १२ व्रत, विविध प्रश्नोत्तर आदि विषय भी लिये हैं ।

इसमें पाठकों को सूत्रस्थल जानना हो तो अनुक्रमणिका में हमने सूत्र स्थल दे रखे हैं, वहाँ देखें ।

आगम मनीषी तिलोकचंद जैन

अनुक्रमणिका

निबंध	विषय	पृष्टांक
१	व्यक्ति के प्रति रंजभाव: अभीचिकुमार (श.१३)	११
२	लवसत्तम का अर्थ (श.१४)	१४
३	अंबड सन्यासी १०० घर में पारणा (श.१४)	१५
४	अव्याबाध देव तथा शक्रेन्द्र की क्षमता (श.१४)	१५
५	जृंभक देव के प्रकार और निवास (श.१४)	१६
६	गौशालक को सही सलाह नहीं (श.१५)	१६
७	ढोंगी झूठे कितने सिद्धांत घडे (श.१५ प्र.१२)	१७
८	भगवान का विचरण एवं तपस्या (श.१२ प्र.१३)	१८
९	तपस्या फल एवं उससे प्रायश्चित्त उतारना (श.१६)	१९
१०	स्वप्न एवं फल निर्देश (श.१६/६)	२०
११	भवी द्रव्य नारकी आदि कौन ? (श.१८)	२२
१२	सौमिल ब्राह्मण कौन-कौन कहाँ गये ? (श.१८/१०)	२३
१३	मोक्ष फलदाई ४९ बोल (श.१७)	२५
१४	शक्रेन्द्र के विशेषणार्थ एवं पूर्व भव (श.१८)	२५
१५	निश्चयनय, व्यवहारनय से पदार्थों में वर्णादि (श.१८/६)	२६
१६	अस्तिकाय का प्रश्न राजगृही में मद्दुक से (श.१८/७)	२७
१७	देवों के पुण्य क्षय की तरतमता (श.१८/७)	२८
१८	श्रुत विच्छेद आदि किसके कब कितना (श.२०/८)	२९
१९	आकाश के पर्यायवाची (श.२०/२)	२९
२०	जंघाचारण और विद्याचारण (श.२०, प्र०९,१०)	३०
२१	सोपक्रमी निरुपक्रमी आयुष्य (श.२०, प्र०११)	३२
२२	लोकालोक में श्रेणियाँ :जीवाजीव की गति (श.२५/३)	३४
२३	काल की इकाइयाँ कहाँ तक (श.२५/५)	३६

२४	जन्म नपुंसक की मुक्ति (श.२६/२)	३६
२५	व्यवहार राशि अव्यवहार राशि (श.२८)	३७
२६	सम्यकदृष्टि और लेश्या में आयुबंध (श.३०)	३८
२७	अच्छेरा, स्त्री तीर्थंकर एवं दिगंबर सोच(ज्ञाता.अ.८)	३९
२८	आगमिक श्रावक और समुद्रों की यात्रा (ज्ञा.अ.८)	४३
२९	कारण से रुके संत के साथ अन्य का कल्प (ज्ञा.५,प्र.७)	४४
३०	ज्ञातासूत्र शैलक अध्ययन और दो प्रतिक्रमण (ज्ञा.५,प्र.८)	४५
३१	अरणक श्रावक : मिथ्यात्व की प्रवृतिएँ (ज्ञा.८,प्र.६)	४६
३२	अज्ञानी भोले जीव : कर्म बंध (ज्ञा.१६,प्र.२)	४८
३३	दानशाला में जैन श्रमण गोचरी (ज्ञा.१६,प्र.४)	४८
३४	विराधक संयम और दूसरा देवलोक कैसे ? (ज्ञा.१६,प्र.५)	४८
३५	द्रौपदी और जिनपडिमा पूजा (ज्ञा.१६,प्र.६)	४९
३६	महाभारत की लडाई जुगार आदि (ज्ञा.१६,प्र.१२)	५०
३७	विगय सेवन, दवा सेवन और संयम मार्ग (ज्ञा.१९,प्र.२)	५१
३८	श्रावक को ज्ञान वृद्धि : योग्य सुझाव (उपा.प्र.१४)	५१
३९	पाँच सौ हलवा और दिशा व्रत (उपा.प्र.१६)	५२
४०	भिक्षुपडिमा और ११अंगों का ज्ञान (अंतगड)	५३
४१	गौतमादि १८ सगे भाई नहीं (अंतगड)	५४
४२	४५ आगम और प्रकीर्णकों की अनिश्चितता (प्रश्न व्या.)	५८
४३	सशरीरी साधु का संपूर्ण अहिंसकपना कैसे ? (प्र.व्या.प्र.६)	६०
४४	गाँवों मे १, नगरों में ५ रात रहने का मतलब (प्र.सं.-५)	६१
४५	किन श्रमणों को चोर कहा जाना (प्र.सं.-५)	६२
४६	साधु का कुछ भी देखने जाना (विपाक-१)	६२
४७	सुपात्र दान से आयुबंध संबंधी विचारणा (सु.वि.)	६३
४८	गोचरी के समय श्रावक का विनय व्यवहार (सु.प्र.८)	६३
४९	संयम स्वीकार के साथ अध्ययन अध्यापन (सु.वि.)	६४
५०	देवी देवता की मान्यता पूजा : मिथ्यात्व (वि.परि.)	६४

५१	मृत कलेवर को प्रणाम : मिथ्यात्व (वि.परि.)	६५
५२	सिद्धों का सुख स्वरूप (औपपातिक)	६७
५३	पुहुत्त-पृथक्त्व-प्रत्येक-अनेक की विचारणा (जीवाभि.)	६८
५४	आएसेणं(अपेक्षा से)शब्द संबंधी विचारणा (जीवाभि.)	७१
५५	एक समय की जघन्य स्थिति कहाँ कैसे ? (जीवाभि.)	७४
५६	टीकाओं, व्याख्याओं में छाद्मस्थिक दोष (जीवाभि.)	७७
५७	पाँचवें और सातवें गुणस्थान में योग (जीवाभि.)	८४
५८	ढाई उद्धार सागरोपम का अर्थ (जीवाभि.)	८५
५९	देवों का क्षेत्रानुपात-अल्पबहुत्व विचारणा (प्रज्ञा.)	८५
६०	श्वासोश्वास का कालमान या अंतर (प्रज्ञा.)	८६
६१	असंख्य अनंतकाल कब कैसे ? (प्रज्ञा.)	८९
६२	आयोजीकरण क्रिया स्वरूप (प्रज्ञा.)	८९
६३	समुद्घात-७ का स्वरूप (प्रज्ञा.)	९०
६४	योग निरोध स्वरूप और मुक्ति (प्रज्ञा.)	९६
६५	भगवान ऋषभदेव की शादी (जंबू.)	९७
६६	पाँचवें आरे के १० बोल विच्छेद (जंबू.)	९७
६७	उत्सर्पिणी का प्रारंभ (जंबू.)	९८
६८	चक्रवर्ती के १४ रत्नों का उत्पत्ति स्थान (जंबू.)	९८
६९	चक्रवर्ती की संपूर्ण संपदा (जंबू.)	९९
७०	सिद्धायतन शब्द की सार्थकता एवं सिद्ध शिला (जंबू.)	१००
७१	ज्योतिष मंडल संबंधी ज्ञान (जंबू. वक्ष-७)	१०१
७२	जंबूद्वीप में तीर्थंकर की संख्या (जंबू.)	१०४
७३	जंबूद्वीप ऊँचा, नीचा, ऊँडा आदि(जंबू.)	१०५
७४	सिद्धायतनों की प्रक्षेप प्रवृति (जंबू.)	१०५
७५	सूर्यप्रज्ञप्ति के प्रथम सूत्र का सही अर्थ (ज्योति.)	१०७
७६	सूर्य के मंडलों की संख्या और उसका भ्रमण (ज्योति.)	१०८

७७	सूर्य वर्ष का प्रारंभ दिन (ज्योति.)	१०९
७८	दो सूर्यों की दिन-रात करने की व्यवस्था (ज्योति.)	११०
७९	पोरुषी छाया का मतलब तथा पाठ शुद्धि (ज्योति.)	१११
८०	तिथियों की वध-घट (ज्योति.)	१११
८१	प्राभृत १८,१९,२० में कहे विशेष तत्त्व (ज्योति.)	११२
८२	सूर्योदय तिथी संबंधी पर्व क्यों नहीं (ज्योति.)	११८
८३	चंद्रप्रज्ञप्ति की विचारणा(ज्योति.)	११९
८४	नक्षत्र संबंधी ज्ञान १२ द्वारों से(ज्योति.परि.)	१२०
८५	प्रक्षिप्त पाठ अप्रक्षिप्त पाठ विचारणा(ज्योति.परि.)	१२३
८६	ध्यान स्वरूप(भगवती-२५ परि.)	१२६
८७	गुणस्थान स्वरूप(जीवा.परि.)	१४९
८८	पात्र प्रतिलेखन दो बार(छेद.परि.)	१६२
८९	सूई आदि के उत्तरकरण के सूत्रों का मर्म(छेद.परि.)	१६८
९०	धातु के उपकरण ग्रहण धारण संवाद(छेद.परि.)	१६९
९१	नियाग पिंड : काल्पनिक संवाद (दशवै.परि.)	१७३
९२	आवश्यक संबंधी विशेष संग्रहणीय पाठ(आव.परि.)	१७८
९३	तीन मनोरथ का विस्तार(उपा.परि.)	१८२
९४	चौदह नियम (२५ नियम) का सरलज्ञान(उपा.परि.)	१८५
९५	बारहव्रत धारण स्पष्ट एवं सरल विधि(उपा.परि.)	१९४
९६	व्रत धारण की सरल संक्षिप्त विधि(उपा.परि.)	२०६
९७	विविध प्रश्नोत्तरों का सार संकलन(नवनीत प्र.)	२१२
९८	सामाजिक व्यवस्था संबंधी प्रश्नोत्तर(नवनीत प्र.)	२२५
९९	सामायिक सूत्र प्रश्नोत्तर : प्राथमिक श्रेणी(आव.परि.)	२३६
१००	वंदना, काउसग्ग और पौषध के दोष(आव.परि.)	२५०

अपनी बात

(स्वास्थ्य सुधार एवं प्रायश्चित्त)

आगम मनीषी मुनिराज श्री के विचित्र कर्मोदय से २०११ के ५ जनवरी को अचानक औपद्रविक पेट में तीव्र वेदना होने से एवं ६ महिनों में कोई उपचार नहीं लगने से तथा १५ किलो वजन घट जाने से, जिससे संयम के आवश्यक कार्य हेतु चलना आदि भी दु:शक्य हो जाने से १२ जुलाई २०११ को श्रावक जीवन स्वीकार करना पडा । पुन: ५ जनवरी २०१३ को १६ घंटे तक विचित्र उल्टीयें एवं दस्ते होकर उपद्रविक रोग पूर्ण शांत हो गया। दो महिने में कमजोरी भी कवर हो गई । धीरे-धीरे २०१४ जनवरी तक स्वास्थ्य एवं वजन पूर्ववत् हो जाने से एवं पूरी हिंमत आ जाने से आगम संबंधी प्रकाशन का कार्य जो अवशेष था उसे पूरा करते हुए अब आगे २०१६के जनवरी से प्रायश्चित्त रूप में (प्रायश्चित्त पूर्ण स्वस्थ होने पर ही किया जा सकता है इसलिये) एक वर्ष की निवृत्ति युक्त संलेखना तथा दिसंबर २०१६में दीक्षा (कदाच १-२ महिना आगे-पीछे) *तथा संथारा ग्रहण कर आत्मशुद्धि एवं साधना आराधना का प्रावधान रखा है । संलेखना के एक वर्ष के काल में चार खंध पालन, राजकोट से बाहर जाने का त्याग, प्राय: विगय त्याग या आयंबिल उपवास आदि, मोबाइल त्याग, मौन आदि नियम स्वीकार । अंत में जिन संतों के पास जिस क्षेत्र में दीक्षा लेना होगा वहाँ वाहन द्वारा पहुँच कर पाँच उपवास के साथ दीक्षा संथारा ग्रहण किया जायेगा ।*

व्याधि :- पेट में कालजे की थोडी सी जगह में हाईपावर अे.सी.डी.टी, सांस और हार्ट (धडकन) ये तीन रोग एक साथ थे, असह्य वेदना सप्टेम्बर-२०११ तक अर्थात् ९ महिना रही थी ।

: निवेदक :

डी.एल.रामानुज, मो.९८९८० ३७९९६

निबंध-१

व्यक्ति के प्रति रंजभाव : अभिचि श्रावक

किसी भी एक या अनेक व्यक्ति से रखा गया र जभाव वैमनस्य, अनमनापन व्यक्ति की धर्म आराधना को विनष्ट-विफल बनाता है । क्यों कि एक वर्ष के बाद भी इस प्रकार का रखा गया वैमनस्य अन तानुब धी कषाय में समाविष्ट होता है, जो मिथ्यात्व मूलक होता है । ऐसे दीर्घ कषाय वालों की समकित नष्ट हो जाती है । उनका किया गया व्रत, महाव्रत, स लेखना, स थारा आदि का आचरण भी सफल नहीं होता है।

भगवती सूत्र शतक-१३ अभिचि श्रावक के कथानक से भी यही बोध मिलता है । जैन कहे जाने वाले और अपने को श्रावक साधु की कोटी में मानने वाले अनेक साधक पक्खी, चौमासी, स वत्सरी कितनी ही बीत जाय, ऊपरी खमत खामणा कर लेते हुए भी एक स प्रदाय-स घ के साधु-श्रावक दूसरे स घ-स प्रदाय से वैरझेर, मन-मुटाव, ईर्ष्या-द्वेष, तिरस्कार भाव आदि को किंचित् भी नहीं मिटाते हुए उल्टा बढाते ही जाते हक्त । उसी प्रकार कई स सारी लोग भी अपने भाई, परिवार, पडोसी आदि के वैर-झेर को मिटा कर समन्वय करते ही नहीं है और अन्य लोगों से या प्रतिक्रमण में जोर-जोर से और पत्रिकाओं के माध्यम से दिखावे के खमत-खामणा करते हक्त तथा अपने श्रावक, सम्यग्दृष्टि या साधु होने का स तोष करते हैं पर तु वास्तव में ऐसे साधक अपनी आत्मा को, ***अन तानुब धी कषाय के वशीभूत होकर एव सच्चे अर्थ में मिथ्यात्व दशा में अनुगमन करते हुए*** धोखा देते हक्त । ऐसे साधकों में समकित भी मूल में नहीं रहती है। पढें- यह अभिचिकुमार का जीवन...

घटना ऐसी बनी थी कि उदायन राजा भगवान के उपदेश से विरक्त बने । पुत्र को राज्य देकर दीक्षा लेने का विचार भगवान के समक्ष रखकर घर गये । फिर विचार आया कि- "पुत्र भी राज्य में फँस जायेगा तो नरकगामी बनेगा । अत: उसे राज्य नहीं देकर भाणेज केशिकुमार, जो उसके पास ही बडा हुआ था, शिक्षित और योग्य बना था, उसे राज्य पर आसीन करना चाहिये ।" इन विचारों के दृढ हो जाने पर उदायन ने वैसा ही किया और दीक्षा लेकर आराधना करके मोक्ष भी चले गये ।

उस समय तो पुत्र अभिचिकुमार शर्म से कुछ बोल नहीं सका । किंतु समय जाने पर उसे पिता के इस कृत्य पर बहुत ही र जभाव बढने लगा । वह अब वहाँ रह भी नहीं सकता था । आखिर अपना परिवार लेकर वह चल दिया और राजा कोणिक के पास च पानगरी में आकर रहने लगा । भगवान महावीर का पदार्पण च पा में होता ही था । वह व्रतधारी श्रमणोपासक बना । अनेक वर्ष तक श्रावकव्रत तथा तप-त्याग बढाते हुए अ त में विधि सहित स लेखना स थारा किया । बाह्यरूप से सबसे खमत खामणा की औपचारिकता तो स थारे की विधि में, पच्चक्खाण के पाठ में आ ही जाती है । शुद्ध भावों से शारीरिक समाधिपूर्वक १५ दिन स थारा चला ।

इतना सब कुछ करते हुए भी उस श्रावक ने अपने पिता के द्वारा किये गये व्यवहार के प्रति वैमनस्य भावों को हृदय से नहीं निकाला। श्रावक के किसी व्रत में या स थारे में कोई भी दोष सेवन नहीं किया तो भी उसकी गति मिथ्यात्वी की गति हुई । वह मर कर **आतापा** नामक असुर जाति के देवों में उत्पन्न हुआ । उसकी करणी(क्रिया) अनुसार तो वैमानिक देव में ही उसकी गति होनी चाहिये थी किंतु पिता के प्रति र जभाव-मनमुटाव को दूर नहीं किया तो उसकी समस्त दिखने वाली आराधनाएँ विराधना रूप ही बनी ।

इसलिये धर्म की आराधना के इच्छुक साधक को अपने मन में किसी के प्रति भी र जभाव अनमनापन नहीं रखकर, सरल, स्वच्छ, नम्र व्यवहार बना लेना चाहिये । पर तु अनमना, अबोला कायम रखना या वैर विरोधभाव बढाते ही रहना, भले चौमासी प्रतिक्रमण करलो या स वत्सरी प्रतिक्रमण, अपने मन का रागद्वेष का ढर्रा ज्यों का त्यों चलाते रहना, एक स प्रदाय के श्रावक दूसरी स प्रदाय के श्रावक, साधु, स घ आदि से जलन, ईर्ष्या बढाते जाय, उनके मिथ्यात्व का अ त भी नहीं आ सकता है तो फिर समकित, श्रावकपन और साधुपन तो दुर्लभ ही समझना चाहिये ।

इसी हेतु से जिनशासन में व्रत शुद्धि और कषाय मुक्ति के लिये साधुओं के उभयकाल प्रतिक्रमण आवश्यक रखा गया है और व्रतधारी श्रावकों के पाक्षिक प्रतिक्रमण आवश्यक है एव धर्मी सामान्य श्रावकों के स वत्सरी प्रतिक्रमण आवश्यक है । यह तीनों कोटी के साधकों के लिये प्रतिक्रमण पूर्ण सावधानी और सफल हेतुपूर्वक होने चाहिये । अन्यथा

प्रतिक्रमण तो यथासमय कर लेवे पर तु भावों की पवित्रता नहीं करे और कषायों के ढर्रे ज्यों के त्यों आत्मा में रखे तो प्रतिक्रमण का सच्चा फल मिल नहीं सकता एव समकित भी रह नहीं सकती ।

साधु के स ज्वलन कषाय को ठाणा गसूत्र में पानी की लकीर की उपमा दी गई है । उसका कषाय सुबह शाम के प्रतिक्रमण के आगे चल नहीं सकता और चलावे तो साधुपन रहता नहीं है । श्रावक के कषाय को बालु रेत की लकीर की उपमा दी गई है । वह लकीर १५ दिन से ज्यादा नहीं रहती है, हवा चलने से, लोगों के आवागमन से समाप्त हो ही जाती है । उसी तरह श्रावक का कषाय-किसी के प्रति र जभाव, वैर-विरोधभाव पाक्षिक प्रतिक्रमण से आगे नहीं चल सकता । यदि कोई चलावे तो उसका गुणस्थान छूट जाता है ।

इसीतरह सम्यग्दृष्टि का कषाय र जभाव आदि स वत्सरी प्रतिक्रमण के बाद नहीं चल सकते । जो लोग वर्षों तक भी किसी के साथ र जभाव, वैमनस्य, वैर-झेर नहीं छोडते; धर्मस घों में भी ऐसे झगडे, वैमनस्य चलते रहते हैं तो उसमें समाविष्ट होने वाले सभी साधु-साध्वियाँ एव गृहस्थ अपनी समकित से, चौथे गुणस्थान से च्युत हो जाते हक्त। भले ही वे अपने को कुछ भी समझे या स तोष माने पर तु यह कषाय के परिणाम वाला सिद्धा त तो अपना काम करता ही है । भगवान महावीर स्वामी की हाजरी में, उनका १२ व्रतधारी श्रावक १५ दिन के स थारे से काल करके भी धर्म से अनुत्तीर्ण-नापास हो जाता है । यह इस अभिचिकुमार के आगम वर्णन से स्पष्ट होता है । **सार यही है कि** सरलता, नम्रता, क्षमा आदि गुण धर्म में मौलिक गुण है । इन्हें धारण करते हुए किसी के प्रति भी वैमनस्य बन जाय तो उसे कर्म सिद्धा त, वैराग्य तथा उपरोक्त आगम वर्णन को स्मृति में लेकर शुद्ध पवित्र हृदयी बन जाना चाहिये । **'सभी को माफ करते चलो और अपना हृदय साफ बनाते चलो'** यही ज्ञान का और साधनाओं का परम रस है, मुक्ति की साधना में सफल सहायक पोइ ट-तत्त्व है । मन में किसी के प्रति **खटक** रख ली तो अपनी धर्म आराधना **अटक** जायेगी, रुक जायेगी, यह ध्रुव सत्य है ।

प्रश्न-१४ : अभिचिकुमार विराधक हुआ तो भी देव बना और एक भव करके मोक्ष कैसे जायेगा ?

उत्तर- कक्षा में एक लडका पास होता है, एक नापास होता है; फिर भी नौकरी-व्यापार में कोई भी आगे बढ सकता है किंतु नापास वाला नापास ही कहलायेगा । अभिचिकुमार का स सार सीमित था, पापानुब धी रौद्र परिणाम थे नहीं । माया-प्रप च के भाव थे नहीं, अत: नरक, तिर्यंच गति में नहीं गया । फिर भी व्रत-प्रत्याख्यान, स थारा आदि श्रेष्ठ साधनाए ँ होते हुए भी वह धर्म की परीक्षा में नापास होने वाली गति में गया, पास नहीं कहलाया ।

प्रश्न-१५ : तीर्थंकर भगवान ने अभिचिकुमार को श्रावक बनाया तब यह बात नहीं समझाई ?

उत्तर- छद्मस्थों का व्यवहार पुरुषार्थ प्रधान होता है और सर्वज्ञों का या विशिष्ट ज्ञानियों का व्यवहार ज्ञानप्रधान होता है । भगवान ने कोणिक को या चेडा राजा को अथवा दोनों इन्द्रों को भी स ग्राम नहीं करने हेतु कोई आदेश नहीं दिया । गौशालक को भी शिष्य बनाकर अपने साथ रखा था जो स्वय बाद में झूठा ही २४ वाँ तीर्थंकर बन गया था । इत्यादि कितनी ही घटनाएँ होनी होती है, उसमें ज्ञानी ज्ञाता दृष्टाभाव रखते हक्त । वे सागरवर ग भीरा होते हक्त, तभी उनका ज्ञान स्थिर रहता है । उनके आचरण में हम छद्मस्थों का तर्क कोई अर्थ नहीं रखता है।

अत: उदायन राजा और अभिचिकुमार को भगवान ने कोई आदेश-निर्देश नहीं किया था ।

निबंध-२

लवसत्तम का अर्थ

जो देव पूर्व भव में सात लव जितनी उम्र ज्यादा होती तो मोक्ष चले जाते; ऐसे देवों को शास्त्र में लवसत्तम देव कहा गया है । सर्वार्थसिद्ध विमान के सभी देव लवसत्तम देव कहे जाते हक्त । वे सभी एक मनुष्य भव करके मोक्ष जाने वाले होते हक्त । **एक लव** एक सेक ड से बडा और एक मिनट से छोटा होता है । ४८ मिनट(मुहूर्त) में ७७ लव होते हक्त । ३३ सागरोपम की उम्र में भोगने योग्य पुण्यांशों का तप-स यम से७ लव में क्षय हो सकता है । जिस तरह सात पीढी चलने वाले धन का प्रच ड अग्नि द्वारा अल्प समय में नाश हो सकता है । वैसे ही ३३ सागर के योग्य पुण्यकर्म, ७ लव के जितने समय में ध्यान-तप की अग्नि में क्षय हो जाते हक्त ।

चार अनुत्तर विमान के देव लवसत्तम नहीं होते हक्त । उनकी ३१ सागर से ३३ सागर की स्थिति पूर्ण होने पर वे एक भव या उत्कृष्ट १३ भव करके मुक्त होते हक्त । वे चारों अनुत्तर विमान के समस्त देव यदि पूर्व भव में दो दिन की उम्र अधिक होती तो एक छठ-बेले की तपस्या से स पूर्ण कर्म क्षय करके मोक्ष चले जाते । सर्वार्थसिद्ध और ४ अनुत्तर विमान के देवों की आपस में यह भिन्नता यहाँ सातवें उद्देशक में दर्शाई गई है । यों पाँचों ही अणुत्तर विमान कहलाते हक्त । जहाँ स पूर्ण लोक की अपेक्षा सर्वोत्तम, श्रेष्ठ, श्रेष्ठतम वर्ण, ग ध, रस, स्पर्श होते हक्त । उनसे अधिक ऊँचे शब्दादि विषय अन्यत्र कहीं भी नहीं होते हक्त । इसलिये उन्हें अनुत्तर देव और उनके स्थान अनुत्तर विमान कहे जाते हक्त ।

निबंध-३

अंबड सन्यासी १०० घर में

प्रस्तुत उद्देशक-७ में अ बड के सातसो शिष्यों सहित भगवान के पास श्रावक व्रत स्वीकार करने का, ७०० शिष्यों का ग गा नदी की रेत में स थारा करने का, अ बड का १०० घर में वैक्रिय लब्धि से एक साथ भोजन करने आदि का विस्तृत वर्णन था किंतु औपपातिक सूत्र की रचना हो जाने पर वहाँ यह समस्त वर्णन होने से यहाँ इस उद्देशक में लेखनकाल में औपपातिक का निर्देश करके स क्षिप्त कर दिया गया है । अ बड का जीव पाँचवें देवलोक के बाद महाविदेह क्षेत्र में चारित्र अ गीकार करके मुक्त होगा ।

निबंध-४

अव्याबाध देव और शक्रेन्द्र की विशिष्ट क्षमता

सातवें लोका तिक देव अव्याबाध देव है । वे अपनी दैविक शक्ति से किसी व्यक्ति की आँखों की पलकों पर ३२ नाटक दिखा सकते हक्त । ऐसा करते हुए भी उस व्यक्ति को किंचित् भी बाधा-परेशानी नहीं होने देते हक्त ।

शक्रेन्द्र अपनी वैक्रिय शक्ति से किसी व्यक्ति का शिरछेदन कर चूरा-चूरा करके कम डल में भर सकते हक्त और तत्काल पुन: जोड कर रख सकते हक्त । ऐसा सब इतनी शीघ्रता व सफाई के साथ करते हक्त कि उस पुरुष

को किंचित् भी तकलीफ नहीं होने दे । यह दैविक शक्ति क्षमता दर्शाई गई है । वर्तमान में वैज्ञानिक साधनों से ऐसा बहुत कुछ होने लगा है पर तु उसमें किंचित् भी तकलीफ न हो यह बात नहीं है ।

निबंध-५

जृंभक देव के प्रकार और निवास

चार जाति के देवों में जृ भक देवों का समावेश व्य तर देवों में होता है । ये देव क्रीडा में एव मैथुन सेवन प्रवृत्ति में आसक्त बने रहते हक्त । ये तिरछे लोक के वैताढ्य पर्वतों पर रहते हक्त और नीचे भी आते रहते हक्त । ये जिस मानव पर प्रसन्न हो जाय तो उसे धन माल आदि से भरपूर कर देते हक्त और जिस पर रुष्ट हो जाय तो उसे कई प्रकार से हानि पहुँचाते हक्त। ये एक प्रकार के व्य तर जाति के देव ही हक्त । १५ कर्मभूमि के क्षेत्रों के वैताढ्य पर्वत पर एव देवकुरू उत्तरकुरू क्षेत्र के क चनगिरि पर्वतों पर तथा चित्र, विचित्र, यमक नामक पर्वतों पर रहते हक्त । इनकी एक पल्योपम की उम्र होती है ।

इन देवों का मनुष्य लोक के आहार, पानी, फल, फूल आदि पर अधिकार होता है । उनमें हानि वृद्धि कर सकते हक्त । इनके दस नाम से ही इनके कार्य स्पष्ट होते हक्त । यथा- (१) अन्नजृ भक (२) पान जृ भक (३) वस्त्रजृ भक (४) लयन(मकान)जृ भक (५) शयनजृ भक (६) पुष्पजृ भक (७) फलजृ भक (८) फल-पुष्पजृ भक (९) विद्या जृ भक (१०) अव्यक्त जृ भक- सामान्य रूप से सभी पदार्थों पर आधिपत्य रखने वाले अव्यक्त जृ भक देव होते हक्त ।

निबंध-६

गौशालक को सही सलाह क्यों नहीं मिली

प्राय: करके एक सरीखे मिथ्यात्व अज्ञान के उदय वालों का समूह बन जाया करता है । सभी अपने समूह की खामियाँ निभाने के मानस वाले ही प्राय: होते हक्त । कोईक सत्यनिष्ठ प्रकृति का मानव हो तो वह ऐसे स घ में से निकल जाता है । अत: गोशालक ने जो मन भाया वह चलाया, खोटे निरूपण किये, कल्पित बातें बनाई, हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ की, अनर्गल बकवास किया और भगवान पर बहुत खीज-खीजकर

तिरस्कारात्मक शब्द बोलकर डराने का धमकी देने का प्रयत्न किया । आदमी बहुत क्रूर बन जाता है तब कोई उसका सामना नहीं करना चाहता है । पक्षाग्रह वृद्धि और मोह भाव घुस जाता है तो भी कोई विरोध नहीं करता है तथा पुण्योदय का जोर हो या शक्ति का जोर हो तब तक भी व्यक्ति जो चलावे वह चल जाता है । ऐसी ही हालत गौशालक की बनी थी । उसके समस्त प्रपोग डों का अ त निकट आ गया था । इसी से एक ही नगर में भगवान और गौशालक का स योग बना ।

गौतमस्वामी तो सदा जिस तरह प्रश्न पूछते थे उसी तरह स्वाभाविक प्रश्न पूछा था और भगवान तो निश्चयज्ञानी, त्रिकालज्ञानी थे, स्वाभाविक ही समाधान किया । उसमें गौशालक की गुप्तता एव असत्यता प्रगट हुई। एक श्रावक 'अय पुल' ने गौशालक को अपने उपाश्रय में तेजोलेश्या से पीडित पागल जैसा व्यवहार करते हुए और आम खाते देखा, तब उसे कुछ अटपटा लगा । वह बिना व दन दर्शन किये वापिस घर लौट रहा था तो एक श्रमण ने उसे अपने पास बुलाकर उसे वापिस आकर्षित किया और श्रद्धान्वित बनाकर गोशालक के पास भेजा और गोशालक ने भी बातें बना कर उसे श्रद्धान्वित रखा । कोई श्रावक कहो या न कहो, उसके मर जाने पर स्वत: सारा न्याय हो गया । हठाग्रही और दुराग्रही अभिनिवेषी प्रकृति वालों को छोडकर बाकी सभी गौशालक के श्रावक और साधु और स पूर्ण स घ बिखर गया । भगवान महावीर ने तो उसके बाद भी १६ वर्ष केवल पर्याय में विचरण किया और अनेक हलुकर्मी जीवों ने प्रभु से सन्मार्ग प्राप्त कर आत्म कल्याण किया ।

निबंध-७

ढोंगी झूठे स्वार्थी कितने सिद्धांत घडे

एक ढोंगी व्यक्ति कितने कपट प्रप च सिद्धा त कल्पनाएँ घड सकता है, यह गौशालक के जीवन से अनुभव करने को मिलता है। उसने अपने को छिपाने के लिये कितने शरीर प्रवेश, नाम, वर्ष आदि की कल्पनाएँ जोडी । आठ चरम, पानक, अपानक कल्पित घडे और लोगों को आकर्षित करने हेतु कई झूठे प्रपोग डे किये और लगभग जीवन में सर्वत्र उसे सफलता मिली । भगवान के जहाँ २-३ लाख उपासक थे तो गौशालक को तीर्थंकर मानकर उपासना करने वालों की स ख्या ११ लाख

हो चुकी थी । फिर भी खोटा तो खोटा ही रहता है । पाप का घडा एक दिन अवश्य फूटने वाला होता है । जब उसका पाप चरम सीमा में पहुँच गया, दो श्रमणों की हत्या के पाप से भारी बन गया तो स्वय की लेश्या से ही मारा गया और अ त में हार गया, असफल हो गया, फैल हो गया ।

निबंध-८

भगवान का विचरण एवं तपस्या

आगम के आधार से भगवान का विचरण तथा तपस्या इस प्रकार है-

भगवान की दीक्षा	क्षत्रियकु ड ग्राम में	आचारा ग
प्रथम विहार विश्राम	कुर्मारग्राम	आचारा ग
केवलज्ञान	जृम्भिकग्राम नगर	आचारा ग
प्रथम चौमासा	अस्थिकग्राम	शतक-१५
दूसरा चौमासा	नाल दा(राजगृही)	शतक-१५
दूसरे चौमासे का विहार	कोल्लाक सन्निवेश	शतक-१५
गौशालक शिष्य हुआ	प्रणीतभूमि(कोल्लाक-नगर के बाहर)	शतक-१५
आठवें चौमासे बाद	सिद्धार्थग्राम से कूर्मग्राम विचरण	शतक-१५

तपस्या-

समय	तप	प्रमाण
(१) दीक्षा समय	छठ	आचारा ग
(२) केवलज्ञान समय	छठ	आचारा ग
(३) प्रथम वर्ष	१५-१५ की तपस्या	शतक-१५
(४) द्वितीय वर्ष	मासखमण निर तर	शतक-१५

आगम तथा ग्र थों के आधार से भगवान के **चातुर्मास** और तप इस प्रकार है- (१) अस्थिकग्राम(मोराकग्राम) (२) नाल दा(राजगृही) (३) च पानगरी (४) पृष्ट च पा (५) भद्दिलपुर (६) भद्रिकापुरी (७) आलभिका

नगर(८) राजगृही (९) अनार्यक्षेत्र(वज्र-शुभ्रभूमि में) (१०) श्रावस्ती (११) विशालानगरी (१२) च पानगरी । केवलज्ञान बाद २ चातुर्मास च पा में, १२ चातुर्मास नाल दा-राजगृही में, ११ चातुर्मास विशाला में, ४ चातुर्मास मिथिला में, १ चातुर्मास पावापुरी में = ये ३० चातुर्मास ।

तपस्या- छ मासी तप-१ । ५ महीना और २५ दिन-१ । चौमासी तप-९ । त्रैमासिक तप-२ । ढाई महीना तप-२ । दोमासी तप-६ । मासखमण-१२ । प द्रह दिन के तप-७२ । बेला(छठ)-२२९ । तेला(अट्ठम)-१२ । भद्रप्रतिमा-दो उपवास से, महाभद्रप्रतिमा-चार उपवास से, सर्वतोभद्र प्रतिमा-दस उपवास से पूर्ण करी ।

निबंध-९

तपस्या फल एवं उससे प्रायश्चित्त उतारना

(१) एक दिन अमनोज्ञ-नीरस-रूक्ष या बासी अथवा उच्छिष्ट आहार करने वाला श्रमण जितने कर्मों का क्षय करता है नैरयिक उतने कर्मों को अपार दु:ख भोगते हुए सौ वर्ष में भी क्षय नहीं कर सकता है । (२) एक उपवास के द्वारा श्रमण के जितने कर्म क्षय होते हक्त उसे नैरयिक हजार वर्ष में भी क्षय नहीं कर सकता । (३) एक बेले में श्रमण जितने कर्म क्षय करता है नैरयिक उसे लाख वर्ष में भी क्षय नहीं कर सकता । (४) एक तेले में श्रमण जितने कर्म क्षय करे नैरयिक उतने कर्म एक करोड वर्ष में भी क्षय नहीं कर सके । (५) एक चौले में श्रमण जितने कर्म क्षय करे, नारकी उतने कर्मों को एक क्रोडा-क्रोड वर्षों में क्षय नहीं कर सकता है ।

अण्णगिलाय शब्द से यहाँ उपवास के पहले की तपस्या सूचित की गई है । अत: इस शब्द से आय बिल की कोटी का तप समझना उपयुक्त है । रूक्ष, नीरस, अमनोज्ञ, ठ डा, बासी, सामान्य आहार आय बिल की कोटी में आवे जैसा होता है । शब्दार्थ करने में कुछ मतिभ्रम प्रचलित है जो समीक्षा करने पर उपयुक्त नहीं होते हक्त ।

तप और नारकी के इस कर्म क्षय की भिन्नता को दृष्टा त द्वारा इस प्रकार समझाया गया है- (१) वृद्ध पुरुष के द्वारा चिकनी ग ठीली लकडी काटने के समान नारकी के कर्म क्षय मुश्किल से होते हक्त । जवान पुरुष के द्वारा तीक्ष्ण कुल्हाडे से सूखी सामान्य लकडी काटने के समान तप से

अणगार के कर्म क्षय सरलता से होते हक्त । (२) एरण पर जोर-जोर से चोट करने पर भी उसमें से बहुत कम पुद्गल विशीर्ण होते हक्त वैसे ही नारकी के कर्म गाढ होने से कम क्षय होते हक्त। (३) जैसे सूखा घास अग्नि में डालने से तत्काल नष्ट हो जाता है वैसे ही अणगार के कर्म तप से शीघ्र क्षय हो जातेहक्त ।

प्रायश्चित्त के उपवास- प्रस्तुत आय बिल, उपवास, बेला, तेला, चौला आदि से होने वाला लाभ एक दूसरे से क्रमश: दस गुना, सौ गुना एव हजार गुणा, लाख गुणा और करोडगुणा है इसमें न्यूनतम वृद्धि दस गुणी होती है जिससे एक उपवास से बेले का लाभ न्यूनतम दसगुणा अधिक होता है । उसे चौविहार उपवास की अपेक्षा समझा जाय तो तिविहार उपवास का आधा फल मान कर पाँचगुणा लाभ न्यूनतम रूप से प्रत्येक उपवास बेला आदि का स्वीकारा जा सकता है । जिससे एक बेला =५ उपवास तेला =५x५=२५ उपवास । चौला =५x५x५= १२५ उपवास । प चोला= ५x५x५x५= ६२५ उपवास । इसी गणित से दैनिक सामान्य प्रायश्चित्त के उपवास उतारे जाने की पर परा प्रचलित है । तथा इसी के अनुरूप उपवास पर एक पोरसी = दो उपवास, दो पोरसी = तीन उपवास, तीन पोरसी = चार उपवास और चार पोरसी(बेला) = पाँच उपवास, ऐसी गणित भी मानी गई है । तदनुसार बेले =५ उपवास, उस पर १ पोरसी= ५+५=१० उपवास, दो पोरसी = १०+५=१५ उपवास, तीन पोरसी= १५+५=२० उपवास, ४ पोरसी (तेला) =२५ उपवास माना जाता है । इसी क्रम से आगे भी समझना । यथा- तेले पर पोरसी = २५+२५=५० उपवास । चौले पर पोरसी = १२५+१२५=२५० उपवास, प चोले पर पोरसी= ६२५+६२५ = १२५० उपवास स्वीकारा जाता है । प चोले के बाद छ उपवास का- ६२५x५ = ३१२५ उपवास । सात उपवास का- ३१२५ x५ = १५६२५ उपवास अट्ठाई = १५६२५x५ =७८१२५ उपवास, नौ उपवास =७८१२५x५ = ३,९०,६२५ उपवास होते हक्त ।

निबंध-१०

स्वप्न एवं फल निर्देश भगवती-१६/६ में

(१) निद्रा में(गाढ निद्रा में) या जागृत अवस्था में स्वप्न नहीं आते हक्त, अर्ध जागृत, अवस्था में हल्की निद्रा में स्वप्न आते हक्त । (२) निद्रा लेना

द्रव्य निद्रा है और अविरतिभाव भावनिद्रा है । भावनिद्रा की अपेक्षा २२ द डक के जीव सुप्त कहे गये हक्त । तिर्यंच प चेन्द्रिय सुप्त-जागृत और सुप्त दो तरह के हक्त और मनुष्य, सुप्त, जागृत एव सुप्त-जागृत यों तीनों तरह के हक्त । (३) साधु भी स्वप्न देखते हक्त, वे सत्य स्वप्न भी देखते हक्त, असत्य स्वप्न भी देखते हक्त । सच्ची भाव साधुता में सत्य स्वप्न ही आते हक्त अथवा तो नहीं आते हक्त । असत्य स्वप्न देखने वाला अस वृत कहा गया है अर्थात् उसके विशेष आश्रव चालू रहता है, वह पूर्ण स वृत नहीं है किन्तु एका त अस यमी नहीं समझना ।

(४) विशिष्ट स्वप्न ४२ प्रकार के हक्त और महास्वप्न ३० कहे गये हक्त । ३० महास्वप्न में से कोई भी १४ स्वप्न तीर्थंकर, चक्रवर्ती के गर्भ में आने पर उनकी माता देखती है । वासुदेव की माता सात, बलदेव की माता चार स्वप्न देखती है । मा डलिक राजा की माता एक महास्वप्न देखती है । ये माताएँ स्वप्न देखकर जागृत हो जाती है और पुनः नहीं सोती है, धर्म जागरण करती है। (५) भगवान महावीर स्वामी को दस स्वप्न देखने के बाद केवल ज्ञान उत्पन्न हुआ था । बैठे बैठे ही भगवान को मुहूर्त मात्र(अल्प समय) निद्रा आई ओर उस समय अर्द्ध निद्रावस्था में १० स्वप्न देखे, क्यों कि केवलज्ञान के समय भगवान अप्रमत्तभाव में और विशिष्ट आसन में थे अथवा कुछ समय पूर्व स्वप्न देखे होंगे और बाद में विशिष्ट आसन से ध्यानमग्न होने पर केवलज्ञान उत्पन्न हुआ । छद्मस्थ काल में भगवान कभी कुछ सो भी जाते थे--***आचारा ग सूत्र, प्रथम सूत्रस्क ध. अध्ययन-९ ।***

दस स्वप्न और परिणाम- (१) पिशाच को पराजित किया- मोहकर्म क्षय (२) सफेद नर कोयल- शुक्लध्यान (३) विचित्र प ख वाला नर कोयल- द्वादशा ग प्ररूपण (४) स्वर्ण रत्नमय माला द्वय- द्विविध धर्म प्ररूपण (५) श्वेत गो वर्ग- चतुर्विध स घ रचना (६) महापद्म सरोवर- चार जाति के देवों का प्ररूपण (७) महासागर भुजा से तिरे- स सार सागर से तिरे (८) सूर्य- केवलज्ञान प्राप्ति (९) मेरूपर्वत को आँतों से परिवेष्टित- सम्पूर्ण लोक में यश कीर्ति फैली (१०) मेरु चूलिका पर सि हासन पर बैठे- पर्षदा में उपदेश दिया ।

कुछ स्वप्न फल विज्ञान- (१) सोया हुआ व्यक्ति, हाथी, घोडा या

बैल समूह को देखकर उस पर चढता है, चढकर अपने को बैठे हुए देखता है, फिर जाग जाता है । वह उसी भव में मोक्ष जाता है । (जो सोया रह जाता है तो यह फल नहीं होता है । ऐसा सभी स्वप्नों में समझ लेना चाहिये)। (२) जो व्यक्ति स्वप्न में महासमुद्र में पूर्व से पश्चिम फैली रस्सी को देखकर अपने हाथ में समेटता है । (३) लोका त को पूर्व पश्चिम स्पर्श की हुई रस्सी को काटे । (४) काले या सफेद सूत के उलझे गुच्छे को सुलझावे **मैने सुलझा दिया** ऐसा माने । (५) सोने, चा दी, वज्र या रत्न राशि को देखे और उस पर चढ जाय । (६) घास-कचरे के ढेर को देखे और उसे विखेर दे । (७) सरस्त भ, वीरणस्त भ, व शस्त भ, वल्लिस्त भ(तना) को देखकर उखाड फेंके । (८) क्षीरकु भ, घृतकु भ, दधिकु भ को देखे और उठावे । (९) पुष्प युक्त पद्मसरोवर में उतरे । (१०) महासागर को देखे और उसे तैर कर पार करे । (११) रत्नों का भवन देखे और उसमें प्रवेश करे । (१२) रत्नों का विमान देखे और उस पर चढ जाय । इस प्रकार के स्वप्न युक्त अपने को देखे, माने और जागृत हो जाय, उठ जाय, वह व्यक्ति उसी भव में मोक्ष जाता है ।

(१) तेल, मदिरा, चर्बी के कु भ देखे एव फोड डाले और (२) लोहे, तांबे, कथीर, शीशे के ढेर को देखे एव उस पर चढे । ये दो स्वप्न देखने वाला एक देव का और एक मनुष्य का भव करके मोक्ष जाता है । स्वप्न देखकर जागृत होने एव पुनः नहीं सोने से ही ये फल होते हक्त । पुनः सो जाने पर ये फल नहीं होते हक्त ।

निबंध-११

भवी द्रव्य नारकी आदि कौन ?

भावी नारकी का आयुष्य बा धा हुआ जीव, भवीद्रव्य नारकी कहा जाता है । उसी तरह भावी तिर्यंच, मनुष्य और देव का आयुष्य बा धा हुआ जीव, भवीद्रव्य तिर्यंच, भवीद्रव्य मनुष्य और भवीद्रव्य देव कहा जाता है । भवीद्रव्य नारकी आदि की आगति और उम्र आगे चार्ट से दी गई है, यथा-

नाम	भवी द्रव्य	स्थिति	
		जघन्य	उत्कृष्ट
भवीद्रव्य नारकी	सन्नी-असन्नि तिर्यंच और सन्नी मनुष्य	अ तर्मुहूर्त	करोड पूर्व
भवीद्रव्य देव	सन्नी असन्नि तिर्यंच और सन्नी मनुष्य	अ तर्मुहूर्त	तीन पल
भवीद्रव्य पृथ्वी, पानी, वनस्पति ।	२३ द डक	अ तर्मुहूर्त	साधिक दो सागर
भवीद्रव्य तेउ, वायु, विकलेन्द्रिय ।	१० द डक	अ तर्मुहूर्त	करोड पूर्व
भवीद्रव्य तिर्यंच प चे॰	२४ द डक	अ तर्मुहूर्त	३३ सागर
भवीद्रव्य मनुष्य	२४ द डक	अ तर्मुहूर्त	३३ सागर

निबंध-१२

सौमिल ब्राह्मण कौन कहाँ गये ?

वाणिज्यग्राम नामक नगर में सोमिल नामक ब्राह्मण रहता था। वह ४ वेद आदि ब्राह्मण मत के सिद्धा तों में निष्णात था । उसके ५०० शिष्य थे । वह धन कुटु ब से स पन्न था । सुखपूर्वक कुटु ब का स्वामित्व निर्वाह करते हुए रहता था ।

एक बार उसने जाना कि भगवान महावीर स्वामी नगरी के बाहर द्युतिपलास उद्यान में पधारे हुए हक्त । तब उसे ऐसे मनोगत स कल्प उत्पन्न हुए कि मक्त भी जाऊँ और कई प्रश्न पूछूँ । यदि वे मेरे प्रश्नों का उत्तर दे सकेंगे तो मक्त उन्हें व दना नमस्कार करके पर्युपासना करूँगा । यदि उत्तर न दे सकेंगे तो मक्त इन प्रश्नों द्वारा उन्हें निरुत्तर करूँगा । तदनुसार वह उद्यान में पहुँचा और प्रश्न प्रार भ किया ।

सोमिल-भ ते ! आपके यात्रा, यापनीय, अव्याबाध और प्रासुक विहार है ?

भगवान- हे सोमिल ! तप, स यम, नियम, स्वाध्याय, ध्यान आदि योग, यतना प्रवृत्ति हमारी **यात्रा**(स यम यात्रा) है । पाँच इन्द्रिय एव कषाय को

विवेक पूर्वक स्ववश में निय त्रण में रखना, हमारा **यापनीय** है । वात पित्त कफ जन्य शारीरिक रोग आत क मेरे उपशा त है यह मेरा **अव्याबाध**(सुख) है । उद्यान, सभा, प्याऊ, देवस्थान आदि स्त्री, पशु, प डक रहित स्थानों में शय्या स स्तारक ग्रहण करके रहना, यह हमारा **प्रासुक विहार** है ।

सोमिल- 'सरिसव' भक्ष्य है या अभक्ष्य ?

भगवान- सोमिल ! सरिसव भक्ष्य भी है अभक्ष्य भी । ब्राह्मण मत में सरिसव दो प्रकार के कहे हक्त - (१) मित्र सरिसव(सरीखे) (२) धान्य सरिसव(सरसों) । साथ में जन्में, साथ में खेले और साथ में बडे हुए, सरीखे मित्र रूप **सरिसव** अभक्ष्य होते हक्त । धान्य सरिसव (सरसों) अचित्त हो, एषणा नियमों से युक्त हो, याचित हो और प्राप्त हो तो श्रमण निर्ग्रंथों को भक्ष्य(खाने योग्य) है किन्तु जो सचित्त हो, अनेषणीय हो, अयाचित या अप्राप्त हो वह सरिसव धान्य(सरसों)अभक्ष्य-श्रमण निर्ग्रन्थों के खाने के अयोग्य है ।

सोमिल- मास भक्ष्य है या अभक्ष्य ?

भगवान- ब्राह्मण मत में 'मास' दो प्रकार के कहे हक्त उनमें से श्रावण आदि अषाढ पर्यन्त मास अभक्ष्य है । सोने-चा दी के माप करने के मास अभक्ष्य है । धान्य मास(उडद) अचित्त, एषणीय, याचित, प्रदत्त हो तो श्रमणो को भक्ष्य है और सचित, अनेषणीय, अयाचित, अप्राप्त हो तो अभक्ष्य है ।

सोमिल- 'कुलत्था' अभक्ष्य है या भक्ष्य ?

भगवान- ब्राह्मण मत में **कुलत्था** दो प्रकार के कहे हक्त उनमें से कुलवान स्त्री **कुलत्था** है वह अभक्ष्य है । धान्य कुलत्था यदि अचित्त, एषणीय, याचित और प्रदत्त है तो श्रमणों को भक्ष्य है अन्यथा अभक्ष्य होता है ।

विवेक पूर्ण यथार्थ उत्तर सुनकर सोमिल झुक गया, बोध को प्राप्त कर उसने १२ श्रावक व्रत स्वीकार किये । अनेक वर्ष व्रताराधन कर सद्गति को प्राप्त किया एव एकाभवावतारी बना । महाविदेह से मोक्ष जायेगा ।

नोट- सोमिल के प्रश्न जिज्ञासा के नहीं किन्तु परीक्षा मूलक थे ।

आगमों में अनेक जगह सोमिल ब्राह्मण नाम आता है वे सभी भिन्न-भिन्न है । अ तगड का सोमिल अलग है, वह २२ वें भगवान के

समय हुआ नरक में गया । निरयावलिका का सोमिल अलग है, वह २३ वें भगवान के समय हुआ, विराधक होकर शुक्र ग्रह देव बना, एक भव करके मोक्ष जायेगा । प्रस्तुत सोमिल २४वें भगवान के समय हुआ । वह श्रावकपन का आराधक होकर प्रथम देवलोक में गया और एक भव करके मोक्ष जायेगा ।

निबंध-१३

मोक्ष फलदाई ४९ बोल

स वेग आदि ४९ बोलों का अ तिम फल मोक्ष कहा गया है अर्थात् ये सभी गुण मोक्ष साधना में सहायक एव गति देने वाले हक्त । साधक को साधना काल में इन गुणों की वृद्धि एव स रक्षण करते रहना चाहिये, यथा- (१) स वेग-वैराग्य भाव (२) निर्वेद-त्याग भाव (३) गुरु आदि की सेवा (४) स्व आलोचना (५) स्व निंदा (६) स्व गर्हा (७) क्षमापना भाव (८) सुखशाता- अनुत्सुकता, उतावल रहितता, शा तभाव से प्रवर्तन (९) उपशा तता । (सुखशाता में शारीरिक प्रवृत्तियों में शा ति होती है उपशा तता में मानसिक प्रवर्तन में शा ति एव ग भीरता होती है ।) (१०) भाव अप्रतिबद्धता-अनाशक्ति भाव (११) पाप की पूर्ण निवृत्ति-अक्रिय (१२) विविक्त शय्या सेवन (१३-१७) पाँच इन्द्रिय स वर (१८-२३) योग, शरीर, कषाय, स भोग, उपधि और भक्त का प्रत्याख्यान (२४) क्षमा (२५) वीतराग भाव (२६-२८) भावों की, करण की एव योग की सत्यता (२९-३१) मन, वचन, काया का सम्यक् अवधारण(वश में रखना) (३२-४४) क्रोधादि १३ पाप का त्याग (४५-४७) ज्ञान, दर्शन, चारित्र से सम्पन्न होना (४८) रोगादि की वेदना सहिष्णुता (४९) मारणा तिक कष्ट उपसर्ग में सहिष्णुता ।

निबंध-१४

शक्रेन्द्र के विशेषणार्थ एवं पूर्व भव

शक्रेन्द्र के ६ विशेषण इस प्रकार है- **(१) मघव** - महा मेघ जिसके वश में होते हक्त अर्थात् महावृष्टि आदि का आदेश शक्रेन्द्र से प्रार भ होता है और अ त में वृष्टि करने वाले देव आदेश पाकर यथा- स्थान वृष्टि करते हक्त । **(२) पाकशासन**- पूर्व भव में पाक नामक शत्रु को शिक्षा

देकर परास्त करने वाला । **(३) शतकर्तु**- पूर्वभव में श्रावक की पाँचवीं प्रतिमा का १०० बार आराधन किया था । **(४) सहस्राक्ष**- शक्रेन्द्र के ५०० म त्री है उनकी सूझबूझ शक्रेन्द्र के काम आती है । अथवा पूर्व में १००८ साथी श्रेष्ठियों ने साथ में दीक्षा ली । वे यहाँ देवलोक में साथ में है उसमें आठ स ख्या को गौण करके हजार साथी का हजार चक्षु कहा गया है । **(५) वज्रपाणी**- हाथ में वज्र रत्न है जिसके । शक्रेन्द्र का मुख्य शस्त्र वज्र है जो स्मृतिमात्र से उनके हाथ में उपस्थित हो जाता है । **(६) पुर दर**- पुर नाम के शत्रु का विदारण करने वाला अथवा असुरकुमार आदि के नगरों का विनाश कर सकने वाला । शक्रेन्द्र के ये विशेषण उसके वर्णन में कहीं स क्षिप्त पाठ में समाविष्ट हो जाते हक्त कहीं स्पष्ट भी मिलते हक्त।

प्रश्न : शक्रेन्द्र प्रथम देवलोक का इन्द्र कब कैसे बना था?

उत्तर- बीसवें तीर्थंकर मुनिसुव्रत स्वामी के शासन में पहले कार्तिक शेठ ने श्रावक के व्रतों का पालन किया था फिर उन्हीं भगवान के पास १००८ श्रेष्ठी-साथियों सहित दीक्षा ली थी । १४ पूर्वों का अध्ययन किया । कुल १२ वर्ष दीक्षा पर्याय का पालन करके एक महीने के स थारे से आराधक बनकर प्रथम देवलोक में इन्द्र स्थान में शक्रेन्द्रावत शक विमान में उत्पन्न हुआ था । उसके बाद ४(२१से २४वें) तीर्थंकरों की सेवा का समय-समय पर लाभ लिया है आगे भी दो सागरोपम की आयुष्य पूर्ण होने तक उत्सर्पिणी काल के भावी प्रथम तीर्थंकर पद्मनाभ एव अन्य अनेक तीर्थंकरों की सेवा का लाभ प्राप्त करेगा । फिर महाविदेह क्षेत्र में मनुष्य बन कर सिद्ध, मुक्त होगा । इस प्रकार शक्रेन्द्र पूर्वभव में भी धर्मनिष्ट श्रावक एव श्रमण था और अभी सम्यग्दृष्टि है ।

निबंध-१५

निश्चय नय व्यवहारनय से पदार्थों में वर्णादि

गुड-शक्कर आदि में व्यवहार से एक मधुर रस है, निश्चय से सूक्ष्मदृष्टि से बादर अन तप्रदेशी स्क ध होने से इनमें पाँचों रस होते हक्त और वर्णादि २० ही बोल (५ वर्ण, २ ग ध, ५ रस और ८ स्पर्श) पाये जाते हक्त । वैसे ही गुड, वर्ण से पीला और ग ध से सुग ध वाला होता है तथापि उसमें अन तप्रदेशी होने के कारण सभी वर्ण, ग ध, रस आदि होते हक्त ।

इसीप्रकार दिखने एव अनुभव में आने वाली सभी वस्तुओं में व्यवहार नय से या मुख्यता से १-१ वर्णादि और निश्चय नय से सभी वर्णादि है ऐसा समझना चाहिये । **यथा-** हल्दी पीली है, कौआ काला है, श ख सफेद है, नीम कडुवा है, मयूरक ठ नीला है इत्यादि । राख- व्यवहार से रूक्ष है फिर भी उसमें आठ ही स्पर्श है ।

निबंध-१६

अस्तिकाय का प्रश्न राजगृही में मद्रुक से

राजगृही नगरी के बाहर गुणशील उद्यान में भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे । **मद्रुक** श्रावक दर्शन करने के लिये घर से पैदल ही निकला । बीच में अन्यतिर्थिकों के निवास स्थान आश्रम के पास होकर जा रहा था कि कुछ स न्यासी उसके पास आये और पूछने लगे कि तुम्हारे भगवान प चास्तिकाय बताते हक्त, तुम उसको जानते, देखते हो तो हमें भी बताओ कि वे कहाँ है ? कैसी है ? हम भी देखें ।

प्रत्यक्ष देखने का तर्क एव समाधान- मद्रुक ने कहा- कई वस्तुओं के कार्य से ही उसका अस्तित्व जाना तथा देखा जाता है । सभी वस्तुएँ प्रत्यक्ष नहीं देखी जाती । अन्यतीर्थिक स न्यासी आक्षेप पूर्वक कहने लगे कि अरे ! तुम भी कैसे श्रावक हो कि जानते नहीं, देखते नहीं, फिर भी मानते हो!!

मद्रुक श्रावक ने जवाब में अनेक प्रश्न खडे कर दिये- (१) वायु काय चलती है उसे तुम देखते हो ? सुगन्ध आ रही है, उसे देखते हो ? मेरे शब्द सुन रहे हो, उसे देखते हो ? अरणि काष्ट में अग्नि है, उसे देखते हो ? समुद्र के उस पार भी पदार्थ है, उन्हें देखते हो ? देवलोक भी है, उन्हें देखते हो ? सभी प्रश्नों का उत्तर निश्चित है कि **नहीं देखते हक्त ।**

मद्रुक ने उन्हें समझाया कि हे आयुष्मन् ! ऐसा करोगे तो लोक के कितने ही पदार्थों का अभाव हो जायेगा अर्थात् उन सबका निषेध करना पडेगा । अत: कोई वस्तु को मैं, तुम या छद्मस्थ मनुष्य देख नहीं सकते फिर भी उसके गुण, धर्म, कार्य से उस पदार्थ के अस्तित्व को स्वीकार करना चाहिये । इसप्रकार अन्यतीर्थिकों के आक्षेप का समाधान कर, उन्हें निरुत्तर किया एव भगवान की सेवा में पहुँचा । व दन नमस्कार कर पर्युपासना करने लगा ।

सिद्धान्त का ज्ञान आवश्यक- भगवान ने परिषद के समक्ष उसके सही उत्तर देने की प्रश सा की और कहा कि जो बिना जाने अज्ञानवश गलत प्ररूपण आदि करते हैक्त, वे केवलज्ञानी भगवान की एव धर्म की आशातना करते हक्त । तात्पर्य यह है कि श्रमण हो या श्रमणोपासक, उसे यथासमय अपने धर्म सिद्धान्तों का ज्ञान एव उसका अर्थ, परमार्थ, हेतु, प्रश्न, उत्तर सहित प्राप्त करना चाहिये । अपने मिले समय का सदुपयोग करके शास्त्राभ्यास में समय अवश्य लगाना चाहिये ।

शास्त्र अभ्यास नहीं बढाने वाला स्वय के धर्म की स्थिरता का पूर्ण रक्षक भी नहीं हो सकता है एव समय-समय पर सिद्धान्त विपरीत प्ररूपण चिंतन करने वाला भी बन सकता है । उत्तराध्ययन सूत्र के २९ वें अध्ययन के १९ वें प्रश्न उत्तर में भी यही भाव बताया गया है और प्रस्तुत प्रकरण में भगवान ने मद्रुक की प्रश सा के बाद यही भाव प्रकट कियेहक्त ।

मद्रुक श्रावक का भविष्य- गौतम स्वामी के पूछने पर भगवान ने कहा कि यह मद्रुक श्रावक श्रावकपर्याय की आराधना करके प्रथम देवलोक के अरुणाभ विमान में उत्पन्न होगा । वहाँ से महाविदेह क्षेत्र में एक भव करके मुक्त होगा ।

निबंध-१७

देवों के पुण्य क्षय की तरतमता

जितने पुण्या श को व्य तरदेव १०० वर्ष में क्षय करते हक्त उतने पुण्यों को नवनिकाय के देव २०० वर्ष में क्षय करते हक्त । असुर कुमार- ३०० वर्ष में; ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि ज्योतिषी देव-४०० वर्ष में; सूर्य, चन्द्र देव-५०० वर्ष में; पहला दूसरा देवलोक के देव- हजार वर्ष में; ३-४ देवलोक के देव- २००० वर्ष में; ५-६ देवलोक के देव- ३००० वर्ष में; ७-८ देवलोक के देव-४००० वर्ष में; ९ से १२ देवलोक के देव-५००० वर्ष में; प्रथम ग्रैवेयकत्रिक के देव- लाख वर्ष में, दूसरी ग्रैवेयकत्रिक के देव-२ लाख वर्ष में; तीसरी ग्रैवेयकत्रिक के देव-३ लाख वर्ष में; चार अणुत्तर विमान के देव-४ लाख वर्ष में और सर्वार्थसिद्ध के देव ५ लाख वर्ष में उतने पुण्यांश को क्षय करते हक्त ।

निबंध-१८

श्रुत विच्छेद आदि किसके कब कितना

प्रस्तुत उद्देशक-८ में ऐसे अनेक निरूपण हक्त जो इस प्रकार है- भरत-एरवत में ही उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल है । अकर्मभूमि में नहीं है । महाविदेह क्षेत्र में अवस्थित काल है ।

पाँच भरत, पाँच एरवत में पहले और अ तिम तीर्थंकर पाँच महाव्रत रूप धर्म एव सप्रतिक्रमण धर्म का प्ररूपण करते हक्त । शेष २२ तीर्थंकर और महाविदेह क्षेत्र के तीर्थंकर चातुर्याम धर्म का प्ररूपण करते हक्त ।

भरत-एरवत में २४ तीर्थंकर क्रमशः होते हक्त जिनके २३ जिनांतर होते हक्त । वर्तमान चौवीसी के पहले से आठवें एव १६ से २३वें के शासन में कालिक श्रुत का विच्छेद नहीं हुआ । बीच के नौवे से १५ वें तीर्थंकर के शासन में अर्थात् सात जिनांतर में कालिक श्रुत का विच्छेद हुआ ।

दृष्टिवाद का विच्छेद तो सभी तीर्थंकरों के शासन में होता है । चौवीसवें तीर्थंकर के शासन में दृष्टिवाद का पूर्वगत सूत्र १००० वर्ष तक चलेगा (रहा था) शेष २३ तीर्थंकरों के स ख्यात या अस ख्यात काल तक पूर्व श्रुत चला था ।

२४ वें तीर्थंकर का वर्तमान शासन २१ हजार वर्ष चलेगा । उत्सर्पिणी के २४ वें तीर्थंकर का शासन एक लाख पूर्व में १००० वर्ष कम तक चलेगा ।

अरिह त तीर्थंकर है, चतुर्विध स घ तीर्थ है । तीर्थंकर प्रवचनी है । द्वादशा ग(शास्त्र) प्रवचन है । इस धर्म का अवगाहन करने वाले संपूर्ण कर्म क्षय कर मुक्त होते हक्त अथवा कर्म शेष रहने पर देवलोक में जातेहक्त।

निबंध-१९

आकाश के पर्यायवाची

यहाँ उद्देशक-२ में प चास्तिकाय के पर्यायवाची नाम इस प्रकार कहे गये हक्त ।

धर्मास्तिकाय के पर्याय नाम- धर्म, धर्मास्तिकाय, प्राणातिपात आदि

विरमण, क्रोधादि विरमण यावत् मिथ्यादर्शन विरमण, ईर्यासमिति आदि, गुप्ति आदि । अन्य भी इस तरह के नाम हक्त ।

अधर्मास्तिकाय के पर्याय नाम- अधर्म आदि, धर्म के प्रतिपक्षी ।

आकाशास्तिकाय के पर्याय नाम- आकाश, गगन, नभ, सम, विषम, खह, विहायस, वीचि, विवर, अम्बर, अम्बरस, छिद्र, शुषिर, मार्गविमुख, अर्द, आधार, व्योम, भाजन, अ तरिक्ष, श्याम, अवकाशा तर, अगम, स्फटिक(स्वच्छ), अन त ।

जीवास्तिकाय के पर्याय नाम- जीव, प्राण, भूत, सत्त्व, विज्ञ, चेत्ता, जेता, आत्मा, र गण(रागयुक्त) हिंडुक, पुद्गल, मानव, कर्ता, विकर्ता, जगत, जन्तु, योनि, स्वय भू, शरीरी, नायक, अ तरात्मा ।

पुद्गलास्तिकाय के पर्याय नाम- पुद्गल, परमाणु पुद्गल, द्विप्रदेशी यावत् अन तप्रदेशी, इत्यादि ये सब अभिवचन है, पर्याय नाम है ।

निबंध-२०

जंघाचारण और विद्याचारण

चारण लब्धि के दो प्रकार होते हक्त- (१) ज घाशक्ति धीरे-धीरे क्षीण होती है, चलना प्रार भ करते समय ज घा में स्फूर्ति होती है और काला तर से शक्ति क्षीण हो जाने पर स्फूर्ति में म दता आ जाती है, ऐसी ज घाशक्ति की उपमा वाली चारण लब्धि को **'ज घाचारण लब्धि'** कहते है । इस लब्धि वाला प्रार भ में प्रथम उडान में सीधा रुचकवर द्वीप में पहुँच सकता है । वहाँ से आते समय एक विश्राम न दीश्वर द्वीप में लेता है और दूसरी उडान में अपने स्थान पर पहुँचता है ।

ज घाचारण लब्धि वाला उपर जाना हो तो एक ही उडान में प डक वन में पहुँचता है, वापिस आते समय एक विश्राम न दनवन में करके फिर स्वस्थान पहुँचता है । इस प्रकार ज घा की उपमा वाली इस चारण लब्धि को ज घाचारण लब्धि कहा गया है । (२) विद्या की उपमा वाली चारण लब्धि को **'विद्याचारण लब्धि'** कहतेहक्त अर्थात् विद्या उपयोग में आते-आते प्रकृष्ट बनती है, वैसे ही ये लब्धि उपयोग में आने के बाद विशेष प्रभावित बनती है, वह विद्याचारण

लब्धि कही जाती है । इस लब्धिवाला प्रथम उडान में मानुषोत्तर पर्वत पर जाता है, दूसरी उडान में न दीश्वरद्वीप में पहुँचता है और एक उडान में पुन: अपने स्थान में आ जाता है । उपर जाना हो तो दो उडान में प डकवन में पहुँचता है और एक उडान में पुन: स्वस्थान में आ जाता है ।

लब्धि किसको होती है ?- (१) तपोलब्धि स पन्न पूर्वधारी मुनिराज को तेले-तेले पारणा रूप तप निर तर करने से **ज घाचारण लब्धि** उत्पन्न होती है । तीन चुटकी बजावे उतनी देर में ज बुद्वीप के कोई देव २१ बार परिक्रमा लगा लेवे, ऐसी तेज गति इनकी होती है । (२) तपो लब्धि धारी पूर्वधर मुनिराज को बेले-बेले निर तर पारणा करने से **विद्याचारण लब्धि** प्राप्त होती है। तीन चुटकी बजावे उतने समय में कोई देव ज बूद्वीप की तीन बार परिक्रमा लगा लेवे ऐसी तीव्र गति इनकी होती है ।

दोनों में तुलना- (१) विद्याचारण लब्धि से ज घाचारण लब्धि विशिष्ट है । (२) विद्याचारण लब्धि बेले-बेले तप से प्राप्त होती है जब कि ज घाचारण लब्धि तेले-तेले के तप से प्राप्त होती है । (३) ऊँचाई में अधिकतम दोनों समान प डकवन तक जाते हक्त किन्तु लम्बाई में ज घाचारण उत्कृष्ट रुचकवर द्वीप तक(अधिक दूर) जाते हक्त जब कि विद्याचारण उत्कृष्ट न दीश्वर द्वीप तक ही जाते हक्त । (४) ज घाचारण की गति जाते समय एक उडान में उत्कृष्ट होती है जब कि विद्याचारण जाते समय दो उडान में अपनी उत्कृष्ट म जिल में पहुँचता है । (५) वापिस अपने स्थान पर आते समय ज घाचारण दो उडान में आता है और विद्याचारण एक उडान में स्वस्थान में आ जाता है । (६) विद्याचारण से ज घाचारण की गमन गति **सात गुणी** अधिक होती है ।

स्थलों का परिचय- (१) मानुषोतर पर्वत- ढाई द्वीप की सीमा करने वाला चूडी आकार पर्वत, जो पुष्कर द्वीप के बीच में, पुष्कर द्वीप की भीतरी वेदिका से आठ लाख योजन दूर है । **(२) न दीश्वर द्वीप-** यह आठवाँ द्वीप है, इसके पहले सात द्वीप, सात समुद्र हक्त । **(३) रुचकवर द्वीप-** यह १६वाँ द्वीप है, इसके पहले १५ द्वीप समुद्र हक्त । **(४) न दनवन-** मेरुपर्वत की समभूमि से ५०० योजन उपर जाने पर मेरु के चौतरफ ५०० योजन की चौडाई का वलयाकार वन प्रदेश है, वह न दनवन है ।

(५) प डकवन- मेरुपर्वत पर ४ वन है जिसमें मे मेरु के शिखर पर चौथा प डकवन है । वह समभूमि से ९९००० योजन ऊँचाई पर है ।

लब्धि-प्रयोग करने का प्रयोजन- उक्त लब्धिधारी मुनिराज द्वीप-समुद्र पर्वत आदि के आगम कथित वर्णन के अनुसार स्थानों को देखने के प्रयोजन से इस लब्धि का प्रयोग करते हक्त अथवा अपनी जिज्ञासाओं का समाधान करने, तीर्थंकरों का दर्शन करने हेतु भी उक्त लब्धि वाले मुनिराज उस लब्धि का प्रयोग करते हक्त ।

आराधना-विराधना- इस लब्धि-प्रयोग का आलोचना प्रायश्चित्त कर ले तो वह अणगार आराधक बनता है । आलोचना प्रायश्चित्त नहीं करने वाला अणगार विराधक होता है ।

विद्याधर- वैताढ्य पर्वत की प्रथम श्रेणी के मानव विद्याधर कहे जाते हक्त । वे इन दोनों से भिन्न होते हक्त । वे सा सारिक गृहस्थ जीवन जीते हक्त । भरतक्षेत्र में समभूमि पर भी कोई विद्याओं की साधना कर विद्याधर बन जाते हक्त । इन विद्याधरों की यह विशेषता है कि ये जब मन चाहे पक्षी के समान आकाश में गमन कर सकते है । सामान्यतया वे अपने क्षेत्र में ही विचरण कर सकते हक्त अर्थात् भरतक्षेत्र वाले भरत में, एरवत क्षेत्र वाले एरवत में और महाविदेह की विजय वाले अपनी विजय में जाते आते हक्त । विशिष्ट विद्यासिद्ध करने वाले कोई अधिक भी जा सकते हक्त । क्यों कि ढाईद्वीप के बाहर जाने वाले मानवों की गिनती में विद्याधरों को भी अलग गिनाया गया है- ***जीवाभिगम सूत्र, प्रतिपत्ति-३ में*** । यथा- ९ नारद आदि विद्याधर ।

निबंध-२१

सोपक्रमी निरुपक्रमी आयुष्य

(१) जीव जो भी परभव का आयुष्य बा धता है वह दो प्रकार का होता है । कोई जीव ९० वर्ष का आयुष्य ब ध करके परभव में जाकर पूरा ९० वर्ष का आयुष्य ही पूरा करता है, उसमें कोई भी उपक्रम से(घात से) कुछ भी परिवर्तन नहीं हो सके, ऐसा बा धा हुआ वह आयुष्य **निरुपक्रमी आयुष्य** कहलाता है ।

(२) कोई जीव ९० वर्ष का आयुष्य ब ध करके परभव में जाकर दो

तिहाई आयुष्य(६० वर्ष) बीतने के बाद कोई भी उपक्रम लगने पर, आत्मघात करने पर या अन्य द्वारा घात किये जाने पर अथवा दुर्घटना हो जाने पर आयुष्य पूर्ण कर मर जाता है; ऐसा बा धा हुआ वह आयुष्य **सोपक्रमी आयुष्य** कहलाता है ।

तात्पर्य यह है कि (१) निरुपक्रमी आयुष्य वाला निश्चित रूप से बा धा जितना पूरा आयुष्य व्यतीत करता है और (२) सोपक्रमी(जो निरुपक्रमी नहीं है वैसा) आयुष्य वाला दो तिहाई उम्र बीतने के बाद कभी भी मर सकता है और कोई घात स योग नहीं मिले तो पूरा आयुष्य भी व्यतीत कर लेता है अर्थात् इसमें अधूरा या पूरा दोनों तरह से आयुष्य कर्म भोगने की भजना रहती है । आयुष्य टूटना अर्थात् उसमें उपक्रम लगना; यह स्थाना ग सूत्र, स्थान-७ में सात प्रकार का बताया है । देखे स्थानांग के प्रश्नोत्तर में भाग-२ पृष्ट-१७३ ।

२४ द डक में नारकी, देवता, युगलिया मनुष्य और युगलिया तिर्यंच, तीर्थंकर, चक्रवर्ती आदि ६३ शलाका पुरुष एव चरम शरीरी जीव ये सभी एक मात्र निरुपक्रमी आयुष्य वाले होते हक्त । शेष सभी जीव दोनों में से कोई भी आयुष्य वाले हो सकते हक्त ।

तीन भेद- सोपक्रमी-निरुपक्रमी इन दो के, अपेक्षा से तीन भेद भी होते है- (१) आत्मोपक्रम- स्वय आयु को घटा देना-आत्मघात करना आदि (२) परोपक्रम- अन्य के द्वारा मारा जाना (३) निरुपक्रम- कोई भी उपक्रम नहीं लगना, पूर्णायु रहना ।

नारकी में आने वाले तीनों प्रकार से मरकर आ सकते हक्त । यों २४ ही द डक की आगत में तीनों प्रकार के उपक्रम वाले जीव हो सकते हक्त । नारकी से मरकर जाने वाले जीव निरुपक्रम एक भेद वाले ही होते हक्त । इसी तरह सभी देवों में भी एक भेद गत में होता है क्यों कि वे नारकी और देवता उपक्रम से मरते नहीं है; स्वाभाविक अपना पूर्ण आयुष्य होने पर ही मरते हक्त । औदारिक दस द डक से मरकर जाने वाले तीनों तरह के होतेहक्त।

अन्य अपेक्षा से जीवों का जन्म-मरण, आत्म रिद्धि से आत्म कर्म से, आत्मप्रयोग से होता है किंतु पररिद्धि, परकर्म और परप्रयोग से नहीं होता है अर्थात् स्वकर्म अनुसार जीव का जन्म-मरण होता है, यह उपादान

कारण की अपेक्षा कथन है । निमित्त कारण इसमें गौण किया गया है ।

निबंध-२२

लोक अलोक में श्रेणियाँ और जीवाजीव की गति

श्रेणियाँ सात प्रकार की होती है- (१) सीधी (२) एक मोड वाली (३) दो मोड वाली (४) एक तरफ त्रस नाडी के बाहर जाने वाली (५) दोनों तरफ त्रस नाडी के बाहर जाने वाली (६) चक्रवाल (७) अर्धचक्रवाल । ये जीव और पुद्गल की गति की अपेक्षा कही गई है । यों स्वत: श्रेणियाँ सभी सीधी ही है ।

जीव प्रार भ की पाँच गति श्रेणी से गमन करते हक्त और पुद्गल सातों श्रेणि गति से गमन करते हक्त । इस प्रकार जीव और अजीव अनुश्रेणी से ही गमन करते हक्त । इन श्रेणियों के अतिरिक्त विश्रेणि से गति नहीं करते हक्त । जिस प्रकार वायुयान के जाने के मार्ग आकाश में निश्चित होते हक्त, उन्हीं मार्गों से वे जाते आते हक्त । वैसे ही जीव पुद्गल के गमन के मार्ग रूप ये श्रेणी गतियाँ होती है । अमार्ग रूप विश्रेणि गतियाँ नहीं होती है ।

सात श्रेणियाँ, उनमें जीव को कितने समय लगते :-

जीवों और पुद्गलों का गमनागमन श्रेणियों (आकाश मार्ग) से होता है । वे श्रेणियाँ सात प्रकार की है- १. ऋजु आयता- बिना मोड की सीधी श्रेणी २. एक मोड वाली ३.दो मोड वाली ४. एक तरफ स्थावर नाल वाली ५. दोनों तरफ स्थावर नाल वाली ६.चक्रवाल ७. अर्धचक्रवाल । अ तिम दोनों गति केवल पुद्गल की ही होती है चक्रवाल गति जीव की नहीं होती है ।(१) प्रथम ऋजु श्रेणी से जीव और पुद्गल एक समय में गति करते हक्त ।(२) एक मोड वाली में विग्रह गति से जाने वाले जीव को दो समय लगते हक्त । (३) दो मोड वाली में तीन समय लगते हक्त । (४) एक तरफ स्थावर नाल में जाने पर १-२-३ समय लगते हक्त । (५) दोनों तरफ स्थावर नाल में जाने वाले को ३ या ४ समय लगते हक्त अर्थात् स्थावर नाल में सम दिशा में ३ समय और विषम दिशा में ४ समय लगते हक्त ।

पूर्व से पश्चिम में १-२-३ समय, पूर्व में १-२-३ समय और पूर्व से उत्तर या दक्षिण में २-३ समय विग्रह गति में लगते हक्त । मनुष्य लोक

से रत्नप्रभा पृथ्वी के चरमा त में जीव को जाने आने में १-२-३ समय लगतेहक्त ।

पहली नरक पृथ्वी पिंड के समान दूसरी पृथ्वी का वर्णन कहना किन्तु वहाँ मनुष्य क्षेत्र से स ब धित विग्रह गति में २-३-४ समय लगते हक्त । उपर, नीचे, तिरछे विदिश विषम श्रेणी में २-३-४ समय लगते हक्त और दिशा सम श्रेणी में १-२-३ समय लगते हक्त ।

त्रस नाल से त्रस नाल में १-२-३ समय लगते हक्त । स्थावर नाल से त्रस नाल में १-२-३ समय लगते हक्त । स्थावर नालसे स्थावर नाल में १-२-३ समय लगते हक्त किन्तु विषम श्रेणी में या विदिशा में या विदिशा विषम उपर नीचे तिरछे में २-३ समय या २-३-४ समय अथवा ३-४ समय लगते हक्त ।

नीचे स्थावर नाल से त्रस नाल में होकर दूसरी तरफ उपर स्थावर नाल में जाने में समश्रेणी से समश्रेणी हो तो तीन समय और एक तरफ विषम विदिशा हो तो कम से कम चार समय लगते हक्त । स्थावर नाल में एक तरफ ही विदिशा का मोड लिया जाता है । दोनों तरफ मोड लेने की आवश्यकता नहीं होती है इसलिये लोक में स्थावर या त्रस नाल में कहीं से भी जीव को, कहीं भी जाना हो तो ४ समय में अपने जन्मस्थान पर जीव पहुँच सकता है । पाँच श्रेणियों की गति में लोक में जीव और पुद्गल को उत्कृष्ट ४ समय ही पहुँचने में लगते हक्त इससे ज्यादा मोड जीव, अजीव के गति में नहीं बनते हक्त । तभी सारे लोक में व्याप्त होने वाले भाषा आदि के पुद्गल, अचित्त महास्क ध और केवली समुद्घात में आत्म प्रदेशों को ४ समय ही लगते हक्त ।

पाँच समय की विग्रह गति की कल्पना भी यदि कोई जीव के लिये करे तो वह सिद्धा त सापेक्ष नहीं है । मन कल्पित एव भ्रम पूर्ण है क्यों कि तीन समय में तो स पूर्ण आत्मप्रदेश भी सारे लोक में व्याप्त हो जाते हक्त । केवल नगण्य स्थान-कोने (लोका त निष्कुट) अवशेष रहतेहक्त जो चौथे समय में पूरित किये जाते हक्त । अत: ५ समय की कल्पना तो असत्कल्पना ही है ।

चक्रवाल या अर्ध चक्रवाल गति से भी पुद्गल ग तव्य स्थान में जा सकते हक्त ।

सात नरक पृथ्वी के समान लोक के चरमा त से चरमा त भी कहना, इसमें १-२-३-४ या २-३-४ या ३-४ समय की विग्रह गति होती है ।

निबंध-२३

काल की इकाइयाँ कहाँ तक

अस ख्य समयों की आवलिका होती है यावत् सागरोपम भी असंख्य समयों का होता है । पुद्गल परावर्तन में अन त समय होते हक्त । स ख्यात वर्षों में आवलिका आदि स ख्यात होती है । पल्योपम आदि अस ख्यात वर्षों में अस ख्य आवलिका आदि होते हक्त । पुद्गल परावर्तन में आवलिकादि अन त होते हक्त ।

समय से लेकर शीर्ष प्रहेलिका तक ४६ भेद हक्त, उत्कृष्ट १९४ अ क होते हक्त । यहाँ तक गणना स ख्या है, आगे उपमा स ख्या है ।

भूतकाल और भविष्यकाल अन त होने से बराबर होते हक्त, किन्तु वर्तमान का एक समय अलग होता है । उसे भविष्य काल में समाविष्ट करने से भविष्य काल समयाधिक कहा जाता है । सर्वद्धा काल भूतकाल से दुगुना साधिक होता है ।

निगोद- निगोद शरीर और निगोद के जीव यों दो प्रकार है । पुन: सूक्ष्म निगोद और बादर निगोद यों दो भेद हक्त । सूक्ष्म निगोद चक्षु ग्राह्य नहीं होते और बादर निगोद के अस ख्य शरीर मिलने पर चक्षु ग्राह्य होते हक्त । इनका विशेष वर्णन, स्थिति आदि जीवाभिगम सूत्र में है ।

निबंध-२४

जन्म नपुंसक की मुक्ति

अन तरोत्पन्नक के उद्देशक में मनुष्य में कृष्णपक्षी के सिवाय पाये जाने वाले सभी बोलों में आयुष्य कर्म बा धने में चौथा भ ग लिया गया है अर्थात् कृष्णपक्षी के सिवाय प्रथम समय वाले सभी बोलों में मनुष्य चतुर्थ भ ग अनुसार "आयुष्य कर्म उस समय भी नहीं बा धते हक्त और भविष्य में भी नहीं बा धेंगे;" तो पूरे भव में आयुष्य नहीं बा धने से सभी बोलों वाले मनुष्य का मोक्ष जाना भी सिद्ध होता है । अन तरोत्पन्नक जीव में कृष्णपक्षी के सिवाय के बोलों में तीनों वेद भी सामिल हक्त । अत: जन्म समय के तीनों वेद वालों में आयुष्य कर्म ब ध का चौथा भ ग होने

से वे "मनुष्य आयुष्य कर्म नहीं बा धते हक्त और नहीं बा धेंगे" ऐसा भ ग होने से वे मोक्षगामी हो सकते हक्त । ***इस प्रकार इस शतक के दूसरे उद्देशक के आयुष्य ब ध के वर्णन से जन्म नपु सक का भी चरम शरीरी होना, मोक्षगामी होना स्पष्ट होता है ।***

निबंध-२५

व्यवहार राशि अव्यवहार राशि

इस शतक में बहुवचन से विवक्षित अनेक जीवों के लिये "भूतकाल में ४ गति में से कहाँ कर्मों का समार्जन(उपार्जन) और उनका आचरण (भुगतान) किया," इस स ब ध में चारों गतियों को लेकर आठ भ ग किये हक्त- (१) विवक्षित अनेक जीवों ने(सभी ने) मात्र तिर्यंच गति में भूतकाल में कर्म समार्जन और समाचरण किया अर्थात् वे जीव अभी तक अनादि से तिर्यंच गति में ही रहे हक्त, अन्य गति में भव या कर्म उपार्जन नहीं किया है उनकी अपेक्षा यह प्रथम भ ग बनता है । ***(इस भ ग वाले जीवों की अपेक्षा ही अव्यवहार राशी की सिद्धि होती है)*** अथवा (२) विवक्षित अनेक जीवों ने तिर्यंच और नरक में कर्म समार्जन एव समाचरण किया है अथवा (३) विवक्षित अनेक जीवों ने तिर्यंच तथा मनुष्य में कर्म समार्जन एव समाचारण किया है । इस प्रकार (४) तिर्यंच और देवगति में (५) तिर्यंच, नरक, मनुष्य में (६) तिर्यंच, नरक, देव में (७) तिर्यंच, मनुष्य, देव में (८) अथवा तिर्यंच, नरक, मनुष्य और देव चारों गति में विवक्षित अनेक जीवों ने कर्मों का समार्जन एव समाचरण किया है ।

इसी तरह ४७ बोलों में, फिर २४ द डक और उसमें पाने वाले बोलों में पापकर्म और आठों कर्म के भूतकाल में उपार्जन और फल भुगतान के आठ विकल्प सर्वत्र होते हक्त । २६ वें शतक में कर्म ब ध के त्रैकालिक ४ भ गों में से कम-ज्यादा भ ग होते हक्त और इस शतक के प्रकरण में सर्वत्र बिना किसी विकल्प के आठ ही भ ग होतेहक्त।

अन तरोत्पन्नक आदि अचरम तक के सभी उद्देशक में जहाँ जो बोल २६ वें शतक में कहे गये हक्त, जिस प्रकार कम ज्यादा कहे गये हक्त वैसे ही सभी पृच्छा का यहाँ कम ज्यादा करके कथन किया जाता है । भ गों का फर्क जो २६वें शतक में होता है, वैसा यहाँ नहीं होकर सर्वत्र भ ग तो

८ ही होते हक्त । बोलों का फर्क आदि २६वें शतक के समान यहाँ भी है ही । मात्र भ ग की स ख्या सर्वत्र ११ उद्देशक तक के बोलों में **आठ ही** स्थिरता पूर्वक कही जाती है । इसका कारण यह है कि २६वें शतक में वर्तमान और भविष्यकाल भी साथ में अपेक्षित है किन्तु इस अट्ठावीसवें शतक में केवल भूतकाल की ही पृच्छा है, वर्तमान एव भविष्य की पृच्छा नहीं है ।

निबंध-२६

सम्यकदृष्टि और लेश्या में आयुबंध

४७ बोल	समवसरण	आयुब ध
कृष्णपक्षी,मिथ्यादृष्टि,४अज्ञान	३	४ गति का
मिश्रदृष्टि	२ अज्ञान॰ विनय॰	दोनों वादी में अब ध
सम्यग्दृष्टि, चार ज्ञान	१ क्रिया॰	२ देव, मनुष्य का
तीन अशुभ लेश्या	४	क्रियावादी-मनुष्य/अब ध ३ समवसरण-४ गति का
तीन शुभ लेश्या	४	क्रियावादी-देव, मनुष्य का ३-समवसरण-३ गति का
मन:पर्यव ज्ञान नो स ज्ञोपयुक्त	१	वैमानिक देव का
अवेदी, अकषायी, अयोगी अलेशी, केवली	१	अब ध
शेष २२ बोल	४	क्रियावादी- २ गति का ३ समवसरण-४ गति का

विशेष- तीन अशुभ लेश्या में क्रियावादी नारकी, मनुष्यायु ब ध करते हक्त और मनुष्य-तिर्यंच आयुब ध नहीं करते हक्त । तीन शुभ लेश्या में क्रियावादी देवता, मनुष्यायु का ब ध करते हक्त और मनुष्य-तिर्यंच, देवायु का ब ध करते हक्त । मनुष्यायु का ब ध करते हक्त और मनुष्य-तिर्यंच, देवायु का ब ध करते हक्त ।

निबंध-२७

अच्छेरा स्त्री तीर्थंकर एवं दिगंबर सोच

लोक में कुछ स्वाभाविकताएँ अन तकाल से एक सरीखी चलती रहती है । फिर भी उसमें कभी कोई विशिष्ट घटना स योग से अपवाद (फरक)हो जाता है । इसी कारण इस अवसर्पिणी में १० घटनाएँ अनहोनी हो गई और स्वाभाविक लोक नियम से कुछ फरक हुआ है । इन्हें ही स्थानाग सूत्र में १० अच्छेरे के रूप में कहा गया है । जिसका वर्णन प्रश्नोत्तरी भाग दो में किया गया है । उसमें चोवीसवें तीर्थंकर भगवान महावीर से स ब धित ५ अच्छेरे हक्कऔर अन्य पाँच में मल्ली भगवती के स्त्री तीर्थंकर होने का अच्छेरा भी है यह कथन सामान्य ग्र थ का नहीं है कि तु ग्यारह अ गसूत्र में से दो शास्त्रों में है- (१) ठाणा ग सूत्र और (२) ज्ञाता सूत्र में । यहाँ ज्ञाता सूत्र में स पूर्ण दो भव सहित मल्लिकुँवरी के जन्म से लेकर निर्वाण तक का स्पष्ट वर्णन है । इसलिये आगम प्रमाण से समस्त श्वेताम्बर जैन १९ वें तीर्थंकर को स्त्री तीर्थंकर रूप में ही मानते-समझते हक्त ।

पूर्वभव में महाबल के जीव ने स यम तप का आचरण करते हुए साथी मुनियों से आगे के भव मे ऊँचा बनूँ, बड़ा बनूँ; इस भावना से कपट का सेवन करके साथियों के साथ धोखा करके स्वय ज्यादा तपस्या कर लेते थे । जब कि सभी का एक समान तप करने का आपस में स कल्प था । कुछ समय वह कपट निर तर चला था, जिसमें तल्लीनता होने से स्त्रीवेद का ब ध निकाचित पड़ गया था । तथापि स यम और तप तो उन सभी का उच्च उच्चतम ही जीवनभर रहा । महाबल मुनि में उच्च तप की तल्लीनता भी थी और तीर्थंकर गौत्र बाँधने के २० बोलों में अनेक बोलों की उत्कृष्ट रसायन भी थी । इसलिये उन्होंने तीर्थंकर नामकर्म भी निकाचित ब ध कर लिया । ऐसी विशिष्ट स योजना हो जाने के कारण लोक आश्चर्यभूत घटना बन गई कि वे तीर्थंकर भी बने और स्त्री भी बने ।

दिगम्बर जैनों की ऐसी समझ पर परा चली आ रही है कि अ गशास्त्र विच्छेद(नष्ट)हो गये थे । गणधरकृत एक भी अ गशास्त्र किसी को याद नहीं रहा था। दिग बर मत चलाने वाले श्रमण को भी अ ग का ज्ञान नहीं रहा था । उसे थोड़ा सा पूर्वज्ञान याने बारहवें दृष्टिवाद अ ग का कुछ अ श याद था । जिससे उसने दिग बर जैन मान्य ग्र थ रचे थे । इसलिये वे आज

तक अपने उन ग्र थों को मान्य करते है और श्वेता बर मान्य इन ग्यारह अग शास्त्रों को **श्वेता बर आचार्यों ने पीछे से नये ही बनाये हक्त,** ऐसा वे मानते एव निरूपण करते हक्त । अत: वे ठाणा ग सूत्र कथित १० अच्छेरे भी नहीं मानते तथा ज्ञातासूत्र के इस आठवें अध्ययन में आये मल्ली भगवती के विषय को भी नहीं स्वीकारते और मल्लीनाथ १९ वें तीर्थंकर पुरुष ही थे, ऐसा वे मानते हक्त । इस विषय में सामान्यतया हम उन्हें कुछ भी नहीं समझा सकते, वे भी समझ नहीं सकते, स्वीकार नहीं कर सकते । क्यों कि वे इन शास्त्रों को ही नहीं मानते तो फिर उन्हें किस आधार से समझाया जाय ?

वास्तव में उनकी चली आई समझ या पर परा भ्रमयुक्त, तर्क से अस गत और जानबूझकर किसी ने अपने खोटे दुराग्रह(अभिनिवेष) की लीपापोती के लिये चलाई हुई है । जिन जीवों के उस-उस प्रकार का मोह-अज्ञान कर्म उदय होता है, वे उन-उन खोटी समझ मान्यताओं को सही श्रद्धा करके चलते रहते हैं । तभी लोक में कितने ही अयोग्य, अशुद्ध, तर्कहीन, खोटे धर्म भी चलते है और उनके हजारों लाखों अनुयायी भी होते रहते हक्त ।

सही बात यह है कि तीर्थंकरों के शासन में क ठस्थ ज्ञान-दान, वाचना-प्रदान, स्वाध्यायमय जीवन सैकड़ों हजारों श्रमणों में चलता है । ग्यारह अ ग के अध्येता साधु और साध्वियाँ हजारों होती है । पूर्वों का ज्ञान केवल साधु ही करते हैं । साध्वियाँ पूर्वों का एव १२ वें दृष्टिवाद अ ग का अध्ययन करती-कराती नहीं है । तो दिग बर जैनों की कथन पर परा अनुसार "सारे ११ ही अ ग भगवान के शासन में एकदम इतने जल्दी नष्ट हो जाय, किसी भी साधु-साध्वी को ११ में से एक भी अ गशास्त्र याद नहीं रहा " यह बात एकदम खोटी कल्पित की गई हक्त । आज भी अनेकों साधु-साध्वीजी में अनेक शास्त्र क ठस्थ करने की पर परा चालू ही है । तो ड़ेढ़ हजार वर्ष पहले सभी साधु-साध्वी एकदम आगमज्ञान रहित कैसे हो गये ? क्या सभी साधु-साध्वी महाप्रमादी अज्ञानी हो गये थे ? इतना प्रमाद कैसे घुस गया था ? माना नहीं जा सकता । क्यों कि साधु-साध्वी सदा रात-दिन अपनी अपनी स्वाध्याय परियट्टना में लगे ही रहते थे और आज भी सेकड़ों साधु-साध्वी रात और दिन में स्वाध्याय पुनरावर्तन करते ही रहते

है । तो दिगम्बर जैनों के कहने से सभी जैन साधु-साध्वी अ ग आगम ज्ञान रहित अज्ञानी होना कैसे माना जा सकता है !!

इसीलिये ऊपर कहा गया है कि यह उनका कथन और पर परा भ्रमयुक्त, तर्क अस गत एव दुराग्रह से जानबूझकर खोटा रटन चलाया हुआ है पर तु ऐसा होना किसी तरह स भव नहीं हो सकता ।

जो ऐसा माना जाय कि सभी साधु-साध्वी ज्ञान रहित, अ गशास्त्र रहित हो गये थे तो फिर क्या इन सभी दिग बर श्वेताम्बर का धर्म अज्ञानियों ने ही चलाया और अज्ञानियों ने ही नये शास्त्र और ग्र थ रच लिये ? ऐसी मूर्खता भरी बात को विचित्र कर्मोदय वाले लोग चला देते हक्त और ऐसे कर्मोदय वाले लोग उनको स्वीकार भी लेते हक्त ।

बुद्धिमान मानवों की पर परा स सार में जबतक चलती है तब तक ज्ञान भी चलता है । भगवती सूत्र अनुसार पाँचवें आरे के २१ हजार वर्ष तक ज्ञान चलेगा तो क ठस्थ पर परा वाले जिन शासन में भगवान के बाद ५००-७०० वर्ष तक में स पूर्ण अ ग आगम ज्ञान भूल जाने, नष्ट हो जाने की बातें चलाना, घड़ना यह अच्छे मानस की बात नहीं है ।

दिग बर जैनों का यह कहना भी अच्छा नहीं है कि "वर्तमान में श्वेता बर जैनों के जो ११ अ ग है वे तो पुराने नष्ट होने पर आचार्यों ने बना लिये हक्त ।" ऐसा कहने का मतलब तो यह हुआ कि आगमज्ञान तो स पूर्ण नष्ट हो गया फिर अज्ञानी साधु रहे । उसमें अज्ञानी दिग बर आचार्यों ने नये ग्रथ बनाये और अज्ञानी श्वेता बर आचार्यों ने पुराने अ गशास्त्रों के नाम से नये शास्त्र बना लिये । तो भी इनके कथन अनुसार श्वेता बर जैनों को ११ अ गशास्त्र के नाम तो याद रह गये थे, उसके अ दर का ज्ञान वे भूल गये थे । ज्ञान भूलने वाले दोनों जैनों के आचार्यों ने ज्ञान बिना कैसे रचना की होगी ? बिना ज्ञान के गप्पे लगाने से क्या शास्त्र बन जाते हक्त ?

ऐसा कथन चलाने का मुख्य उद्देश्य यह समझना चाहिये कि श्वेता बर जैनों ने अपने वस्त्र की सिद्धि होवे ऐसे शास्त्र मनमाने बना लिये और दिग बर जैनों ने अपने नग्न रहने की और वस्त्र नहीं रखने की सिद्धि होवे ऐसे शास्त्र बना लिये और दोनों का अपना-अपना प थ अपने मनमाने बनाये शास्त्रों से चलने लगा ।

ऐसा सोचना मानना भी दिग बर जैनों के मान्य ग्र थों के लिये

घटित होता है कि तु श्वेता बर मान्य ग्यारह अ गशास्त्रों के लिये ऐसा घटित नहीं होता है ।

श्वेता बर शास्त्रों में कहीं भी नग्न रहने से मुक्ति नहीं होती है, ऐसा नहीं लिखा है । कि तु अचेल रहने के धर्म की मुक्तक ठ से प्रश सा की गई है । जब कि दिग बर जैनों के ग्र थों में कहीं भी वस्त्र रखने की प्रश सा नही की गई है, उल्टा वस्त्र रखने की निंदा-ख ड़न किया गया है और यहाँ तक कह दिया है कि वस्त्र का एक तार भी जो पास में रह गया तो उसकी मुक्ति नहीं होती । फिर भी उन्ही के ग्र थों में गृहस्थलि ग सिद्धा और अन्यलि ग सिद्धा तथा स्त्रीलि ग सिद्धा भी मान्य किया है । तो क्या वे सिद्ध होने वाले गृहस्थ और अन्यलि गी या स्त्रियाँ सभी क्या नग्न होंगे ?

इस प्रकार दोनों ही जैनों के शास्त्र देखने से भी स्पष्ट होता है कि श्वेता बर जैनों के शास्त्रों में दिग बर होने का कहीं ख ड़न नहीं है । यदि दिग बर जैनों से अपने को अलग सत्य सिद्ध करने के लिये श्वेता बर जैनों ने नये शास्त्र बनाये होते तो उसमें दिग बर धर्म की निंदा ही मिलती, प्रश सा तो नहीं ज मिलती, कि तु ऐसा नहीं है । जब कि दिग बर जैनों के शास्त्रों में स्त्रीमुक्ति और वस्त्र रखने का ख ड़न ही मिलता है म ड़न नहीं मिलता । अतः स्पष्ट होता है कि श्वेता बर आगम रागद्वेष रहित उभय धर्म स्वीकारने वाले होने से वे दिग बर जैनों के विरोध में या उनसे अलग होने पर बनाये गये हो ऐसा सिद्ध नहीं हो सकता । कि तु दिग बरों के शास्त्र अपने दिग बरत्व की पुष्टी होने से और स्त्रीमुक्ति के तथा वस्त्र के ख ड़न वाले होने से अपनी बात की शान के लिये नये बनाये हुए सिद्ध होते हक्त तथा अपने खोटे दुराग्रह की सुरक्षा के मानस से ११ अ ग को नष्ट होने की निरर्थक बात चलाना भी उनके लिये जरूरी हो गई है ।

इस तरह उभय पक्ष की बात को समझकर हमें अपनी आगम समझ को शुद्ध पवित्र रखना चाहिये । आगम को प्रमाणभूत नहीं मानने और भ्रमित प्रवाह में बहे जाने के स्वभाव वालों को और वैसे ही उदयकर्म वालों को समझाना हमारे लिये शक्य नहीं है एव आवश्यक भी नहीं है । अतः श्वेता बर आगमों की १० अच्छेरे की बात एव मल्ली भगवती के १९ वें स्त्री तीर्थंकर होने की बात में हमे कि चित् भी स देह नहीं करना चाहिये ।

दिग बर जैन स्त्री मुक्ति का सर्वथा निषेध करने के साथ-साथ स्त्री

को साधुत्व, छट्ठा गुणस्थान भी होना नहीं स्वीकारते । स्त्री में स यम की सर्वथा अयोग्यता मानते रहे हक्क ऐसा उनके मान्य ग्र थों से स्पष्ट होता है । तथापि कुछ वर्षों से ये जैन अपनी मान्यता के एव अपने आगम ग्र थों के विरुद्ध साध्वियों की स ख्या बढ़ा रहे हक्क, चातुर्मास सूचि में इनके साधु-साध्वी की स ख्या श्वेता बर के समान ही प्रतिवर्ष छपती है । फिर भी पुराना ढ़ोल पीटने के लिये ये साध्वीयों को **माताजी** कहकर पुकारते हक्क । यह भी एक बिड़ बना है । आचारा गसूत्र एव दशवैकालिक आगम अनुसार साधु किसी को माताजी, पिताजी ऐसा स बोधन करके नहीं बुलाता है । तथापि साध्वी स ख्या में उनकी गिनती भी करवाते हक्कइसका विरोध नहीं करते हक्क प्राचीन दिग बरों में साधु ही होते थे, साध्वियाँ या माताजी नहीं होते थे ।

वास्तव में आगम अनुसार स्त्री, पुरुष एव नपु सक तीनों प्रकार के मनुष्य मोक्ष के और धर्म के तथा स यम के अधिकारी हक्क जितने गुणस्थान पुरुष को आ सकते है उतने ही अर्थात् १४ ही गुणस्थान स्त्री एव नपु सक को भी आ सकते हक्क इसमें कहीं भी श्वेता बर जैनागमों से विरोध नहीं आता है । मात्र नपु सक को हम सामान्य ज्ञानी, श्रुतव्यवहारी दीक्षा देकर अपने स घ में साथ में नहीं रख सकते, ऐसी आगम आज्ञा है । इसमें साधकों के ब्रह्मचर्य की समाधि सुरक्षा का हेतु आगमकारों का रहा हुआ है कि तु उन्हें योग्यतानुसार स्वत त्र साधना करना, आगम विहारी द्वारा दीक्षा देना एव स यम तथा मुक्ति मिलना इत्यादि की मनाई नहीं है ।

निबंध-२८

आगमिक श्रावक और समुद्रों की यात्रा

श्रावक आखिर तो स सारी प्राणी है । उसे अपना मौज-शौख, सुख-भोग, ऐस-आराम, व्यापार-फेक्ट्रियाँ, नेतागिरि आदि कोई भी प्रवृत्ति छोड़ना जरूरी(कम्पल्सरी) तो नहीं होता है । हर व्यक्ति की अपनी पुरानी चलती जो भी प्रवृत्ति जीवन व्यवहार होता है उसे श्रावक बनते ही एक दिन में सबकुछ छोड़ देना शक्य नहीं होता है । ऐसे मानस की स्वय की तैयारी भी नहीं होती या परिवार साथी-सहयोगी आदि का भी स ब ध व्यवहार रखना होता है । श्रावक बनते ही खुद की सभी रुचियों का तत्काल त्याग जिनशासन में जरूरी नहीं होता है कि तु शिक्षा स स्कार निर तर ये मिलते रहते है कि स सार की रुचिएँ घटानी चाहिये । आर भ परिग्रह घटाना

चाहिये । व्यापार वाणिज्य भी दालरोटी मिले इतना ही करने में स तोष रखकर बिन जरूरत का नहीं बढ़ाना चाहिये । बल्कि धीरे-धीरे बिनजरूरी का विचार करके घटाते रहना चाहिये ।

अतः श्रावक बनने के पहले से जो व्यापार प्रवृत्तिएँ, शौख होते हक्क वे भी कुछ समय चल सकते हक्क । कुछ इच्छाएँ, अस तोष, लाचारी हो तो नये भी ध धे फेक्ट्री, नेतागिरी, राज्य स चालन आदि बन सकते हक्क । वह कोई साधु तो बना नहीं है । आदर्श और लक्ष्य तो श्रावक का त्यागप्रधान होना चाहिये । हमेशा मनोरथ और स स्कार भी परिग्रह और पाप व्यापार घटाने का एव नया नहीं करने का होना चाहिये । तथापि किसी किसी को जीवन की कुछ आका क्षाएँ होती है । जो श्रावक बनते ही नहीं छूटती हो तो श्रावक बनने के बाद भी वे प्रवृत्तिएँ वय के अनुसार बढ़ जाय तो उसका श्रावकपना सम्यग्दर्शन खराब है, ऐसा एका त तो नहीं कहा जा सकता । हाँ यदि ज्ञान स स्कार लक्ष्य का अभाव रहे और जीवन बेलगाम चले तो उसके श्रावकपन और समकित सभी के खतरे तो बने ही रहते है । इसलिये तो कहा गया है कि- **परमत्थ स थवो वा, सुदिट्ठ परमत्थ सेवणा वावि ।**

अर्थ- धर्म तत्त्वों का ज्ञान स स्कार बढ़े वैसा सत्स ग-परिचय करते रहना चाहिये । ज्ञानीजनों के दर्शन का लाभ एव जिनवाणी श्रवण का लाभ लेते रहना चाहिये । ये सम्यक्त्व के सुरक्षा स्थान है । सम्यक्त्व को पुष्ट करने वाले आल बन तत्त्व है । आन द कामदेव आदि श्रावकों के पास अपार धन(खरबों अरबों का) एव पशुस ग्रह था । वे भी श्रावक बनने के १४ वर्ष बाद निवृत्त बने और समस्त आर भ-परिग्रह का त्याग कर साधु जैसा जीवन जीने लगे थे तथा उस तरह की साधना भी ६ वर्ष करी थी ।

अतः श्रावक अपने जीवन में कोई भी आर भ-परिग्रह धीरे-धीरे छोड़े, शीघ्र छोड़े, यह उसका ऐच्छिक विषय है । सावधान रहना, स स्कार बढ़ाना इत्यादि जरूरी है और कुछ अवधि के बाद आर भ-परिग्रह सीमित करने के मनोरथ को सफल भी कर लेना चाहिये ।

निबंध-२९

कारण से रुके संत के साथ अन्य का कल्प

शैलक राजर्षि मध्यम तीर्थंकर के शासन में हुए थे । उनके लिये मासकल्प आदि का नियम पालन आवश्यक नहीं था । इसी कारण ५००श्रमण

वहाँ ठहरे थे । कथानक के आधार से अ तिम तीर्थंकर के शासन में नकल नहीं करनी चाहिए, सेवा में जितने श्रमण आवश्यक हो उनके अतिरिक्त छोटे बड़े किसी भी श्रमणों को अकारण कल्प मर्यादा से अधिक नहीं ठहरना चाहिए ।

निबंध-३०

ज्ञातासूत्र शैलक अध्ययन और दो प्रतिक्रमण

प थकमुनि ने देवसिक प्रतिक्रमण पूर्ण करके फिर चातुर्मासिक प्रतिक्रमण की आज्ञा ली, इस प्रकार उन्होंने उस दिन दोनों प्रतिक्रमण किये । मध्यम तीर्थंकरों के शासन में सप्रतिक्रमण धर्म नहीं कहा गया है । अतः वे नियमित देवसिक, रात्रिक प्रतिक्रमण नहीं करते थे । इसी कारण उन श्रमणों के पक्खी, चौमासी, स वत्सरी आदि पर्व दिनों में ही प्रतिक्रमण आवश्यक था । ऐसा यहाँ के वर्णन से अनुमान होता है । इसीलिये वे पहले देवसिक प्रतिक्रमण करके फिर उसके अन तर पक्खी, चौमासी या स वत्सरी प्रतिक्रमण करते रहे होंगे । ऐसा यहाँ के वर्णन से अनुमान द्वारा समझा जा सकता है । विधान रूप में यहाँ भी कोई कथन नहीं है ।

इस अनुमान से कोई अ तिम तीर्थंकर भगवान महावीर के शासन में नकल करके मनमाने दो प्रतिक्रमण करने का आग्रह करे तो यह अयोग्य है । क्यों कि आज आगमों में श्रमणों के प्रतिक्रमण स ब धी जो भी विधान है उसमें देवसिक रात्रिक उभयकाल प्रतिक्रमण के सिवाय कोई अन्य विधान है ही नहीं । मध्यम तीर्थंकरों के शासन के कथानक वर्णन मात्र से नकल कर पर परा चलाना अ धानुकरण है, अयोग्य है । इसी से कोई वर्ष में एक बार दो प्रतिक्रमण करते है तो कोई दो बार और कोई चार बार । जब कि मध्यम तीर्थंकर के शासन में तो देवसिक प्रतिक्रमण आवश्यक नहीं होने से २४ पक्खी को और एक स वत्सरी को यों २५ दिन दो प्रतिक्रमण करते रहे होंगे ऐसा अनुमान है । बाकी इस कथा वर्णन के सिवाय श्रमणों के उभयकाल प्रतिक्रमण का ही कथन शास्त्रों में है । आगमों में भगवान महावीर के श्रमणों के इन दो उभयकाल प्रतिक्रमण के सिवाय किसी भी तीसरे प्रतिक्रमण की कहीं ग ध मात्र भी नहीं है । क्यों कि सुबह-शाम दोनों समय कम्पल्सरी करना ही है तो अन्य कुछ तीसरा प्रतिक्रमण वहाँ खड़ा होता ही नहीं है ।

पर पराएँ बिना आगम आधार के भेड़चाल से, गुरु आज्ञा से चल जाती है । तो भी उसका दुराग्रह और खोटा प्ररूपण तो नहीं करना चाहिये । आगम आधार-प्रमाण बिना निरर्थक के वाद-विवाद बढ़ाकर समाज में नये-नये रागद्वेष के प्रस ग खड़े करना योग्य नहीं होता है ।

सार यह है कि दो प्रतिक्रमण करने की आज्ञा या विधान किसी भी शास्त्र में २४ वें तीर्थंकर के शासन के श्रमणों के लिये नहीं है । उनको तो उभय-काल प्रतिक्रमण की ही ध्रुव आज्ञा है । अन्य अड़ गों से समाज में बिखराव पैदा करना अज्ञान दशा एव हठाग्रह वृत्ति का सूचक है । व्रतधारी श्रमणों-पासक जो उभयकाल नियम से प्रतिक्रमण नहीं करते, उन्हें पर्व दिनों में उस दिन का एक पक्खी प्रतिक्रमण कर लेना भी पर्याप्त होता है । अन्य शासन के कथावर्णन से आगम आज्ञा बिना नकल करके उसे जरूरी नहीं बना देना चाहिये ।

निबंध-३१

अरणक श्रावक : मिथ्यात्व की प्रवृतिएँ

कुछ लौकिक प्रवृत्तिएँ सा सारिक प्रवाह रुचि से की जाती है। उन्हें सीधे मिथ्यात्व की प्रवृत्तिएँ कह देना योग्य नहीं है । वो गृहस्थ के जिताचार होते हक्त । अरणक श्रावक, जिसकी देवलोक की इन्द्रसभा में स्वय शक्रेन्द्र ने प्रश सा करी, उसे अनुपम दृढ़धर्मी-प्रियधर्मी सब देवों के सामने कहा । ऐसे श्रेष्ठ श्रावक ने अपनी लौकिक-सा सारिक प्रवृत्ति रूप में पुष्पार्पण से लेकर वादित्र वादन तक की प्रवृत्तिएँ की थी । उन प्रवृत्तियों को वह धार्मिक आचार नहीं समझता था । अतः उन लौकिक रिवाज की प्रवृत्तियों को करने से वह भ्रष्ट श्रावक नहीं कहलाया और उन प्रवृत्तियों से उसकी धर्म श्रद्धा- समकित में भी कोई नुकशान नहीं हुआ था । क्यों कि उसकी धर्म तत्त्वों की एव आचरणों की समझ शुद्ध-सही थी । कुछ लौकिक रिवाज गत मगल स्वरूप प्रवृत्तिएँ विघ्ननाशक समझकर मानव अपने कुल पर परा से गृहस्थ के जिताचार रूप में करते रहते हक्त । रोग स ब धी औषध-उपचार एव प्रेतात्मा स ब धी परेशानियों के उपचार भी श्रावक एव स्थविरकल्पी साधु करे तो वे प्रायश्चित्त के भागी नहीं बनते हक्त श्रावक एव स्थविरकल्पी साधु को अपने आचार में विशेष परिस्थिति में वे आचरण कल्प्य होते हक्त श्रावक के तो आगारधर्म ही है, उसके लिये खोटी समझ मान्यता

नहीं रखने के अतिरिक्त कोई भी प्रवृत्ति का एका तिक निषेध नहीं होता तथा सूत्रानुसार स्थविरकल्पी साधु भी औषध-उपचार या कोई झाड़ा-मतर आदि भी करवा सकता है, जिसका उसे कोई प्रायश्चित्त भी नहीं आता है ***-व्यवहार सूत्र ॥*** कोई जीव विराधना आदि हो तो ही उसका प्रायश्चित्त आता है कि तु औषध उपचार, सा प-बिच्छु का झाड़ाम तर करना मिथ्यात्व है ऐसा मान कर कोई उसे प्रायश्चित्त लेने का कहे तो वह आगम विरूद्ध कथन होता है ।

तात्पर्य यह है कि आदर्श श्रावक एव विशिष्ट साधक इन औषध उपचारों का त्याग करे तो वह अपनी दृढ़ता अनुसार कर सकता है और श्रावक भी आगे बढ़कर समस्त लौकिक रीतिरिवाज की प्रवृत्तियों का त्याग कर सकता है । कि तु जो जब तक ऐसा आदर्श त्याग नहीं कर सके तो उसे मिथ्यात्व के आक्षेप से मढ़ना आगमानुकूल नहीं कहा जा सकता ।

अतः दृढ़धर्मी-प्रियधर्मी तथा दैविक शक्ति से भी नहीं ड़िगने वाले अरणक श्रावक ने अपनी सहज प्रवृत्ति रूप में नावा में चढ़ने के पहले पुष्पार्पण, धूप आदि प्रवृत्तियाँ लौकिक आचार समझकर की थी । इसमें उसने अयोग्य या अपने धर्म विरूद्ध किया, ऐसा नहीं समझना चाहिये ।

जब तक श्रावक अपनी सामान्य स्टेज से आगे नहीं बढ़ पाता, लौकिक प्रवृत्तियों से मुक्त नहीं हो पाता, तब तक वह अपनी समझ में उन प्रवृत्तियों को धर्म का बाना नहीं पहिनावे । लौकिक आचार ही कहे, माने इतनी सावधानी उसे अवश्य रखनी चाहिये । जीव को मिथ्यात्व तो खोटी समझ, खोटी मान्यता से आता है । लौकिक या कुल पर परा के आचरण मात्र से मिथ्यात्व नहीं हो जाता है । ऊँची आगे की स्टेज में पहुँच कर श्रावक समस्त लौकिक और कुल पर पराओं का त्याग कर सकता है । यदि कोई जरूरी हो तो उसे वह पुत्र को सोंपकर आन द आदि श्रावकों की तरह पूर्ण निवृत्त हो सकता है । प्रवृत्तियों मात्र का त्याग बढ़ाना तो श्रेष्ठ ही है कि तु उसके लिये दुराग्रह या अति प्ररूपण करना उचित नहीं होता है ।

हमारे इस कथन को, निरुपण को कोई ढ़िलाई में बढ़ावा देना कहे या माने तो यह उसका अविवेक है । तब तो भगवान को श्रावक धर्म बताना भी ढ़िलाई को प्रोत्साहन देना हो जायेगा । भगवान को भी सभी को साधु बनने का एक ही उपदेश देना चाहिये । श्रावकपन तो ढ़िलाई का उपदेश है

ऐसा कहना व्यक्ति की अपनी स्वच्छ द बुद्धि का कथन होगा । भगवान तो स्यादवादमय उभय मार्ग का निरूपण करते हक्त । एक सरल भी एक कठिन भी जिसे जो अनुकूल पड़े स्वीकारे ।

निबंध-३२

अज्ञानी भोले जीव : कर्म बंध

पुरुषार्थ नहीं करने की रुचि वाले कुछ लोग ऐसा कह देते हक्त कि- **जाणे सो ताणे** । पर तु एका त ऐसा नहीं है । मूल प्रकृति किसी की खराब होती है, वह ज्ञान को पचा नहीं पाता है और बात-बात में ज्ञान के दुरुपयोग से दूसरों के दोष देखता रहता है; निंदा क्लेश करता है, वह उसका स्वभाव का दोष होता है । मूल में वह ज्ञान का अपात्र होने से आत्मा में ज्ञान के निमित्त से रागद्वेष करता रहता है । वास्तव में ज्ञानपरिणत जीव शा त, ग भीर, समपरिणामी, परम उदार भावों से जगत को ज्ञाता दृष्टाभाव से देखने वाले होते हक्त । वे मन में किसी के प्रति ऊँचे नीचे परिणाम नहीं करके तटस्थ, उदार एव अनुक पा भाव से ओत-प्रोत रहते हक्त। इसके विपरीत अज्ञानी भोले मूर्ख व्यक्ति अपनी उस अज्ञानता से निरर्थक ही कर्मों के ढ़ेर इकट्ठे कर लेता है । जिसका उसे अतीव दारुण दुष्फल भोगना पड़ता है । उसका भविष्य दीर्घकाल के लिये अ धकारमय बन जाता है । इसी तथ्य को इस अध्ययन में नागश्री ब्राह्मणी के वर्णन से प्रदर्शित किया गया है । द्रौपदी की भव कथा वहीं से प्रार भ होती है ।

निबंध-३३

दानशाला में जैन श्रमण गोचरी

दानशाला में जहाँ घर वाले एव कर्मचारी भोजन करते हों और उस दानशाला का आहार गरीबों-भिखारियों के सिवाय मेहमानों आदि के भी काम आता हो तो वहाँ जैन श्रमण योग्य समय में अर्थात् भीड़ भड़क्का न हो तो विवेक के साथ गोचरी जा सकते हक्त ।

निबंध-३४

विराधक संयम और दूसरा देवलोक कैसे ?

सुकुमालिका साध्वी शिथिलाचारिणी बन गई थी । वह कल्प से

विरुद्ध अकेली रहने लगी थी फिर भी अन्य स यम विधियों के पालन में, स्वाध्याय ध्यान में एव तप में वह तल्लीन रहती थी । इसलिये उसमें आगम अनुसार बकुश निय ठा और स यम का गुणस्थान रहा था । अतः वह उत्तरगुण की विराधिका होते हुए भी स यम के घर में गुणस्थान में काल करके दूसरे देवलोक में गई थी । अन्यथा तो विराधक साधु की गत प्रथम देवलोक तक की उत्कृष्ट हो सकती है, उसमें स यम का गुणस्थान और निय ठा अवस्था नहीं रहती है । सुकुमालिका साध्वी ने गुरुणी से स्वच्छ द होकर भी श्रद्धा प्ररूपणा एव तप साधना में अप्रमत्त रहने के कारण बकुश निय ठे की गति प्राप्त करी थी । बकुश निय ठा वाला श्रमण भगवती सूत्र श० २५, उद्दे० ६ अनुसार जघन्य प्रथम देवलोक, उत्कृष्ट १२वें देवलोक तक जा सकता है । तात्पर्य यह है कि शिथिलाचारी एव एकलविहारी होते हुए भी किसी में साधुपना रह सकता है । एका त उसे असाधु कहने वाले लोग विद्वान कहलाकर भी विवेक बुद्धि से विहीन और उत्सूत्र प्ररूपक होते हक्त । ऐसा इस सूत्रपाठ से स्पष्ट होता है ।

निबंध-३५

द्रौपदी और जिनपडिमा पूजा

प्रस्तुत पाठ में कोई भी तीर्थंकर के नाम बिना जिनपड़िमा शब्द है वह पाठ इस प्रकार है- **ण्हाया** *जाव* **सुद्धप्पावेसाइ म गलाइ वत्थाइ पवरपरिहिया जिणपड़िमाण अच्चण करेइ, करेत्ता जेणेव अ तेउरे तेणेव उवागच्छइ । तएण त दोवइ रायवरकण्ण अ तेउरियाओ सव्वाल कार विभूसिय करेइ ।**

द्रौपदी पूर्व भव में भोगों का निदान किये हुए होने से अभी तक प्रथम गुणस्थानवर्ती थी । स्नान करके अ तःपुर में आने के पहले मार्ग में उसने कामदेव की पूजा की । तीर्थंकर के नाम बिना केवल **जिन** शब्द के अनेक अर्थों में एक अर्थ **कामदेव** भी होता है, स्वय वर का एव पति के निर्णय का प्रस ग होने से एव प्रथम गुणस्थान वाली होने से तथा तीर्थंकर का नाम नहीं होने से यहाँ जिनपड़िमा शब्द से कामदेव का कथन ही योग्य होता है । कोषग्र थों में **"जिन"** शब्द के अनेक अर्थ कहे गये हक्त-

यथा- अर्हन्नपि जिनश्चैव, जिनः सामान्य केवली ।
क दर्पोपि जिनश्चैव, जिनो नारायणो हरि॥ -***हेमियनाममाला कोश.***

इस श्लोक में तीर्थंकर को, सामान्य केवली को, क दर्प-कामदेव को तथा नारायण हरि को भी जिन कहा जाना बताया है । सा सारिक प्रस ग होने से तथा तीर्थंकर का नाम नहीं होने से यहाँ कामदेव की प्रतिमा के पूजन के प्रास गिक अर्थ को छोड़ कर बिना नाम के तीर्थंकर की मूर्ति की पूजा का कथन समझना अयोग्य है । **पूर्वाचार्य विजयगच्छीय गुणसागर सूरीश्वरजी ने ढ़ालसागर** नामक काव्य के छट्ठे ख ड़ में कहा है कि-

करी पूजा काम देव की, भाखे द्रौपदी नार ।
देव दया करी मुझने, भलो देजो भरतार ॥

इस काव्य में भी मूर्तिपूजक आचार्य ने द्रौपदी के लिये कामदेव की प्रतिमा पूजन का ही प्रास गिक कथन किया है । अतः निदानकृत प्रभाव से युक्त प्रथम गुणस्थानवर्ती द्रौपदी के नाम से कोई बुद्धिमान तीर्थंकरों के शासन में आर भ-समार भ से परिपूर्ण मूर्तिपूजा की सिद्धि करे तो यह उनका बेतुका प्रयास ही कहलायेगा । जब कि द्रौपदी उस समय कोई श्राविका या साध्वी नहीं थी, धर्मिष्ठ भी नहीं थी । आगमों में श्रावकों के विस्तृत वर्णन वाले उपासक दशा ग सूत्र में उनके धनधान्य आदि समृद्धि के वर्णन में एक भी म दिर मूर्ति का उनके घर में होने का कथन नहीं है । उन श्रावकों की ल बी-चौड़ी दिनचर्या जीवनी में कहीं भी कभी मूर्ति के दर्शन पूजा का कथन नहीं है । अतः ऐसे अप्रास गिक स्थल से मूर्तिपूजा का अर्थ खींचकर स तोष मानना अपने आप में कमजोरी सिद्ध करना होता है ।

निबंध-३६

महाभारत की लडाई जुगार आदि

प्रश्न-१२ : कौरवों पाँड़वों की लड़ाई का, जुगार खेलने एव १२ वर्ष के वनवास आदि का कोई वर्णन यहाँ नहीं है ?

उत्तर- यहाँ के अंगआगम वर्णन अनुसार तो पाँडुराजा के राज्यकाल में ही पाँचों पाँड़व कृष्ण की आज्ञा से हस्तिनापुर छोड़कर चले गये थे और पाडु मथुरा में रहते हुए ही उन्होंने दीक्षा ली थी । इस प्रकार के आगम वर्णन से तो महाभारत के युद्ध होने के उपलब्ध कथा की कोई शक्यता नहीं लगती है क्यों कि पाँडुराजा स्वय हस्तिनापुर का राज्य स भाल रहे थे तभी पाँड़वों को देश निकाला कृष्ण ने दे दिया था ।

निबंध-३७

विगय सेवन, दवा सेवन और संयम मार्ग

विगय और महाविगयों का प्रचुर मात्रा में सेवन भी मानस में विकार दशा को जागृत करने का निमित्त बनता है । इसी कारण शास्त्र में तपरहित विगय सेवन कर्ता को पापश्रमण कहा है । विगयजन्य स भवित विकार तप के आचरण से उपशमित हो सकता है, वह सुसाध्य होता है कि तु औषधजन्य विकार महा उन्मादकारी होता है।

कुशल सेवानिष्ठ प थक के महिनों के प्रयास से शैलक राजर्षि का उन्माद शा त हो सका था । किन्तु ज्ञातासूत्र अध्ययन-१९ वर्णित क ड़रीक मुनि का विकारोन्माद उसे पूर्णतः ले डूबा । तीन दिन के क्षणिक विनश्वर जीवन के लिये वर्षों की उनकी स यम तप की कमाई बरबाद हो गई । यह निकृष्टतम दर्जे का आत्म-दिवाला निकालने का दृष्टा त है ।

स यम में अस्थिर चित होने वाले साधकों के लिये यह दृष्टा त बहुत ही मार्मिक एव अनुचि तनीय है । साधक को चाहिए कि उसने जिस वैराग्य से स यम ग्रहण किया है उसी को सदा स्मृतिपट पर रखकर उसे दृढ़तर करते रहना चाहिये । अनेक प्रकार की मानसिक बाधाओं को भी ज्ञान, वैराग्य और विवेक से दूर करते रहना चाहिये।

निबंध-३८

श्रावक को ज्ञान वृद्धि : योग्य सुझाव

(१) सम्यकत्व विमर्श, मोक्षमार्ग, नव तत्त्व सार्थ, समर्थ समाधान भाग-१, २, ३, उत्तराध्ययन सूत्र अनुवाद, दशवैकालिक सूत्र अनुवाद, जैन त्तत्त्व प्रकाश, प्रार भिक रूप में अवश्य पढ़ लेना चाहिये । **(२)** उपासक दशा सूत्र का सारा श वर्ष में अनेक बार पढ़ते रहना चाहिये । **(३)** बारह व्रतों का विस्तृत वर्णन महिने में दो बार पक्खी-पक्खी अवश्य पढ़ना चाहिये । **(४)** आगम के प्रति आकर्षण बढ़ने पर ३२ आगमों के हिन्दी सारा श की बत्तीस पुस्तकें एव चार छेदसूत्र विवेचन युक्त ब्यावर से प्रकाशित भी यथासमय पढ़ लेना चाहिये ।

एच्छिक अन्य चर्चा-साहित्य :- सद्धर्म म ड़न, समकित सार, सृष्टिवाद और ईश्वर, गणधरवाद, जिनागम विरुद्ध मूर्तिपूजा, लोकाशाह मत समर्थन,

स्थानकवासी जैन धर्म की सत्यता । जैन सिद्धा त बोलस ग्रह भाग एक से सात तक, मुखवस्त्रिका निर्णय, सम्यक्त्व शल्योद्धार इत्यादि निब ध चर्चा के साहित्य भी प्राप्त हो सके तो पढ़ना चाहिये ।

समस्त आगम(लेखक-स पादक) :- घासीलालजी म०सा०, मधुकर मुनिजी म०सा०, अमोलक ऋषिजी म०सा०, आत्मारामजी म०सा०; सैलाना, बीकानेर, जोधपुर एव जैनागम नवनीत प्रकाशन समिति आदि से प्रकाशित आगम साहित्य का अध्ययन करना ।

निबंध-३९

पाँच सौ हलवा और दिशा व्रत

पाँच सो हलवा प्रमाण क्षेत्र का अर्थ दो तरह से किया जाता है- (१) खेती की अपेक्षा (२) दिशाव्रत की अपेक्षा ।

खेती की अपेक्षा- खेती करने के काम आने वाला हल सो बार आना-जाना करे उतनी भूमि १०० निवर्तन रूप एक हलवा प्रमाण होती है । अर्थात् हल का एक बार आना और जाना ३ फुट का होता है । एक सो बार में ३०० फुट=१०० मीटर ल बा चौड़ा क्षेत्र एक हलवा प्रमाण होता है, इससे ५०० गुना क्षेत्र उन श्रावकों ने खेती के लिये रखा था ॥**-टीका।**

दिशाव्रत की अपेक्षा- १० हाथ का १ बाँस, २० बाँस का एक निवर्तन, १०० निवर्तन का एक हल । इस तरह १ हलवा=१००निवर्तन=२००० बाँस =२०००० हाथ । २०००० हाथ=५ हजार धनुष=ढ़ाई कोस का एक हलवा होता है । तो ५०० हलवा=१२५० कोस । एक कोस=४ कि.मी.तो १२५० कोस=१२५०x४=५००० किलोमीटर की दिशा मर्यादा उन श्रावकों ने रखी थी ***॥ विशेषणवती ग्र थ से ॥***

आगम पाठ में दिशा की मर्यादा का अलग पाठ उपलब्ध नहीं होने से अर्थात् पाँचवें व्रत के बाद सीधे सातवें व्रत का कथन है । इससे ऐसा अनुमान किया जाता है कि खेतवत्थु के परिमाण में ५०० हलवा दिशा के लिये कह दिया गया है । यदि उस मर्यादा को खेती की भूमि रूप में समझेंगे तो दिशिव्रत की मर्यादा का पाठ अनुपलब्ध है ऐसा मानना रहेगा । यों भी आठवें से १२ व्रत तक की मर्यादा या प्रत्याख्यान के पाठ की अनुपलब्धि मान ही रहें है क्यों कि उनके भी केवल अतिचारों के पाठ ही उपलब्ध है ।

सार यह है कि उन श्रावकों ने १२ ही व्रत पूर्ण रूप से धारण किये थे कि तु मूलपाठ की उपलब्धि में कुछ भी किसी भी कारण से कमी हुई हो ऐसा लगता है ।

स्थूल झूठ- राजद ड़े, लोकभ ड़े, दूसरे के साथ धोखा होवे, विश्वासघात होवे, बिना कसूर के किसी को भारी नुकसान भुगतना पड़े, इज्जत व धर्म को ठेस लगे, जीवन कल कित होवे; ऐसे झूठ को स्थूल झूठ समझना । उसी को श्रावक के त्याग में कहा गया है । उसमें भी (१) व्यापार स ब धी (२) पशु स ब धी (३) भूमि-स पत्ति स ब धी (४) धरोहर स ब धी (५) खोटी साख भरने स ब धी । ये पाँच प्रकार के स्थूल झूठ का व्रत में त्याग करना कहा गया है ।

स्थूलचोरी-अदत्तादान-(१) घर-दिवाल में सेंध लगाकर, (२) माल सामान की गाँठे-पेकेट खोलकर, (३) तालों में दूसरी चाबी लगाकर या ताले तोड़कर, (४) मार्ग में चलते हुए को या कहीं भी किसी को लूँट झपट कर दूसरों का माल-सामान प्राप्त करना, (५) कहीं भी पड़ी हुई या रखी हुई किसी की मालिकी की वस्तु चोरी की भावना से उठा लेना । ये पाँच प्रकार की मोटी-स्थूल चोरी कही गई है । तात्पर्य यह है कि व्यापार स ब धी, आदत स ब धी, छोटे मोटे झूठ या चोरी का समावेश यहाँ व्रत में नहीं है, अतिचार में उनका समावेश स भव है ।

आयाण भरिय सि- यह शब्द उपासकदशा शास्त्र के चार अध्ययनों में है। पानी से भरे कड़ाई का कथन इस शब्द से किया गया है । अत: यहाँ **आयाण** का अर्थ **पानी** है । टीका में **आयाण** का अर्थ **पानी या तेल** ऐसा स शयात्मक दिया गया है पर तु मूल पाठ में उबालने की बात है। किसी भी पदार्थ को उबालना पानी में होता है । तेल में चीज उबाली नहीं, तली जाती है । प्रस्तुत में तलने का प्रयोजन नहीं है। अत: **आयाणभरिय सि** में **आयाण** शब्द से पानी अर्थ करना ही उपयुक्त है ।

निबंध-४०

भिक्षुपडिमा और ११अंगों का ज्ञान

गौतमकुमार ने १२ वर्ष की दीक्षापर्याय का पालन किया । इनकी दीक्षा समय की उम्र का एव कुल उम्र का कथन सूत्र पाठ में नहीं है तथापि

उस समय की उम्र अनुसार हजार-बारहसो वर्ष की परिपूर्ण उम्र होनी चाहिये ।

इन्होंने पिछली उम्र में दीक्षा लेकर के भी १२ वर्ष की दीक्षा पर्याय में **११ अ गशास्त्रों** का क ठस्थ ज्ञान किया । **भिक्षु की १२ पड़िमाएँ** धारण करके उनका यथार्थ आराधन किया । उसके बाद **गुणरत्न स वत्सर** तप का भी आराधन किया ।

आज कल के या मध्यम काल के आचार्य भगव त हर विशिष्ट तप साधना आदि के लिये ९ पूर्वों के ज्ञान को जबरन **लगा** देते है । यह मात्र खोटा ढ़र्रा पड़ गया है । आगम के मूलपाठों से वह कथन विपरीत एव उत्सूत्र प्ररूपण वाला होता है । फिर भी विद्वान कहे जाने वाले भी आ ख मीचकर वही रटन करते जाते हक्त । कहने का तात्पर्य यह है कि भिक्षुपड़िमा या एकल विहार के लिये जो पूर्वों के ज्ञान की बात चलाई जाती है वह प्रस्तुत सूत्र और अन्य अनेक सूत्रों से विरुद्ध है । प्रस्तुत सूत्र में ११ अ ग के पाठी अर्थात् पूर्वज्ञान के बिना भी अनेक साधुओं के भिक्षु प्रतिमा धारण करने का वर्णन स्पष्ट है । इसमें पूर्वों के ज्ञान की कोई ग ध भी नहीं है । तथा पूर्वों के ज्ञान की बात पड़िमा धारण करने वालों के लिये किसी भी शास्त्र के मूलपाठ में नहीं है, जब कि ११ अ गज्ञान के धारकों के लिये भिक्षुपड़िमा का धारण करना मूलपाठ में अनेक जगह है ।

गौतम मुनि ने भगवान की आज्ञा लेकर ही भिक्षु पड़िमा आदि तप किये थे । अ त में १ महिने का स थारा करके शत्रु जय पर्वत (पालीताणा) पर मोक्ष पधारे । इन्हें उम्र के अ तिम क्षणों में ही केवलज्ञान हुआ और फिर स पूर्ण कर्म क्षय कर मुक्त हुए । इसलिये ये अ तकृत केवली कहलाते है । प्रस्तुत सूत्र में वर्णित ९० ही आत्माओं को जीवन के अ तिम क्षणों में ही केवलज्ञान और फिर मुक्ति हुई थी।

निबंध-४१

गौतमादि १८ सगे भाई नहीं

प्रथम वर्ग के शेष ९ समुद्रकुमार आदि भी गौतमकुमार के सगे भाई थे अर्थात् इन सभी के पिता अ धकवृष्णि राजा और माता धारिणी राणी थी। गौतमकुमार के समान ही सभी ने कुमारवास में (अर्थात् राजा बने बिना) और पिछली वय में दीक्षा ली थी । सभी का आठ कन्याओं के साथ पाणिग्रहण हुआ था और १२ वर्ष की दीक्षापर्याय, ११ अ ग का

आगमज्ञान, भिक्षुपड़िमा, गुणस वत्सर तप आदि समान थे । ये भी एक महीने के स थारे से शत्रु जय पर्वत पर मोक्ष पधारे ।

दूसरे वर्ग के आठ अध्ययन के अक्षोभकुमार आदि आठ भाईयों का वर्णन भी गौतम कुमार के समान कहा गया है । कि तु उनके स ब धी आगम के मूलपाठ में पिता के नाम में फर्क है । अर्थात् इन आठ के पिता **वृष्णि** और माता **धारिणी** कही हैं । मूलपाठ में यहाँ अ धक वृष्णि नहीं कहा गया है और किसी भी प्राचीन प्रत में कहीं भी अ धक शब्द नहीं है । यदि माता पिता प्रथम वर्ग वाले ही होते तो उनका यहाँ स्पष्ट नाम नहीं होता कि तु स क्षिप्त पाठ में उसका समावेश कर दिया जाता । अतः दूसरे वर्ग के आठकुमार के **वृष्णि पिता** और **धारिणी माता** प्रथम वर्ग के **अ धक वृष्णि** और **धारिणी** से अन्य समझना ही सीधा और सरल अर्थ होता है । दोनों वर्गों के नामों को आपस में टकराने और मेल मिलाने का प्रयत्न करके उलझन में नहीं पड़ना चाहिये । धारिणी राणी तो अनेक राजाओं के या भाईयों के होना स भव है क्यों कि यह एक राणियों का प्रसिद्ध नाम है । यथा-प्रस्तुत सूत्र में (१) प्रथम वर्ग के अ धकवृष्णि के धारिणी राणी (२) दूसरे वर्ग में वृष्णि के धारिणी राणी । (३) तीसरे वर्ग में वसुदेवजी के धारिणी राणी के **सारण** पुत्र (४) तीसरे वर्ग में बलदेवजी के धारिणी राणी के सुमुख, दुर्मुख, कूपक तीन पुत्र (५) तीसरे वर्ग में अनादृष्टि और दारुक के भी धारिणी माता कही है । आज भी कोई कोई नाम वाले तो एक ही गाँव में, एक ही शहरो में अनेक और सैकड़ों स्त्री पुरुष होते हक्त ।

प्रस्तुत दोनों(पहले-दूसरे) वर्गों के ४ व्यक्तियों के नाम परस्पर समान है-समुद्र, सागर, अचल, अक्षोभ । इसलिये भी दोनों वर्गों के अ धक-वृष्णि और वृष्णि को अलग ही रखना उपयुक्त है, एक कर देना योग्य नहीं है । क्यों कि एक ही पिता और एक ही माता की स तानों के नाम अलग-अलग होते हक्त । जब कि यहाँ दोनों वर्गों में चार नाम एक सरीखे है । अतः मूलपाठ के अ धकवृष्णि और वृष्णि नाम जो आये हक्त उन्हें ज्यों के त्यों ही रखना चाहिये, अपने मन से जोड़कर एक सरीखा नहीं कर देना चाहिये ।

इस प्रकार दो वर्गों में १८ यादवकुमारों का एक सरीखा वर्णन होने से सभी कुमारवास में दीक्षित होने वाले हक्त । कोई भी राजा नहीं बने थे कि तु यौवन वय में ८ राजकन्याओं के साथ पाणिग्रहण कर राजसी वैभव सुख

समृद्धि का भोगोपभोग करने के बाद, पिछली वय में कृष्ण के वासुदेव पद प्राप्ति के बाद, अरिष्टनेमि अरिह त तीर्थंकर के शासन प्रवर्तन करने के बाद दीक्षित हुए थे और इस दूसरे वर्ग के आठों कुमारों की दीक्षापर्याय १६ वर्ष की थी । इस वर्णन से यह भी स्पष्ट होता है कि अरिष्टनेमि के शासन काल तक उनके(अरिष्टनेमि के) दादा अ धकवृष्णि राजा मौजूद थे ।

समुद्रविजय जी आदि दस दशार्ह :-

यहाँ वर्णित दोनों वर्गों के गौतमकुमार आदि का वर्णन एक समान होने से ये सभी कुमारवास में दीक्षित थे । और इनकी माताएँ सरीखे नाम वाली धारिणी थी ।

समुद्रविजय आदि दश दशार्हों के माता का नाम सुभद्रा था । वे दसों राजा बने थे । और उन दसों का क्रम सर्वत्र एक सरीखा मिलता है अर्थात् **प्रथम** नाम समुद्रविजय **दूसरा** अक्षोभ **नौवाँ** अभिचन्द्र और **दसवाँ** वसुदेव इस प्रकार नाम मिलता है । प्रस्तुत दोनों वर्गों में प्रथम नाम क्रमशः गौतम और अक्षोभ है और शेष नामों के क्रम भी इन दस दशार्हों के नाम से कोई मेल खाने वाले नहीं है । तथा यहाँ के वर्णन में सभी के आठ स्त्रियाँ कही है, उसका भी मेल दश दशार्ह से नहीं हो सकता है । अतः अ धकवृष्णि पिता एव सुभद्रा माता के समुद्रविजय जी आदि दस दशार्ह को इन अठारह से भिन्न ही रखना एव समझना चाहिये । यहाँ के वर्णन में कृष्ण की ऋद्धि के साथ दस दशार्ह राजाओं को प्रथम ही अलग कह दिया गया है । उसके अन तर इन अठारह का जन्म, पाणिग्रहण, दीक्षा आदि वर्णन अलग से किया है । अतः सुज्ञ पाठकों को नाम साम्यता के चक्कर में अलग-अलग वर्णित इन यादवकुमारों को एव राजाओं को एक समझने के भ्रम में नहीं पड़ना चाहिये । इनके नामों के क्रम का अ तर नीचे दिया जाता है । पाठक ध्यान से देखेंगे ।

क्रम	अ धकवृष्णि पिता धारिणी माता प्रथम वर्ग	वृष्णि पिता धारिणी माता दूसरा वर्ग	अ धकवृष्णि पिता सुभद्रामाता-दसदशार्ह तीर्थंकर चरित्र
१	गौतमकुमार	अक्षोभ	समुद्रविजय
२	समुद्र	सागर	अक्षोभ
३	सागर	समुद्र	स्तिमित

४	ग भीर	हिमव त	सागर
५	स्तिमित	अचल	हिमवान
६	अचल	धरण	अचल
७	का पिल्य	पूरण	धरण
८	अक्षोभ	अभिच द्र	पूरण
९	प्रसेनजित	–	अभिच द्र
१०	विष्णु	–	वसुदेव

तीनों ग्रुप अलग-अलग हक्त । तीनों को एक करने से अनेक उलझने पैदा होती है जिसका सही समाधान बड़े बड़े आचार्यों से भी होता नहीं है । समाधान नहीं हो सकना भी यही सिद्ध करता है कि तीनों परिवारों को सूत्र पाठ अनुसार अलग-अलग ही रहने देना चाहिये और समझना चाहिये ।

वास्तव में तीनों क्रम भी अपने आप में सही है । दो तो यहाँ मूल पाठ में दो वर्गों में है और तीसरे दस दशार्ह का क्रम टीका एव त्रिषष्टि शलाका चारित्र अर्थात् तीर्थंकर चारित्र से प्रमाणित है । यों तीनों के क्रम में किसी प्रकार की एकरूपता स भव भी नहीं है ।

आज तक यह प्रश्न अनेक विध चर्चा के रूप में और कल्पनाओं के रूप में उपस्थित हुआ है । कि तु ठोस निर्णायक समाधान किसी भी विद्वान के विश्लेषण में उपस्थित नहीं किया गया है । उन सभी समीक्षाओं को मद्देनजर रखते हुए मूलपाठ को ईमानदारी पूर्वक, **है जैसा ही ग्रहण करते हुए** उपरोक्त समाधान स घट्टना की गई है । आशा है पाठकों को इससे वास्तविक सत्य समझने का मौका मिलेगा । पर परा के आग्रही कुछ लोग अलग ढ़ ग से विचारेंगे उनका तो कोई इलाज शक्य नहीं है ।

सत्य तो यह है कि पर परा से तो मूलपाठ का महत्त्व सर्वोपरि होता है । मूलपाठ में इन अठारह कुमारों के लिये जैसा स्पष्ट पाठ में है और स क्षिप्त पाठ में गौतम के समान होना कहा गया है, उसे ही यहाँ स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है ।

इन दोनों वर्गों के १८ आत्माओं के लिये कहीं भी दस दशार्ह में से इनके होने का कोई स केत भी नहीं किया गया है । तब अन्यत्र वर्णित दस दशार्ह की सुभद्रा माता को छोड़कर जबरन धारिणी माता मान लेने का झूठा आग्रह करना भी व्यर्थ ही होता है और धारिणी माता नहीं मानेंगे तो

उन दस दशार्हों को यहाँ नहीं जमाया जा सकेगा । क्यों कि यहाँ के व्यक्तियों की माता का नाम स्पष्ट रूप से धारिणी कहा गया है । अत: तीन विभाग वाले इन सरीखे नाम वालों को तीन विभाग में रहने देना ही सर्व अपेक्षाओं से श्रेष्ठ और समाधान युक्त होता है अर्थात् मूलपाठ के **वण्हि** को **अ धग वण्हि** नहीं करना तथा दस दशार्ह की सुभद्रा माता को बदलकर धारिणी माता नहीं मानना चाहिये ।

स क्षिप्त सार :– (१) प्रथमवर्ग वाले १० कुमारों के पिता अ धकवृष्णि माता धारिणी थी (२) दूसरे वर्ग वाले आठ कुमारों के पिता वृष्णि और माता का नाम धारिणी था । अत: दोनों वर्ग वालों के माता पिता, दोनों ही भिन्न थे । क्यों कि १८ के माता पिता एक ही होते तो दो वर्ग नहीं करके एक वर्ग में एक सरीखे १८ अध्ययन कह दिये जाते। अ तर केवल दीक्षापर्याय १२ वर्ष और १६ वर्ष का बता दिया जाता । केवल दीक्षापर्याय की भिन्नता के लिये वर्ग अलग नहीं किया जाता है। अलग वर्ग करने से भी माता पिता भिन्न होना जरूरी लगता है । (३) दस दशार्ह इन १८ कुमारों से अलग थे क्यों कि वे कुमार नहीं किन्तु राजा थे और उनकी **माता** धारिणी नहीं सुभद्रा थी। सुभद्रा अ धकवृष्णि की अन्य पत्नि थी । (४) दो वर्गों में वर्णित १८ कुमारों की ८-८ पत्नियाँ थी । किन्तु दस दशार्ह के पत्नियों का वर्णन भिन्न ही है ।

निबंध-४२

४५ आगम और प्रकीर्णकों की अनिश्चितता

श्वेता बर मूर्तिपूजक समुदाय में जब ४५ आगम की स ख्या कायम की गई । तब कितने ही समय तक ऋषिभाषित आगम को ४५ की स ख्या में कालिक सूत्र होने से और उपलब्ध होने से स्वीकारा जाता रहा है । कि तु बाद के आचार्यों द्वारा १० प्रकीर्णकों के गिनने के आग्रह में और छोटे-छोटे आगम को गिनने की रूचि से इस बड़े आगम को ४५ में गिनना छोड़ा जाने लगा है । जिससे वर्तमान में उनकी ४५ की गिनती में यह आगम भले नहीं गिनते पर तु मुनिश्री पुण्य विजयजी ने पुराने आचार्य के ग्र थ में जो ४५ आगम की गिनती उन आचार्य के नाम से दर्शाई है, उसमें ऋषिभाषित सूत्र का ४५ में स्पष्ट उल्लेख है । उस गिनती में के १-२ और भी आगमों को वर्तमान के मूर्तिपूजक लोगों ने गिनना छोड़ दिया है । उन्हें छोड़कर दूसरे गिन लेने का कोई कारण नहीं दिखता है ।

इस प्रकार अपनी ही पूर्व पर परा में गिने जाने वाले आगम को उन्होंने मनमाने छोड़ना और दूसरे गिन लेने का रवैया रखा है । इसलिये कई उनके विद्वान स त लिखते हक्त कि ४५ आगम का एक सही निश्चित रूप कह पाने के लिये कोई ठोस आधार नहीं मिल पाता है । इस तरह स ख्या में ४५ कहने में अनेक मतमता तर मिलते आ रहे हक्त, ऐसा मूर्तिपूजक स्वय स्वीकारते हक्त । सार यह है कि यह ऋषिभाषित सूत्र एक समय ४५ आगमों में गिना जाता रहा है और न दी की कालिक सूत्र सूची में इसका नाम है और इसके अन्य कोई रचनाकार का नाम नहीं मिलता है । इससे भी प्रश्नव्याकरण के ४ रूपों से एक विभाग रूप में इसे मान्य करने में कोई भी अयोग्य होने जैसा या विरोधजनक कुछ भी नहीं होता है । बल्कि वह स्वय आगम पाठ से आधारित होता है । आचार्य उमास्वाति के तत्त्वार्थ सूत्र में तथा जयधवला दिगम्बर ग्र थ में भी उत्तराध्ययन और ऋषिभाषित दोनों का नाम एक साथ मिलता है । जिससे जयधवला के कर्ता वीरसेन आचार्य और उमास्वाति आचार्य के समक्ष ये दोनों शास्त्र होना स भव है ।

तेराप थी आचार्यश्री तुलसी के उद्धत वाक्य- "उक्त आगम ग्र थों में प्रस्तुत (प्रश्नव्याकरण) सूत्र का जो विषय वर्णित है वह आज उपलब्ध नहीं है । आज जो उपलब्ध है उसमें पाँच आश्रव और पाँच स वर का वर्णन है, जिसका **न दी में** कोई उल्लेख नहीं है । स्थाना ग-समवाया ग में आचार्य भाषित आदि अध्ययनों का उल्लेख है तथा जयधवला में आक्षेपिणी आदि धर्मकथाओं का उल्लेख है । **इससे अनुमान किया जा सकता है कि प्रस्तुत आगम में उपलब्ध(आश्रव-स वर रूप)** विषय भी प्रश्नों के साथ प्राचीन समय में रहा हो और प्रश्न आदि को लिपिबद्ध नहीं किया हो तब आश्रव-स वर का यह विषय प्रस्तुत आगम रूप में बचा हो । न दी चूर्णिकार ने भी आश्रव-स वर के उपलब्ध विषय का उल्लेख किया है ।"

आगम प्रभाकर पूज्यश्री पुण्यविजयजी म॰सा॰ के स पादित न दीसूत्र की प्रस्तावना के वाक्य(प्रकीर्णक स ब धी):- "अहीं पहेला जणाव्या मुजब दश प्रकीर्णक सूत्रोना निश्चित नामनी कोई पर परा नथी मलती," "बाकी ऊपर जणाव्या प्रमाणे दस प्रकीर्णकोना नामनो कोई निश्चित आधार आज सुधी मल्यो नथी, ए एक हकीकत छे" **"विक्रमना चौदमा शतकमा थयेला आचार्य श्री प्रद्युम्नसुरीश्वरजीए रचेला-** विचार सार प्रकरणमा

आगमोना पिस्तालीस नाम जणाव्या छे, तेमा पण दस प्रकीर्णकोनो स्पष्ट **उल्लेख नथी"** । प्रकाशित **विचार सार प्रकरण ग्र थ** में ४५ आगमों का उल्लेख इस प्रकार है- (१) आचारा ग से लेकर (११) विपाक सूत्र (१२) उववाई से लेकर (२३) वण्हिदशा (११ अ ग+१२ उपाग=२३) (२४) द्वीप सागर प्रज्ञप्ति (२५) बृहत्कल्प (२६) निशीथ (२७) दशाश्रुतस्क ध (२८) व्यवहार सूत्र (२९) उत्तराध्ययन (३०) ऋषिभाषित (३१) दशवैकालिक (३२) आवश्यक सूत्र ।

(३३) त दुलवैतालिक (३४) च द्रावेद्यक (३५) गणिविद्या (३६) नरक विभक्ति (३७) आतुर प्रत्याख्यान (३८) गणधरावली (३९) समुत्थान सूत्र(देवेन्द नरेन्द्रा) । (४०) मरणविभक्ति (४१)ध्यानविभक्ति (४२) पाक्षिक सूत्र (४३) न दीसूत्र (४४) अनुयोगद्वारसूत्र (४५) देवेन्द्र स स्तव । ये ४५ सूत्रक्त ह ।

ये ४५ आगम के नाम उक्त ग्र थ की गाथा-३४४ से ३५१ तक में दिये हक्त । जिसे आगम प्रभाकर मुनिश्री पुण्यविजयजी स पादित श्री महावीर जैन विद्यालय मु बई से ईस्वी सन १९८४ में प्रकाशित प्रकीर्णक सूत्र मूल पाठ की पुस्तक की प्रस्तावना पृष्ठ-२१ में देखा जा सकता है ।

इस ऊपरोक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि ऋषिभाषित सूत्र विक्रम की चौदहवीं शताब्दी में(अर्थात् लोकाशाह के पूर्व भी) ४५ आगम में गिना जाता रहा है । वर्तमान में ४५ आगमों के नाम स कलन भी भिन्न हो गये है और प्रकीर्णक के नामों की निश्चित पर परा तो कभी हुई ही नहीं है, ऐसा उक्त उद्धरण में स्वीकारा गया है ।

निबंध-४३

सशरीरी साधु का संपूर्ण अहिंसकपना कैसे ?

जिस प्रकार पानी से भरा गिलास उल्टा कर देने पर उसमें से स पूर्ण पानी निकल जाना कहा जाता है । तथापि पानी की गिलास में कुछ कुछ पानी लगा रहता है, वह व्यवहार से नगण्य हो जाता है । इसी व्यवहार नय से श्रमण को तीर्थंकरों ने अपेक्षा विशेष से ही स पूर्ण अहिंसक कहा है । जिसमें वह स्वय तीन करण तीन योग से हिंसात्याग करता है और आवश्यक तथा जिनाज्ञा युक्त प्रवृत्तियाँ स यम से यतनापूर्वक करते हुए उसे पापकर्म रूप कर्म का ब ध नहीं होना भी दशवैकालिक में

कहा है तथा दशवैकालिक सूत्र में श्रमण के ५ महाव्रत और ६ काय हिंसा-विराधना का त्याग किस प्रकार का होता है वह भी सैद्धा तिक दृष्टि युक्त स्पष्टीकरण के साथ कहा गया है ।

उसी अध्ययन से नवदीक्षित श्रमण को पुनः महाव्रतारोपण बड़ी दीक्षा का पाठ पढ़ाया जाता है । इस दीक्षापाठ से भी स्पष्ट होता है कि प्राप्त शरीर से १३ वें गुणस्थान तक स्वतः अनायास वायुकाय आदि की जो विराधना होती रहती है, उसे नगण्य गिना जाता है । इस दृष्टि से छट्ठे गुणस्थान से तेरहवें गुणस्थान तक के स पूर्ण अहिंसक श्रमणों में से छट्ठे गुणस्थान में प्रमाद से और आगे के गुणस्थान में शरीर निमित्तक स्वतः विराधना चालू होती है, वह नगण्य होती है । उसके रहते भी तीर्थंकरों ने(आगमकारों ने) श्रमणों को स पूर्ण अहिंसक व्यवहार नय से स्वीकारा है । इस व्यवहारनय में प्रविष्ट छट्ठे गुणस्थान के अहिंसक श्रमण साधना में प्रगति करते हुए, उदय कर्मांशों को न्यून करते हुए, एक दिन तेरहवें गुणस्थान के सर्वज्ञ अहिंसक बनकर यथासमय १४ वें गुणस्थान के योग रहित अहिंसक बन जाते हक्त फिर वे ही शरीर रहित अहिंसक सिद्ध अवस्था में नगण्यता रहित सर्व अहिंसक बन जाते हक्त । तात्पर्य यह है कि निश्चय नय के सर्व अहिंसक बनने हेतु व्यवहार नय के सर्व अहिंसक श्रमण होना आवश्यक है । अतः स पूर्ण शक्य स्ववश की हिंसा त्याग तीन करण तीन योग से एव सभी नियम उपनियम के साथ किये जाने के कारण श्रमण को सर्व अहिंसक या अहिंसा महाव्रत पालक कहना सर्वथा उचित ज्ञानियों ने स्वीकारा है ।

वायुकाय की विराधना आदि स ब धी कुछ विश्लेषण हेतु आचारा ग प्रश्नोत्तर पिंड़ेषणा अध्ययन का १४वाँ प्रश्न पृ-१२५ देखना चाहिये ।

निबंध-४४

गाँवों मे १, नगरों में ५ रात रहने का मतलब

ये अपरिग्रही श्रमण विचरण काल में छोटे गाँवों मे एक रात ए व नगरों में पाँच रात से अधिक नहीं रहते हुए अनासक्त निर्मोह भाव से विचरण करे । यह श्रमणों का आदर्श मार्ग है । कल्प की अपेक्षा स्थविर कल्पी सामान्य साधु का विचरण काल में उत्कृष्ट कल्प २९ दिन का है । साध्वी का ५८ दिन का है एव पड़िमाधारी का एक या दो दिन का है । इससे अधिक पड़िमाधारी कहीं भी नहीं ठहरते । जिनकल्पी के लिए श्रुति

परम्परा में वर्णन है कि वे स यम में एव परिचर्या में बाधा न पड़े तो २९ दिन के पहले किसी भी क्षेत्र से विहार नहीं करते ।

इस सूत्र से अर्थ भ्रम भी होता है कि गाँवों में सात दिन और नगरों में २९ दिन रहना कल्पता है किन्तु यह आगम सम्मत नहीं है। कल्प तो २९ दिन का ग्रामादि सभी क्षेत्रों का बृहत्कल्प सूत्र में बताया है ।

पड़िमाधारी श्रमणों के लिए यह सूत्र है, ऐसा कथन करना भी अनुपयुक्त है । क्यों कि उनके तो पाँच रात्रि कहीं भी ठहरने का विकल्प होता ही नहीं है । एक या दो रात का ही विकल्प है । परिशेष न्याय से इस सूत्र का भाव ५००-१००० आदि स ख्या में विचरण करने वाले महाश्रमणों की अपेक्षा समझ लेना उपयुक्त होगा । अधिक स ख्या होने से वे श्रमण ग्रामों में एक रात्रि और शहरों में ५ रात्रि रहते हुए विचरण करते रहें, अधिक कहीं नहीं ठहरे।

निबंध-४५

किन श्रमणों को चोर कहा जाना

जो भी श्रमण शास्त्रोक्त इन विधि नियमों का, द्रव्य आचार एव भाव शुद्धि के आदेशों का कि चित् भी पालन नहीं करता है, उसे स्पष्ट शब्दों में आगमकारों ने **चोर-चोर** इस स ज्ञा से सूचित किया है । अतः साधकों को सदा यह चि तन करना चाहिये कि यदि हमें चोर कहलाने में शर्म आती हो तो भगवदाज्ञा का चोर बनना भी नहीं चाहिये । क्यों कि चोर बनना और चोर कहलाने में शर्मिन्दगी महसूस करना यह नादानता है । अ दर बाहर एक होना यही साधना का सार है । **जैसे हो वैसे दिखो,** सरल बनो ।

निबंध-४६

साधु का कुछ भी देखने जाना

सात्कदर्यपूर्ण दृश्यों को देखने की आसक्ति साधु के लिये अकल्पनीय है । किन्तु ग भीर ज्ञान, अनुप्रेक्षा, अन्वेषण आदि हेतु से जानने देखने की जिज्ञासा होना अलग वस्तु है । दोनों को एक नहीं कर देना चाहिये । पुद्गलान दी एव इन्द्रियाशक्ति से साधु को बचना चाहिए । किन्तु ग भीर ज्ञान एव अनुप्रेक्षा के माध्यम के लिए बहुश्रुत एव गीतार्थ के निर्णय एव

निर्देशानुसार किया जा सकता है । यथा- गौतमस्वामी आज्ञा लेकर मृगापुत्र (मृगा लोढ़ा) को देखने अकेले ही राणी के साथ भोंयरे में गये ।

निबंध-४७

सुपात्र दान से आयुबंध संबंधी विचारणा

सुपात्र दान देने से सम्यकत्व प्राप्ति और स सार परित्त करना, समझना चाहिए । मनुष्यायु का ब ध जीवन के अन्य क्षणों में होना समझना चाहिए । क्यों कि स सार परित्तिकरण सम्यकत्व प्राप्ति के अन तर होता है और सम्यकत्व प्राप्ति के समय या सम्यक्त्व की मौजुदगी के समय कोई भी मनुष्य मनुष्यायु का ब ध नहीं करता है । यह भगवतीसूत्र में वर्णित सैद्धान्तिक तत्त्व है । अतः जीवन के अन्य क्षणों में आयु ब ध मान लेने में कोई आपत्ति नहीं है ।

स क्षिप्त पाठों में, वर्णन पद्धति में कभी दूरवर्ती वर्णन भी निकट हो जाते हक्त और निकटवर्ती वर्णन भी दूर हो जाते हक्त यह स्वाभाविक है किन्तु अर्थ करने में या समझने में आगम अनुभवी विद्वानों को विवेक रखना आवश्यक समझना चाहिए अर्थात् अन्य आगम तत्त्वों से अबाधित अर्थ-तात्पर्यार्थ ही करना चाहिये ।

स क्षिप्त पाठों के विषय में या वर्णकों के विषय में इस प्रकार की विवेक बुद्धि नहीं रखने पर अनेक आगम स्थलों में कई असमन्वय एव श काएँ उद्‌भूत हो सकती है, जिनका कोई समाधान नहीं होगा । अतः उक्त दृष्टिकोण रखना ही श्रेयस्कर है ।

सार- सुपात्र दान आदि के समय समकित की प्राप्ति होती है और अन्य क्षणों में पहले या पीछे सम्यकत्व के अभाव में मनुष्यायु का ब ध होता है ।

निबंध-४८

गोचरी के समय श्रावक का विनय व्यवहार

गोचरी के लिये मुनिराज के स्वागत रूप में जो यहाँ व दन नमस्कार का वर्णन है, उससे तीन बार उठ-बैठकर प चा ग झुका कर व दन करना नहीं समझ लेना चाहिए । ऐसा करना अविधि एव अविवेक कहलाएगा । क्यों कि प चा ग नमा कर सविधि व दना, गोचरी या मार्ग में गमनागमन के समय नहीं किया जाता है । वहाँ तो केवल विनय व्यवहार एव आदर सत्कार ही अपेक्षित होता है । यहाँ सूत्र में भी हाथ जोड़ कर तीन आवर्तन

करके मस्तक झुकाकर **मत्थए व दामि** ऐसा दूर से करने का ही आशय रहा हुआ है ।

मुनिराज को रोकना, तीन बार उठ-बैठ करना या चरण स्पर्श करना आदि विधि यहाँ अपेक्षित नहीं है, ऐसा समझना चाहिये । क्यों कि गोचरी के समय इस प्रकार मुनिराज को रोकना एव उन्हें विल ब करना अविवेक एव आशातना रूप होता है ।

सार- गोचरी एव मार्ग में मुनिराज का मात्र आवर्तन पूर्वक स्वागत अभिन दन एव अभिवादन करना चाहिये ।

आसन छोड़ना, पगरखी(जूते-चप्पल) खोलना, मुँह के सामने वस्त्र का उत्तरास ग लगाना, ये विनय-व दन के आवश्यक अ ग(अभिगम) है। सुमुख गाथापति आदि ने घर पधारे मुनिराज का विनय करने के लिए भी इन नियमों का पालन किया था । अतः मुनिराजों की सेवा में पहुँचना हो तो उत्तरास ग लगाने का कभी भी आलस्य नहीं करना चाहिए । उत्तरास ग लगाये बिना मुनिराज की सेवा में जाना श्रावकाचार के विपरीत आचरण है ।

निबंध-४९

संयम स्वीकार के साथ अध्ययन अध्यापन

भुक्तभोगी जीवन के अन तर दीक्षा लेने वाले आगमोक्त सभी राजकुमार आदि स यमग्रहण करने के बाद ११ अ गों के अध्येता-क ठस्थ धारण करने वाले बने थे । आज भी श्रमणों को ऐसे आदर्शों को सम्मुख रख कर, आगम अध्ययन अध्यापन का प्रमुख लक्ष्य रखना चाहिए एव गच्छ के अधिकारी श्रमणों को आगम निर्देशानुसार अपने-अपने स घ में अध्ययन की सुव्यवस्था करनी चाहिए ।

निबंध-५०

देवी देवता की मान्यता पूजा : मिथ्यात्व

कुदेव, कुगुरु, कुधर्म, कुशास्त्र की श्रद्धा प्ररूपणा मान्यता करने का त्याग श्रावक को ६ आगार सहित होता है । ६ आगार में राजा, देवता, माता-पिता आदि-आदि का आगार होता है । आगार का सेवन करने से कोई भी व्रत भ ग नहीं होता है । १२ व्रतधारी श्रावक राजा हो तो उसको युद्ध में जाने का भी आगार होता है । वहाँ उसे मनुष्य प चेंद्रिय की

हत्या करने पर भी प्रथम व्रत भ ग नहीं होता है, क्यों कि सापराधी का आगार होने से । उसी तरह समकित के ६ आगार सभी तीर्थंकर के शासन में श्रावकों के लिए होते है ।

अरणक श्रावक १८वें तीर्थंकर का श्रावक था । देवता समकित की परीक्षा करने आया था । जहाज को समुद्र में डुबा देने की, नष्ट करने की धमकी दी तथा डराया तो भी अरणक श्रावक परीक्षा में पास हुआ । वही श्रावक उसी जहाज में चढने के समय धूप-दीप पूजा-पाठ, बलिकर्म, हाथ के प जे का छापा लगाना वगैरह भी किया । वह श्रावक भी समकित में पास रहा था । यह वर्णन ज्ञातासूत्र के मल्ली भगवती के अध्ययन में आता है ।

निबंध-५१

मृत क्लेवर को प्रणाम : मिथ्यात्व

जहाज की पूजा, धूप-दीप तथा पुष्पार्पण आदि उत्कृष्ट कोटी की समकित वाला श्रावक चौथे आरे में कर सकता है क्यों कि श्रावक के ६ आगार होते हक्त । तो गृहस्थ अपने लौकिक कृत्य रीति रिवाज से अपने पारिवारिक मृत व्यक्ति की कोई भी पर परा विधि या कुल पर परा का पालन करे तो उसमें उसकी समकित नष्ट होना नहीं कहा जा सकता ।

फिर भी ऐसे श्रावकों को हम मध्यम कोटी के समकिती मान सकते क्त्ह । उत्कृष्ट दर्जे के श्रावक देवी देवता की सहाय वा छे नहीं । आगमोक्त अरणक श्रावक तो उत्कृष्ट कोटी की समकित सहित श्रावक था तो भी उसने सभी लौकिक कृत्य जहाज के लिये किये थे । पूजा-विनय भी(नमस्कार भी) किये थे । व दन-नमस्कार तो पाप नहीं पुण्य है । किन्तु मिथ्या धर्म प्रवर्तकों को देव गुरु मान करके धर्म बुद्धि से विनय करे तो उसमें मिथ्यात्व का पाप लगता है ।

निशीथ सूत्र के अनुसार शिष्य के द्वारा आचार्य-गुरु की अनुपस्थिति में उनके आसन पर पाँव लग जाय तो उस आसन को प्रणाम किये बिना अर्थात् हाथ से चरणस्पर्श जैसा किये बिना सीधा चला जाय तो उसे गुरुचौमासी प्रायचित्त आता है । यह आसन का विनय सम्मान भी गुरु की दृष्टि से होता है । अतः कोई अपने माता पिता आदि परिवार के पूज्यजनों का मृत स स्कार की जो कुल पर परा हो उसमें चरण स्पर्श लोक रीति या कुल नीति समझ के कर ले तो उसकी समकित नहीं चली जाती है और इसमें

समकित चली जाने का कोई कहे तो उसे अति प्ररूपणा का दोष लगना समझ लेना चाहिये ।

यदि समकितधारी या व्रतधारी श्रावक गृहस्थ जीवन में निवृति लेकर पडिमा धारण करे । जिसमें प्रथम पडिमा समकित की होती है । उसमें वह किसी प्रकार का आगार नहीं रखता है तभी पडिमा होती है । उसके पालन के समय वह श्रावक कोई भी लौकिक रूढ़ी वाले रीति रिवाज का पालन आचरण नहीं कर सकता है । यह उत्कृष्ट श्रावक अवस्था है । किन्तु प्रायः श्रावक लोक मध्यम दर्जे के होते हक्त्न्हें आगार सेवन करना कमजोरी है ऐसा समझना चाहिये । क्यों कि विशिष्ट दर्जे के उच्च श्रावक देवता की सहाय वा छे नहीं । मध्यम दर्जे के साधु भी सा प बिच्छु भूतप्रेत का झाडा-झपटा आदि करावे तो उन्हें मिथ्यात्व नहीं लगता है और प्रत्येक गच्छ में ऐसी अपवाद परिस्थिति आ सकती है । तभी समझ में आता है कि उसमें मिथ्यात्व नहीं लगता है क्यों कि वह तो उपचार है ।

ऐसे तो कई धार्मिक लोग कह देते हक्त कि कर्म सिद्धा त की श्रद्धा रखने वाले को औषध-उपचार भी कराना नहीं कल्पता है । क्यों कि कर्म सिद्धा त की श्रद्धा-समकित में दोष लगता है । किन्तु किसी के उत्कृष्टाई में कहने से कुछ नहीं होता है । हमें तो आगम से खोजना समझना चाहिये कि कुल देवता की मान्यता वगैरह आगम वर्णित मध्यम दर्जे के श्रावकों के पूर्ण त्याग नहीं होता । तभी अरणक श्रावक ने नावापूजन आदि विधियें करी थी जो कि उत्कृष्ट समकित वाला श्रावक सिद्ध हुआ था, देवता ने भी उसे धन्यवाद दिया था और वह व दन नमस्कार करके दो कु डल की जोडी ईनाम देकर गया था ।

अतः अनेका त से भरे भगवान के शासन के श्रावक जीवन को एका त दुराग्रह में नहीं डाला जा सकता । साधु के जीवन में भी कितने ही नियमों में अनेका त होता है । पानी की एक बू द का स घट्टा भी नहीं करने वाला साधु समय आने पर नदी में चल सकता है, नावा में बैठ सकता है, यह शास्त्र में वर्णित है ।

स्त्री का स घट्टा भी नहीं करने वाला साधु नदी में डूबती हुई साध्वी को पकड कर तैरकर निकाल सकता है । पागल या देव प्रकोप से हैरान साध्वी को पकडकर स भाल सकता है । वैसे ही साध्वी भी पागल

आदि साधु को पकड कर स भाल सकती है । ऐसे अनेका त भरे जिनशासन के अ दर बात-बात में कह देना कि समकित चली जाती है, यह अधूरी प डिताई का प्रगटीकरण मात्र होता है । श्रावक के अनेक दर्जे हो सकते हक्त । वैसे समकित के भी १० दर्जे तो उत्तराध्ययन सूत्र में बताये हक्त तथा साधु के भी ६ दर्जे भगवती सूत्र में बताये ही हक्त और भी अनेक दर्जे छट्ठे या पाँचवें गुणस्थान में होते ही हक्त । ध्यान यही रखना है कि उत्कृष्टतम दर्जे में पहुँचने वाले साधु श्रावक को इन सब आगारों का, लाचारी दर्जों का त्याग करना श्रेष्ठ है किन्तु जो आगार सेवन करे उसे व्रत भ ग कहना गलत होता है।

निबंध-५२

सिद्धों का सुख स्वरूप

सिद्धों के सुख का ज्ञान :- सिद्धों के सुख को प्रत्यक्ष से जाना नहीं जा सकता, क्यों कि वह अरूपी होने से केवलज्ञान का विषय है। अतः उसे उपमा के द्वारा जानना चाहिए। सिद्धों को जो अव्याबाध सुख प्राप्त है वह न मनुष्यों को है और न देवों को। क्यों कि मनुष्य देवों का सुख बाधाओं से एव विनाश से युक्त होता है।

कल्पना से सभी देवों के जीवनभर के सभी सुख को इकट्ठा किया जाय और उसको अन तबार वर्गावर्गित गुणन किया जाय तो भी वह मोक्ष सुख के समान नहीं हो सकता। अन्य कल्पना से एक सिद्ध के स पूर्ण सुख को अन तवर्ग से भाजित किया जाय जो सुख राशि भागफल के रूप में आवे वह भी इतनी अधिक होती है कि स पूर्ण आकाश में समाहित नहीं हो सकती ।

जैसे कोई असभ्य वनवासी पुरुष नगर के अनेक विध गुणों को, सुखों को जानते समझते हुए भी अपने साथी अन्य वनवासियों को नगर की उन सुख सुविधाओं को, सामग्रियों को ज गल की किसी वस्तु से उपमा देकर या किसी सुख की उपमा देकर भी वास्तविक रूप में नहीं समझा सकता। क्यों कि वहाँ ज गल में वैसी उपमा देने की कोई वस्तु नहीं है, उसी प्रकार तीर्थंकर भगव त भी छद्मस्थों को स सारिक पदार्थों की उपमा देकर भी सिद्धों के पूर्ण वास्तविक सुख को स्वय जानते हुए भी नहीं समझा सकते। केवल श्रद्धा उत्पन्न करने के लिए अपेक्षा मात्र से अ शतः समझा सक्तेहक्त । वास्तव में सिद्धों का सुख अनुपम है, उसकी स सार में कोई परिपूर्ण उपमा नहीं है।

यहाँ भी अपेक्षा से उपमा द्वारा श्रद्धागम्य कराने का प्रयत्न किया जाता है- जैसे कोई पुरुष अपनी इच्छानुसार सर्व गुणों विशेषताओं से युक्त स्वादिष्ट भोजन करके भूख प्यास से मुक्त होकर, अपरिमित तृप्ति, इच्छित आन द का अनुभव करता है। उसी प्रकार सिद्ध प्रभु सदा परम तृप्ति युक्त, अनुपम शा ति युक्त, शाश्वत, विघ्न रहित, परमसुख में निमग्न रहते हक्त ।

वे सर्व दुःखों को पार कर चुके हक्त अर्थात् उन्होंने स पूर्ण दुःख एव उनकी पर परा को मूलतः नष्ट कर दिया है। जन्म बुढ़ापा एव मृत्यु के ब धन से सर्वथा मुक्त है। अतः वे सिद्ध प्रभु अनुपम सुख सागर में ही सदा काल के लिए अवस्थित रहते हक्त ।

निबंध-५३

पुहुत्त-पृथक्त्व-प्रत्येक-अनेक की विचारणा

जीवाभिगम सूत्र, भगवती सूत्र और प्रज्ञापना सूत्र में पुहत्त या पुहुत्त शब्द का अनेक बार प्रयोग हुआ है, क्वचित् उत्तराध्ययन वगैरह सूत्रों में भी पुहत्त शब्द प्रयोग देखा जाता है । जब शास्त्रकार को कहीं भी अनेक स ख्या को, अनेक स ख्या के विकल्पों को एक शब्द में कहना होता है तब पुहत्त शब्द का प्रयोग किया जाता है। पुहत्त शब्द का स स्कृत रूपान्तर **पृथक्त्व** बनता है। जिसका शब्दार्थ होता है- अलग-अलग, भिन्न -भिन्न, विभागरूप अथवा एकत्व का प्रतिपक्ष-अनेकत्व=अनेक ।

आगमोक्त इस पुहत्त शब्द को थोकडों में **प्रत्येक** शब्द से कहा जाता है। जो भाषा दृष्टि से एव अर्थ दृष्टि से भी उपयुक्त नहीं है। फिर भी थोकडा प्रचलन से यह पर परा में बहु प्रचलित हो गया है। वास्तव में आगम की टीकाओं से और आगम प्रयुक्त पद्धति से इसका अर्थ **प्रत्येक** नहीं किंतु **अनेक** ऐसा किया जाना ज्यादा सुस गत होता है । इस विषय में टीकाकारों एव कोशकारों के प्रमाण इस प्रकार है—

(१) जीवाभिगम टीका पृ.११९ में- ***पुहत्त पृथक्त्व-पृथक् शब्दो बहुवाची।***

(२) कर्म प्रकृति स ग्रहणी चूर्णीकार- ***पुहत्त शब्दो बहुवाची, इति प्रभूतानि रूपाणि विकुर्वितु प्रभवः? उत्तर- पृथक्त्वमपि प्रभवो विकुर्वितु ।*** अनेक (हजारों) रूपों की विकुर्वणा करने में समर्थ होता है। ***- भगवती सूत्र श. १२, उद्दे.९ ।***

(३) *एगत्त पुहत्तिया भ गा भाणियव्वा*- एक वचन के और बहुवचन के भ ग कह लेने चाहिये । **-*भगवती सूत्र ।***

(४) *एगत्तेण पुहुत्तेण, ख धा य परमाणु य ।*-(उत्तरा॰)

पुद्गलों के एकत्रित होने पर स्क ध बनता है और अलग-अलग विभाग होने से परमाणु अवस्था बन जाती है ।

(५) प्रज्ञापना सूत्र में देवों के आहार, श्वासोश्वास के दिनों की स ख्या कहने में भी पुहुत्त शब्द का प्रयोग किया गया है। पल्योपम के आठवें भाग की स्थिति वालों से लेकर देशोन दो पल्योपम तक वालों के लिये भी यह एक ही शब्दप्रयोग किया है। फिर भी उन सभी स्थिति वालों के श्वास के दिनों में और आहार के दिनों में फर्क है क्योंकि स्थिति में फर्क है।

(६) भगवतीसूत्र शतक २२ में अनेक फलों और बीजों की अवगाहना भी **पुहुत्त** शब्द से कही गई है अर्थात् अ गुल पुहुत्त, विहत्थी पुहुत्त, रयणी पुहुत्त आदि ।

(७) जीवाभिगम और प्रज्ञापना सूत्र में तिर्यंच प चेन्द्रिय की अवगाहना कहने में एव मनुष्य की अवगाहना कहने में तथा कई जगह कायस्थिति कहने में **पुहुत्त** शब्द का प्रयोग किया गया है । वहाँ धणु, धणुपुहुत्त के बाद गाउ, गाउपुहुत्त कहा गया है जिससे दो से लेकर १९९९ धनुष का ग्रहण भी **धणुपुहुत्त** शब्द से किया गया है । **इसप्रकार** प्रज्ञापना, भगवती, जीवाभिगम में पुहुत्त शब्द से कहीं दो, कहीं सात, कहीं नौ, कहीं बारह, कहीं ९९, कहीं १९९, कहीं १९९९, कहीं स ख्याता, कहीं अस ख्याता और कहीं अन त तक का ग्रहण भी पुहुत्त शब्द से किया गया है। इस प्रकार पुहुत्त शब्द का विशाल अर्थ है और ऐसे विशाल अर्थ को कहने वाला हिन्दी शब्द **अनेक** या **बहुत** है।

अतः आगम में प्रयुक्त धणुपुहुत्त, कोडीपुहुत्त, सयपुहुत्त, सहस्स-पुहुत्त, अ गुलपुहुत्त, रयणिपुहुत्त, विहत्थीपुहुत्त, वासपुहुत्त, कोडीसयपुहुत्त, कोडीसहस्सपुहुत्त आदि शब्दों को हिन्दी भाषा में क्रमशः अनेक धनुष, अनेक गाऊ, अनेक क्रोड, अनेक सौ, अनेक हजार, अनेक अ गुल, अनेक हाथ, अनेक बेंत, अनेक वर्ष, अनेक मास, अनेक सौ करोड, अनेक हजार करोड, इन शब्दों में कहना चाहिये।

थोकडों की प्रचलित भाषा में कभी भूल से एव भ्रम से **अनेक** के

स्थान पर प्रत्येक शब्द का प्रयोग कर दिया गया है जो रूढ होकर पर परा से चला आ रहा है अर्थात् प्रत्येक धनुष, प्रत्येक गाउ, प्रत्येक करोड, प्रत्येक हजार, प्रत्येक सौ करोड आदि एव उस प्रत्येक शब्द का अर्थ भी सीमित मान लिया गया है कि दो से नौ तक।

वास्तव में यह शब्द प्रयोग और उसका माना गया अर्थ भी आगम से अस गत है । आगमिक शब्द **पुहुत्त** है उसका स स्कृत शब्द **पृथक्त्व** है और हिन्दी भाषा का शब्द **अनेक** है और उसका आगम आशय वाला अर्थ विशाल है। जब जहाँ जो घटित हो वही अनिर्दिष्ट स ख्या के अर्थ को कहने वाला यह शब्द है । इस एक ही शब्द से अनेक स ख्या एक साथ भी कह दी जाती है। यथा- अनेक मास वाले मनुष्य अमुक देवलोक तक जाते हक्त और अनेक वर्ष वाले अमुक देवलोकों में जाते क्त। तो इस प्रास गिक शब्द में २ महीने और दो वर्ष वाले भी ग्रहित है और आगे अनेक महीनों और अनेक वर्ष वालों का भी ग्रहण है। कदाचित् कोई देवलोक में दो महिने वाला नहीं जावे, ऐसा भी हो तो अनेक शब्द में वह चल सकता है। अनेक वर्ष में तीसरे देवलोक में और बारहवें देवलोक में और अनुत्तर विमान में जाने वाले के वर्ष भिन्न रहे तो भी चल सकते क्त। अतः अनेक(पुहुत्त) शब्द को २ से ९ तक में बाँधना भी उचित नहीं होता है ।

चौथे आरे के मनुष्यों की अवगाहना ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति में अनेक धनुष कही है तो वहाँ प्रयुक्त **पुहुत्त** शब्द से एक साथ २ धनुष वाले भी ग्रहित है और ५०० धनुष वाले भी ग्रहित है। इसलिये भी पुहत्त शब्द को २ से ९ तक में बांधना आगम सम्मत नहीं होता है।

इस प्रकार आगमोक्त पुहुत्त शब्द को थोकडों में प्रत्येक शब्द से कहना अनुपयुक्त है, उसे चलाते रहना भी गलत है। अतः उक्त प्रमाण चर्चा से चिंतन मनन कर, सही पद्धति रूप "अनेक" शब्द का प्रयोग करना चाहिये । यथा- अनेक करोड, अनेक सौ करोड, अनेक हजार करोड इत्यादि प्रयोग करने चाहिये। किंतु प्रत्येक करोड, प्रत्येक सौ करोड, प्रत्येक हजार करोड, प्रत्येक मास, प्रत्येक वर्ष, ऐसा नहीं कहना चाहिये तथा जघन्य दो करोड उत्कृष्ट नौ करोड जघन्य दो हजार करोड उत्कृष्ट नौ हजार करोड ऐसा निश्चित स ख्या खोल कर भी नहीं बोलना चाहिये। किन्तु जघन्य उत्कृष्ट अनेक करोड, अनेक हजार करोड ऐसा

बोलना चाहिये क्यों कि जहाँ आगम में स ख्या नहीं खोल कर पुहुत्त शब्द कहा है, वहाँ बिना आगमाधार के ऐसी स ख्या निश्चित नहीं करना चाहिये। ऐसा करने से कई दोष उत्पन्न होते हक्त, आगम विपरीत कथन होते हक्त तथा कई जगह उलझने खडी होती है, जिसे कल्पनाओं से हल करना पडता है। अत: पहले से ही सही निराबाध सुस गत शब्द **अनेक** का प्रयोग एव उसके अर्थ का निरूपण करना चाहिये ।

निबंध-५४

आएसेणं (अपेक्षा से) शब्द सबंधी विचारणा

आगमों में आएस=आदेश शब्द प्रयोग अनेक जगह पर हुआ है। भगवती सूत्र के २४ वें गम्मा शतक में बीसवें द्वार के दो विकल्प किये हक्त १. भवादेश २. कालादेश। भवादेश में भवों की स ख्या बताई जाती है और कालदेश में स्थिति बताई जाती है ।

न दीसूत्र में मति श्रुतज्ञान के लिये कहा गया है कि- ***आएसेण सव्व दव्व , सव्व खेत्त , सव्व काल , सव्व भाव जाणइ पासइ ।*** श्रुतज्ञानी अपेक्षा से सर्व द्रव्य, क्षेत्र आदि को जानता है ।

जीवाभिगम में आदेश शब्द प्रार भ से ही प्रयुक्त है अर्थात् इस सूत्र की प्रार भिक रचना पद्धति आदेश शब्द की मौलिकता के साथ ही है। इस सूत्र में नौ प्रतिपत्तियों का विभाजन भी आदेश शब्दप्रयोग के साथ है। आगे दूसरी प्रतिपत्ति में स्थिति और कायस्थिति में भी आदेश शब्द के प्रयोग से युक्त कथन है।

जीवाभिगम सूत्र की उत्थानिका में यह बताया गया है कि(एक आदेश से-एक अपेक्षा से या एक प्रकार से)जीव के दो भेद है। एक आदेश से जीव के तीन भेद हक्त, यों क्रमश: बढाते हुए एक आदेश से जीव के दस भेद हक्त, ऐसा कहा गया है। फिर इन नौ प्रतिपत्तियों में उन दो तीन चार आदि भेदों पर स्थिति आदि की विचारणा की गई है ।

अभिधान राजेन्द्र कोश में भी **आएस** शब्द को प्रकारवाची बताया गया है। जिसमें प्रज्ञापनासूत्र जीवाभिगम सूत्र आदि से उद्धरण दिये गये है, यथा-

१-एकेन आदेसेन । आदेश शब्द इह प्रकार वाची ।

२- आएसो त्ति पगारो, इति वचनात् । एकेन प्रकारेण, एक प्रकार अधिकृत्य इति भावार्थ: ।

इस प्रकार आदेश शब्द का अर्थ **प्रकार** या **अपेक्षा** है, यह स्पष्ट है। जीवाभिगम सूत्र की दूसरी प्रतिपत्ति में स्त्रीवेद की स्थिति चार प्रकार की और कायस्थिति पा च प्रकार की बताई गई है। फिर चारों, पा चों अपेक्षा से स्थितियों का स्पष्टीकरण किया गया है।

यहाँ टीकाकार आचार्य मलयगिरिजी ने स्थिति में अपेक्षा का कथन किया है और कायस्थिति में अपेक्षा कहते कहते मान्यता शब्द के प्रयोग में पहुँच गये हक्त । फिर उसे आचार्यों के मतभेद रूप में दिखाने समझाने का प्रयत्न भी किया है। किन्तु उन्होंने ही अनेकों स्थलों पर आदेश शब्द का परिभाषार्थ व्याख्यार्थ "अपेक्षा" और "प्रकारवाची" किया है। अत: कायस्थिति के इस प्रस ग में मान्यता कथन एक शाब्दिक (शब्दप्रयोग पद्धति की) स्खलना मात्र है। क्योंकि यह **आदेश** शब्द और इसका विषय इतना स्पष्ट है कि इस शब्द से मान्यता में उलझने का कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता। न दीसूत्र, भगवतीसूत्र के उक्त स्थलों से और जीवाभिगमसूत्र की नव प्रतिपत्तियों के प्रार भिक वर्णन से सुस्पष्ट है कि जैनागमों में "आदेश" शब्द अपेक्षा और प्रकार अर्थ में प्रसिद्ध एव प्रचलित है ।

मान्यताभेद-मता तर आदि को दिखाने के लिये आगम में **आदेश** शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। उसके लिये भिन्न शब्दों का प्रयोग किया गया है अर्थात् आगमों में मान्यता भेद के भी अनेक पाठ है किन्तु वहाँ कहीं पर भी **आदेश** शब्द का प्रयोग नहीं है । वे इस प्रकार है—

(१) ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में वक्षस्कार २, पृष्ट-५६० में कुलकर के विषय में मान्यता भेद **अन्ने पढ ति** इस प्रयोग से बताया गया है ।

(२) ज बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र में ऋषभकूट के वर्णन में मान्यता भेद **पाढ तर** इस शब्द द्वारा कहा गया है ।

(३) उत्सर्पिणी के चौथे आरे के वर्णन में मतभेद **अण्णे पढ ति** शब्द से दिखाया है ।

(४) प्रज्ञापना पद १७ में **केई भण ति** इस शब्द का प्रयोग किया है ।

(५) व्यवहारसूत्र में **एगे एव आह सु, एगे पुण एव** ऐसा प्रयोग है।

(६) भगवतीसूत्र में मान्यता भेद के कथन हेतु **केई अपज्जत्तगा पद्म भण्ण ति, पच्छा पज्जत्तग** ऐसा वाक्यप्रयोग किया गया है ।

(७) ज्ञातासूत्र में देव के उपस्थित होने के वर्णन में **पाठ तर** शब्द के द्वारा मान्यता भेद कहा गया है ।

इस प्रकार मान्यता भेद के कथन आगमों में है। इनमें विविध शब्द या वाक्यप्रयोग है किंतु कहीं भी आदेश शब्द नहीं है। तथा इन मान्यता भेदों में दो विकल्प ही है अर्थात् दो से अधिक मान्यता भेद के विकल्प आगम में कहीं भी नहीं है। जब कि आदेश शब्द न दी में केवल एक विकल्प के लिये, भगवती में दो विकल्प के लिये और जीवाभिगम में तो ४-५ और ९ विकल्पों के लिये प्रयुक्त है। अतः अनेक विकल्पों वाले कायस्थिति के प्रस ग में आदेश शब्द को, आचार्यों की मान्यता भेद में उलझाना और मानना कदापि उचित नहीं माना जा सकता। टीकाकार का इस प्रकार का कथन भ्रमपूर्ण एव स्ववचन विरोध दोषयुक्त है और आगम विपरीत भी है, यह स्पष्ट समझना चाहिये। अतः कायस्थिति के विकल्पों को मान्यता भेद कहना छाद्मस्थिक भूल है। उसका आग्रह न करते हुए अपेक्षा विशेष के विकल्प ही समझने चाहिये ।

यह स भव भी नहीं हो सकता कि इतनी सरल सी बात में आचार्यों के पा च भिन्न मत हो जाय और वे पाँचों ही इतने उलझन में पड जाय कि उनका समन्वय न कर सकने से सूत्र में पा च मत दिखाने पड जाय, यह एक क्लिष्ट और अयुक्त कल्पना है तथा उससे आचार्यों की अल्पज्ञता और हठाग्रहवृत्ति सिद्ध होती है। अतः गलत कल्पना में सरल विषय को नहीं उलझाकर आदेश शब्द के प्रचलित प्रसिद्ध और वास्तविक अर्थ के द्वारा ही विषय को समझना चाहिये और वैसे समझने में किसी भी प्रकार की सैद्धांतिक बाधा भी उत्पन्न नहीं होती है ।

सार-आदेश शब्द से अनेक विकल्प, प्रकार और अपेक्षा अर्थ करना चाहिये। मान्यता भेद अर्थ नहीं करना चाहिये। आगमों में मान्यता भेद के लिये अन्य शब्दों का प्रयोग होता है। आदेश शब्द का प्रयोग मान्यता भेद के लिये नहीं होता है। आदेश शब्द से मान्यता भेद में उलझना एक छाद्मस्थिक भूल है एव आगम विपरीत चिंतन प्ररूपण है। विद्वान आचार्यों से भी छाद्मस्थिक भूलें होना स भव है इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है एव

हिचकने की भी आवश्यकता नहीं है। क्योंकि भूल तो गौतम गणधर से भी हो सकती है जिसे एक श्रावक भी टकोर कर सकता है ।

निबंध-५५

एक समय की जघन्य स्थिति कहाँ कैसे ?

भगवतीसूत्र, प्रज्ञापनासूत्र, जीवाभिगमसूत्र में कई भावों परिणामों (स्थानों) की एक समय की कायस्थिति कही गई है। व्याख्याकारों ने उसे समझाने के लिये, कहीं मरने की अपेक्षा घटित किया, कहीं परिणामों के परिवर्तन का स्पष्टीकरण किया। कहीं **"ही"** लगाया है तो कहीं **"भी"** लगाया है। किसी भी तरह से आगम कथन को घटित कर समझाने का यत्न किया है। फिर भी यह मानना ही होगा कि किसी भी तरह समझा जाय तो भी एक समय का उदयभाव और एक समय का वह परिणाम अवश्य ही होता है । एक समय के बाद दूसरा भाव और दूसरा उदय भी अवश्य होता ही है अर्थात् किसी भी तरह मानने पर उस प्रकृति का एक समय का उदय स्वभाव और उस भाव का एक समय से भावा तर में परिवर्तन होने का स्वभाव तो मानना ही होगा।

यथा- स्त्रीवेद की एक समय की कायस्थिति यदि मरने की अपेक्षा समझी गई तो भी एक समय का स्त्रीवेद उदय स्वभाव तो मानना ही पडेगा और स्त्री परिणाम भाव का एक समय में परिवर्तित होना भी मानना ही पडेगा ।

अतः आगम में जिनभावों की एक समय की कायस्थिति कही है उसके स ब ध में ऐसा एका त नहीं मानना चाहिये कि- "कोई भी परिणाम एक समय में स्वाभाविक परिवर्तन होते ही नहीं है, केवल मरने से ही एक समय की स्थितिएँ बनती है। " क्योंकि ऐसा मानने में आगम का कोई प्रमाण नहीं है और व्याख्याकारों का भी ऐसा एका त आशय नहीं है। इसके लिये कुछ प्रमाण दिये जा रहे हक्त, उस पर अनुप्रेक्षण करना चाहिये-

(१) भगवतीसूत्र शतक २५ में पुलाक आदि सभी निय ठों में हायमान, वर्धमान और अवस्थित परिणामों की स्थिति कही है । उसमें जघन्य एक समय की स्थिति कही गई है। इससे स्पष्ट होता है कि परिणामों का एक समय का होना और परिवर्तित होना आगमकार को इष्ट है। पुलाक निर्ग्रंथ में भी एक समय में परिणाम परिवर्तित होना कहा है और इस निर्ग्रंथ

अवस्था में काल करना भी नहीं माना गया है। इसीलिये टीकाकार श्री अभयदेवसूरी जी ने भगवती सूत्र के २५ वें शतक में स्पष्ट किया है कि कषाय आदि से बाधित होने पर पुलाक निर्ग्रंथ के इन हायमान वर्धमान अवस्थित परिणामों की १ समय की स्थिति बनती है।

सभी निर्ग्रंथों के अवस्थित परिणाम की उत्कृष्ट स्थिति भी सात समय की कही गई है। बकुश आदि निर्ग्रंथों के एक समय की स्थिति को समझाते समय टीकाकार ने मरण से समझाने में **भी** शब्द का प्रयोग किया है। अर्थात् मरने से भी एक समय की स्थिति घटित होती है यहाँ लगाये भी शब्द से भी स्पष्ट होता है कि एका त मरने से ही एक समय की स्थिति मानना टीकाकार को अभिमत नहीं है ।

मरण की अपेक्षा समझने के आग्रह में श्रेणी अवस्था रूप अप्रमत्त दशा में वर्तमान श्रमण का भी स्त्री वेद के परिणामों में जाना नपु सकता के परिणामों में जाना एव श्रमणी का पुरुषवेद के परिणामों में जाना मानना पडता है, यह अप्रमत्तदशा में विपरीत लिंग के परिणामों का मानना भी उपयुक्त नहीं लगता है ।

छट्ठे गुणस्थानवर्ती प्रमत्त श्रमण के भी ऐसे अन्यलिंगी के परिणामों का होना एक विचित्र स्टेज है जो उदय की प्रबलता से स भव है। किन्तु ऐसी विचित्र स्टेज अप्रमत्त और श्रेणी में वर्तमान उच्चदशा के श्रमण में मानना अत्य त विचारणीय है और ऐसे विचित्र परिणामों के स्टेज में मरकर अणुत्तर आदि देवों में उत्पन्न होना मानना और भी विचारणीय है ।

अतः एक समय की स्थितियों को स्वभाव से परिणाम से मानने में हिचकना नहीं चाहिये और मरते समय ही होने का एका त आग्रह नहीं करना चाहिये ।

(२) सामान्य रूपेण, विशेष रूपेण आदिष्टस्य जीवस्य यद् अव्यवछेदेन भवन **सा कायस्थिति ।**

(३) सर्व विरतिस्तु सर्व सावद्य अह न करोमि इत्येव रूपा, ततस्तत् प्रतिपत्ति उपयोग एक सामयिकोपि भवति ।

(४) आह च मूलटीकाकार- ***पढम समये काय जोगेण गहियाण भासा दव्वाण , बिईय समये वई जोगेण निसग्ग काउण वरम तस्स, मरण तस्स वा एक समयो लब्भइ ।*** *मन योग के लिये भी तीसरे समय-*

उपरमते म्रियते वा तदा एक समय मनोयोगी लभ्यते ।

यहाँ परिणामों के स्वाभाविक परिवर्तित होने पर भी एक समय की स्थिति होना टीकाकार ने समझाया है ।

(५) अवधिज्ञान की एक समय की कायस्थिति के लिये- च्यवनेन मरणेन, अन्यथा वा अन तर समये प्रतिपतति तदा अवधिज्ञानस्य एक समयता भवति । यहाँ भी परिणामों के परिवर्तितत हो जाने से एक समय में अवधिज्ञान का नष्ट होना स्वीकार किया है एव मृत्यु की अपेक्षा भी ।

(६) अवधिज्ञान के समान ही विभ गज्ञान के एक समय को टीका में सिद्ध किया है ।

(७) जीवाभिगम टीका पृष्ट(पत्र)६० में क्षयोपशम की विचित्रता से भी एक समय की स्थिति मानी है- ***सर्व विरति परिणामस्य तदावरण कर्म क्षयोपशम वैचित्र्यतः समयमेक स भवात् ।***

(८) प्रज्ञापना टीका में अवधिज्ञान का एक समय-***मरणतः प्रतिपातेन, मिथ्यात्व गमनतो वा ।***

जीवाभिगम टीका पृ-४६० में विभ ग ज्ञान की एक समयता के लिये **सम्यक्त्व लाभतो ज्ञान भावेन** ऐसा किया है । इन दोनों व्याख्याओं से भी स्पष्ट है कि मरने के बिना भी मिथ्यात्व या समकित आने पर भी परिणाम एक समय के हो सकते हक्त जिससे वह ज्ञान एक समय रहता है ।

(९) जीवाभिगम टीका पृ.४५२ अवधिदर्शन की एक समय की स्थिति, मरण से और अध्यवसाय परिवर्तन से यों दोनों तरह से समझाई है।

(१०) अवधिदर्शन का अ तर एक समय- ***अन तर समये पुनस्तद् लाभः*** अर्थात् बीच के परिणाम एक समय स्वाभाविक रहेंगे यह स्पष्ट है ।

सार- १. स यम अवस्था में बिना काल किये ही कई प्रकृतियों का स्वाभाविक एक समय का उदय हो सकता है। **२.** कई परिणाम एक समय की स्थिति के अन तर परिवर्तित हो सकते हक्त। **३.** प्रकृतियों का क्षयोपशम काल एक समय का हो सकता है । **४.** और काल करने पर भी कई अवस्थाएँ एक समय की हो सकती है । **५.** साथ ही कई भाव केवल अ तर्मुहूर्त के ही स्वाभाविक होते हक्त। वे मरने की अपेक्षा भी एक समय के नहीं होते। यथा- पुरुषवेद, काययोग, दोनों उपयोग, तीनों कषाय, ६ लेश्या आदि जघन्य अ तर्मुहूर्त ही होना आगमकार को ईष्ट है। **६.** अस यत

अवस्था में एक समय के परिणाम नहीं होते । **७.** वहाँ मरने की अपेक्षा से एक समय की स्थिति बनती है। **८.** अतः धर्माचरणी तीनों वेद वालों के एक समय की कायस्थिति अ तर आदि को स्वाभाविक परिणामों के परिवर्तन से मान्य करना सुस गत होता है। **९.** स यम अवस्था के भावों की किसी भी एक समय की स्थिति के लिये मरणकाल का ही एका त आग्रह नहीं रखना चाहिये ।

किसी भी स्थिति को एका त रूप से मरण की अपेक्षा समझाने का प्रयत्न करने से व्याख्याकारों के सामने उलझन सी पैदा हुई है ऐसा ज्ञात होता है एव इन जघन्य स्थितियों को समझाने के प्रयत्न में कहीं आगम से अन्यथा तत्त्व का कथन भी हुआ है और कहीं मूलपाठ को शुद्ध अशुद्ध या पाठा तर मानने की स्थितिएँ भी उत्पन्न हुई है। अतः एका त में न जाते हुए आगम आशय को सरल विधि से ही समझने का प्रयत्न करना चाहिये एव अनेका तिक बुद्धि से चिंतन करना चाहिये।

निबंध-५६

टीकाओं व्याख्याओं में छाद्मस्थिक दोष

अनेका त सिद्धा त युक्त वीतराग मार्ग से एका तवाद का रोग दूर ही रहता है। एका तवाद उलझनों का जनक है जब कि अनेका तवाद उलझनों का शोधक है ।

सर्वज्ञता के पूर्व की अवस्था के सामान्य अथवा विशिष्ट ज्ञानी छद्मस्थ अपने कई आदर्श गुणों से सर्वज्ञ तुल्य, जिन नहीं पण जिन सरीखा, केवली नहीं पण केवली सरीखा, ऐसी उपमा द्वारा उपमित किये जा सक्तेहक्त। वैसे सर्वोच्च छद्मस्थज्ञानी भी भूल के पात्र हो सकते हक्तथावे सरलता पूर्वक शुद्धि कर सकते हक्त। इसके लिये उपासकदशा सूत्र में आन द श्रावक और गौतम गणधर क घटित घटनाचक्र आज भी उपलब्ध है ।

अतः कोई कितना भी विद्वान छद्मस्थ है, जिनशासन में उसके लिये व्यक्तिमहत्त्व देकर अ धानुकरण नहीं किया जा सकता है। छद्मस्थ मात्र भूल का पात्र है अर्थात् उनसे भूल होना स भव है, अस भव नहीं है ।

भगवान महावीर के दीर्घकाल के इस शासन में कई महापुरुषों ने आगम सेवा की है, अपना जीवन आगम सेवा में अर्पित भी किया है। अनेकों ने अ गबाह्य आगमों की रचना की है और अनेकों आचार्यों ने

उपलब्ध आगमों की विस्तृत व्याख्या भी की है। सर्वज्ञता के अभाव में छोटी बडी भूलें उनसे भी हुई है। जिज्ञासुओं की जानकारी के लिये कुछ तत्त्व यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिन्हें जानकर यह अनुभव अनुप्रेक्षण करना चाहिये कि किसी भी छद्मस्थ आचार्य का कथन यदि सापेक्ष नहीं है तो उसके आग्रह में नहीं पडना चाहिये। किसी भी आगम तत्त्व से उनका कथन अस गत या विपरीत हो तो उस पर ग भीरता पूर्वक विचारणा करके सही निर्णय लेना चाहिये, किन्तु **बाबा वाक्य प्रमाण** की उक्ति को चरितार्थ नहीं करना चाहिये । उदाहरणार्थ कुछ प्रसंग —

(१) जीवाभिगम टीका एव प्रज्ञापना टीका में अवधिदर्शन की कायस्थिति समझाने में विभ गज्ञान की कायस्थिति का उल्ल घन कर दिया गया है। नरक में उपयोग लाने ले जाने के सिद्धा त का भी उल्ल घन हुआ है। इस प्रकार एक तत्त्व को समझाने में दो तीन सूत्रों से विपरीत कथन हुआ है क्योंकि कायस्थिति जीवाभिगम एव प्रज्ञापना से विपरीत हुई और उपयोग का भगवती सूत्र से विपरीत कथन हुआ है ।

(२) अनेक प्रमाणों से **आएसेण** का **अपेक्षा से** यह अर्थ प्रमाणित और शुद्ध है फिर भी स्त्रीवेद की कायस्थिति में पाँच अपेक्षाओं को पाँच मता तर कह दिया गया और मत के प्ररूपक अलग-अलग वादी मान लिये गये। उनमें आपस में समाधान नहीं होना मानकर सूत्र में वे मतभेद लिखे गये, ऐसा मान लिया गया। जब कि जीवाभिगम सूत्र की आदेश कहने की पद्धति ही है जिसका आल बन स्पष्ट रूप से प्रार भ में ही लिया गया है।

(३) टीका में देवलोकों की अवगाहना बताने में आगम विपरीत कथन कर दिया गया है ।

(४) अपर्याप्त की कायस्थिति का विवेचन करने में भगवती सूत्र के गम्मा शतक से विपरीत कथन है ।

(५) प्रज्ञापना पद १२ एव २१ में वायुकाय के पर्याप्तों के स ख्यातवें भाग वालों को वैक्रिय करना कह दिया गया एव **उक्त च** कहकर उसे अन्य गाथा द्वारा सिद्ध कर दिया गया है जब कि आगम में अस ख्यातवें भाग कहा गया है ।

(६) प्रज्ञापना पद २१ की व्याख्या में सूर्य की किरणों को अवल बन कर आकाश में गमन करना कह दिया है, जो असत् कल्पित मात्र है।

(७) प्रज्ञापना पद २३ टीका में बकुल नामक वनस्पति के पाँच भावेन्द्रिय होने का कथन कर दिया है। जब कि उसी सूत्र के १५ वें पद में एकेन्द्रिय के एक द्रव्येन्द्रिय और एक ही भावेन्द्रिय होना स्पष्ट कहा गया है। ऐसी विपरीत प्ररूपणा के लिये भी फिर यह कहा गया है कि- ***आगमेपि प्रोच्य ते ।*** जब कि किसी भी आगम में ऐसा कथन नहीं है ।

(८) अ तरद्वीपों का वर्णन आगम जीवाभिगम में स्पष्ट है कि ज बूद्वीप की जगती से दूर जल के मध्य वे सभी द्वीप स्वत त्र आये हुए है फिर भी जगती से एक दाढा निकलना बताया और उस दाढा पर उन द्वीपों का होना कहा है।

(९) देव नरक का अ तर्मुहूर्त का अ तर मनुष्य के भव से समझाया है, जब कि देव के साथ मनुष्य का अ तर्मुहूर्त का स ब ध ही नहीं है । अनेक मास या अनेक वर्ष के बिना मनुष्य देवलोक में या नरक में नहीं जाता है, यह भगवती सूत्र के गम्मा शतक से स्पष्ट है ।

(१०) ९वें से १२ वें देवलोक के अनेक वर्ष के अ तर को समझाते हुए कह दिया कि यहाँ स यम ग्रहण के बिना कोई जीव उत्पन्न नहीं होता जब कि आगमानुसार १२वें देवलोक तक श्रावक, मिथ्यादृष्टि भी जा सकते हक्त ।

(११) देवलोकों में जीव, पाँच स्थावर रूप में अन तवार उत्पन्न हुए हक्त यह कथन सूक्ष्म स्थावर की मुख्यता से है फिर भी देवलोकों में बादर तेउ-कायपने उत्पन्न होना कह दिया जब कि बादर तेउकाय अढाई द्वीप में ही होती है ।

(१२) देवों के जघन्य अ तर के विषय में कहीं से गाथा उद्धृत कर आगम विपरीत कथन कर दिया गया कि आठवें देवलोक तक ९ दिन की उम्र वाला मनुष्य उत्पन्न होव और दूसरा देवलोक तक अ तर्मुहूर्त की उम्र वाला मनुष्य उत्पन्न हो सकता हक्त, ऐसा प्ररूपण किया है। जब कि मनुष्य तो अनेक मास या अनेक वर्ष के बिना देवलोक में जाता ही नहीं है। अ तर्मुहूर्त और नौ दिन का प्रश्न ही क्या ?

(१३) पुरुषवेद की कायस्थिति प्रज्ञापना और जीवाभिगम में जघन्य अ तर्मुहूर्त की कही गई है फिर भी कह दिया कि एक समय होनी चाहिये। जब कि आगम से विपरीत कथन हो रहा है ।

(१४) अकषायी की कायस्थिति एक समय की सूत्रों में स्पष्ट है फिर भी

विवेचन में एक समय की स्थिति वाला पाठ सामने होते हुए भी अ तर्मुहूर्त के वृद्धवाद को सही कह दिया ।

(१५) पंचेन्द्रिय की कायस्थिति १००० सागरोपम साधिक सूत्रों में कही गई है एव पर परा में प्रसिद्ध है। टीकाकार ने पन्नवणा पद १८ में उसकी टीका की हक्त, जीवाभिगम पडिवत्ती ४ में भी १००० सागरोपम की टीका करी है। फिर भी जीवाभिगम सर्व जीव पडिवत्ति ९ में उन्हीं टीकाकार ने बिना कुछ निर्देश चर्चा के अनेक सौ सागर की टीका कर दी है ।

(१६) जीवाभिगम सूत्र की नौ पडिवत्तियों के प्रार भिक पाठ की व्याख्या में आदेश का अपेक्षा अर्थ करते-करते वादी भी कहना शुरू तो किया किन्तु एकांतवादी कहने में नहीं पहुँचे। किन्तु उसके आगे पडिवत्ति दूसरी में स्त्रीवेदी की कायस्थिति के पाँच प्रकार में वादी कहना प्रार भ किया और फिर एका त रूप से वादी की प्ररूपण वाला विवेचन कर दिया और पाँच मतभेद होना बता दिया, जो कि पूर्ण रूप से अस गत है ।

(१७) जीवाभिगम प्रतिपत्ति-२ में पाँचवें आदेश के विवेचन में- १. स्त्री के लगातार ९ भव होना बता दिया । २. जलचर, उरपरिसर्प, भुजपरिसर्प के आठ भव का निषेध करके उत्कृष्ट सात भव होना ही कह दिया। ३. आठवाँ भव एका त रूप से जुगलिये का ही होता है, ऐसा प्ररूपण कर दिया। ४. पर्याप्त के लगातार आठ भव ही होना कह दिया। ये कथन आगम सम्मत नहीं है और कोई परस्पर भी अस गत है। क्योंकि भगवती में जलचर उरपरिसर्प आदि के आठ भव का कालादेश कहा गया है । पर्याप्त के लगातार आठ से ज्यादा भव हो सकते हक्त। मनुष्य के लगातार आठ भव करने के बाद वह देवलोक में जा सकता है। इस तरह पर्याप्त के आठ से ज्यादा भव हो जाते हक्त। तभी पर्याप्ता की कायस्थिति अनेक सौ सागर की होती है। दो ६६ सागर अवधिदर्शन की स्थिति को सही रूप में समझाने के लिये भी कम से कम १० भव पर्याप्त के बताये जाते हक्त ।

(१९) पन्नवणा पद २१ की टीका में विद्याचारण के लिये कहा कि यह स यमवान नहीं होता है। जबकि आगमानुसार यह लब्धि स यमवान को ही होती है।

(२०) पुरुषवेद की अ तर्मुहूर्त की कायस्थिति को अवास्तविक कह दिया

और कहा कि वेश परिवर्तन की अपेक्षा अ तर्मुहूर्त है वास्तव में भाव परिणाम की अपेक्षा तो एकसमय की ही जघन्य कायस्थिति होती है। इसका मतलब यह हुआ कि आगमकार एक ही सूत्र के एक ही प्रकरण में एक वेद की कायस्थिति द्रव्य वेष की अपेक्षा कहे और दो वेद की कायस्थिति भाव-परिणाम की अपेक्षा कहे, ऐसी कल्पना टीकाकार द्वारा करना भी उपयुक्त नहीं समझा जा सकता ।-***प्रज्ञापना टीका. पृ.४५१ ।***

उक्त २० स कलन विद्वान आचार्य मलयगिरि से स ब धित है । जिनका कि जैनागम टीका साहित्य में एक अनूठा स्थान है। ये तेरहवीं शताब्दि के साधनासिद्ध पुरुष थे। आप में श्रुतसेवा की अनुपम लगन थी। छाद्मस्थिक क्षयोपशम की विचित्रता से ही निर्दिष्ट त्रुटिएँ स भव हुई है। आप एक भवभीरू, नम्र, सरल, आचार्य हुए है। आगम विपरीत प्ररूपण का किंचित् भी स कल्प आपका नहीं होगा, फिर भी उक्त भूलें आप से हो ही गई है ।

(२१) निशीथ उद्देशक-२ में पादप्रोंछन का रजोहरण अर्थ कर दिया गया है, जबकि रजोहरण स ब धी दस सूत्र आगे पाँचवें उद्देशक में अलग है। पादप्रोंछन औपग्रहिक उपकरण अलग है, रजोहरण औधिक उपकरण अलग है। इन दोनों को एक कर देना भ्रम है । विशेष जानकारी के लिये पुष्प १२ में देखना चाहिये ।

(२२) विसुयावेइ- निशीथ उद्देशक दो में पादप्रोंछन के सूत्रों में अ तिम सूत्र में **विसुयावेइ** क्रिया है जिसका अर्थ है पृथक करना अर्थात् काष्ठ द ड से पादप्रोंछन को अकारण खोल कर अलग करना। किन्तु इस सही अर्थ को छोडकर धूप देना, सुखाना, धोना आदि अर्थ किये है। जब कि किसी भी उपधि को धूप देना सूर्य के ताप में सुखाना कोई दोष नहीं होता है अपितु गुणकर होता है और यदि किसी भी कारण से गीला हो गया तो उसे सूखाना तो आवश्यक कर्तव्य है उसे दोष रूप में कथन करके प्रायश्चित कहने का कोई प्रयोजन नहीं हो सकता है ।

(२३) निशीथ उद्देशा-३, सूत्र-७३ **गोलेहणियासु** यह शब्द भूमि का विशेषण है । जिसका प्रास गिक अर्थ है हल हाँकी हुई जमीन पर लघुनीत बडीनीत नहीं परठना और परठने पर सचित मिट्टी के कारण प्रायश्चित आता है। इस सीधे और उपयुक्त अर्थ को छोडकर गायों के जानवरों के

चरने की भूमि इत्यादि अयुक्त अस गत अर्थ किये गये हक्त । विशेष जानकारी के लिये आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित इस सूत्र का विवेचन देखना चाहिये ।

(२४) निशीथ उद्देशा ३ में **अणुग्गए सूरिए** शब्द है जिसका आशय है जिस स्थान पर सूर्य का ताप नहीं आता हो ऐसे अयोग्य स्थान में मलत्याग नहीं करना चाहिये। चाहे रात्रि में हो या दिन में, कभी भी ऐसे स्थान पर शौचनिवृति नहीं करना । इस अर्थ को छोडकर ऐसा अर्थ किया गया है कि सूर्योदय के पहले मलमूत्र परठने नहीं जाना किन्तु भाजन में शौच निवृति करके रख देना, फिर सुबह परठना। ऐसा अर्थ आगम विपरीत कथन है। आगम में परठने की भूमि से युक्त मकान का होना, स ध्या समय मल विसर्जन की तीन भूमि का प्रतिलेखन करना एव रात्रि में परठने जाने के एव शौचनिवृति के लिये जाने, बैठने स ब धी कई विधान है। अतः रात्रि में अर्थात् सूर्योदय के पूर्व मल विसर्जन करने या परठने मकान के बाहर नहीं जाना, ऐसा अर्थ करना उपयुक्त नहीं है एव आगम सापेक्ष भी नहीं है ।

(२५) निशीथ उद्देशा १९ में औषध स ब धी सात सूत्र है अ तिम सातवें सूत्र में विहार में दवा ले जाने स ब धी प्रायश्चित है। उस जगह प्रयुक्त **वियड** शब्द के अर्थ भावार्थ को मद्य-मादक पदार्थ से स ब धित कर दिया है। जो कि जैन श्रमण के अयोग्य है। मद्य मा स सेवन नरक का कारण है उसे साधु उपयोग में ले और विहार में रखे फिर भी उसका लघु प्रायश्चित कहा जाय, यह भी उपयुक्त नहीं होता है ।

(२६) व्यवहार सूत्र उद्देशा २ में श्रमण के लिये **अट्ठ जाय** विशेषण दिया है जिसका अर्थ है कि किसी इच्छा में तीव्रता के कारण रूग्ण बना साधु । किन्तु यहाँ अर्थ कर दिया कि धन की इच्छा करने वाला साधु अर्थात् अपने परिवार वालों के लिये धन प्राप्ति की इच्छा में तल्लीन होकर रूग्ण पागल सा बना साधु। यहाँ सूत्र में उस रूग्ण साधु की सेवा करने का निर्देश है। रूग्ण सेवा आदि से स ब धित साधु के लिये धनप्राप्ति का अर्थ और विवेचन करना उपयुक्त नहीं है ।

(२७) व्यवहारसूत्र उद्देशा ३ सूत्र १-२ में **गणधारण** का विषय है जिसका अर्थ मुखिया बनकर विचरण करना या मुखिया बनकर विचरण

करने वाला है। वहाँ उसके लिये योग्य होना भी कहा है, साथ ही आज्ञा लेकर विचरण करना कहा है। बिना आज्ञा विचरण करने का निषेध किया है और प्रायश्चित भी कहा है। इसका अर्थ व्याख्याकारों ने आचार्य बनना, गणी या गच्छाधिपति बनने से जोड दिया है, वह उपयुक्त नहीं है। क्योंकि आचार्य उपाध्याय आदि की योग्यता गुण, श्रुत आदि का कथन उस सूत्र से बाद आगे के सूत्रों में ही है ।

(२८) व्यवहार सूत्र उद्देशा-९ में **सोंडियसाला** शब्द है जहाँ पर श्रमण को गोचरी जाने का प्रस ग है उसका अर्थ होता है खाद्यसामग्री या मिष्ठान सामग्री, ऐसा अर्थ न करके मद्यशाला अर्थ विवेचन कर दिया है। जब कि मद्यशाला में साधु के जाने का प्रस ग ही नहीं हो सकता ।

(२९) व्यवहारसूत्र उद्देशा-१० में श्रमण के अध्ययन स ब ध ी वर्णन दीक्षापर्याय के वर्षों से स ब धित करके कहा गया है। उसका ऐसा अर्थ कर दिया कि इतने वर्ष पहले यह सूत्र पढाना ही नहीं, जो कि आगम तात्पर्य से विपरीत अर्थ है। क्यों कि इसी सूत्र में तीन वर्ष की दीक्षा वाले को बहुश्रुत होने पर एव आचारा ग निशीथ सूत्र के मूल एव अर्थ सहित धारण करने वाला होने पर, उपाध्याय पद पर प्रतिष्ठित करना कहा है। अतः तीन वर्ष के पहले आचारा ग निशीथ नहीं पढाना यह अर्थ करना स्पष्ट ही आगम विपरीत है ।

(३०) *व्यवहार उद्देशा-३ में निरुद्ध परियाए और निरुद्धवास परियाए* शब्द है जिनका क्रमशः सीधा सा स गत अर्थ है अत्यल्प दीक्षा पर्याय (एकदिन) और अल्प वर्ष पर्याय(तीन वर्ष से कम)वाले को भी किसी परिस्थिति में आचार्य उपाध्याय पद दिया जा सकता है। इस अर्थ को छोडकर जबरन(बलात्) दीक्षा छोडने से किसी श्रमण को निरुद्ध पर्याय बनाना आदि विस्तृत विवेचन किया है जो मात्र कल्पना रूप ही है ।

ये छेद सूत्रों के स कलन है इस स ब ध ी विशेष जानकारी के लिये पूर्व निर्दिष्ट विवेचन युक्त शास्त्र का अध्ययन करना चाहिये । इसमें निर्युक्तिकार, भाष्यकार, टीकाकार और चूर्णिकार सभी अपेक्षित है। अन्य भी सूत्रों की व्याख्याओं में ऐसी कई भूलें है। उन सब का यहाँ स कलन नहीं करके नमूना रूप थोडा सा स कलन दिया गया है। तटस्थता पूर्वक चिंतन मनन अनुभव करने वालों के लिये इतना ही पर्याप्त होगा।

सार- तात्पर्य यही है कि छद्मस्थ मात्र भूल का पात्र है, अतः खुद के लिये या अन्य किसी विद्वान के लिये, किसी भी प्रकार का मान गुमान और हठाग्रह नहीं करके आगम सापेक्ष चिंतन मनन की गु जाईश रखते हुए जिज्ञासा वृति रखकर सत्य खोजते रहने का प्रयत्न करना चाहिये और सारे प्रयत्नों चिंतनों को आगम कसौटी पर कसने की बुद्धि रखनी चाहिये। किन्तु ***बाबा वाक्य प्रमाण*** वृत्ति तथा अपनी स्वच्छ द बुद्धि कल्पित आगम निरपेक्ष निर्णय लेने की वृत्ति भी नहीं रखनी चाहिये ।

निबंध-५७

पाँचवें और सातवें गुणस्थान में योग

इस गुणस्थान वाला मनुष्य और तिर्यंच प चेन्द्रिय जीव वैक्रिय शरीर बनाते हक्त तब वैक्रिय मिश्र और वैक्रिय दोनो योग होते हक्त और वैक्रिय से निवृत्त होकर पुनः औदारिक में प्रवेश करते समय पहले औदारिक मिश्र होता है फिर औदारिक योग होता है। ऐसा आगम कथित केवली समुद्घात के वर्णन से ज्ञात होता है। अतः इस गुणस्थान में आहारक, आहारक मिश्र और कार्मण इन तीन को छोडकर १५-३=१२ योग है। कर्मग्रंथ में ११ योग कहे गये है वहाँ औदारिक मिश्र नहीं माना गया है अर्थात् वहाँ वैक्रिय से सीधा औदारिक योग स्वीकारा है। औदारिक मिश्र मानने स ब धी अपेक्षा भेद के कारण यह अ तर है-थोकडा में १२ योग और कर्मग्रंथ में ११ योग कहे जाते हक्त ।

इसी अपेक्षा भेद से सातवें गुणस्थान में ११ योग कहे जाते हक्त। वहाँ वैक्रिय और आहारक समुद्घात का प्रारंभ नहीं होता है। अतः दोनों का मिश्र योग नहीं होता और दोनों समुद्घातों की समाप्ति भी वहाँ नहीं होवे इस अपेक्षा औदारिक मिश्र भी नहीं होवे। यदि वैक्रिय या आहारक की समाप्ति सातवें गुणस्थान में हो तो वहाँ औदारिक मिश्र स्वीकार करने पर सातवें गुणस्थान में भी पाँचवें गुणस्थान के समान १२ योग स्वीकारना होगा। जिसमें आहारकमिश्र वैक्रियमिश्र और कार्मण ये तीन योग कम होने से १५-३=१२ योग होंगे।

सार- वैक्रिय और आहारक समुद्घात से निवृत्त होकर औदारिक में आते समय औदारिक मिश्र होने या नहीं होने की मान्यता भेद से यह भिन्नता समझ लेनी चाहिये।

निबंध-५८

ढाई उद्धार सागरोपम का अर्थ

एक योजन लम्बे, चौडे और ऊँड़े पल्य में उत्कृष्ट सात दिन के उगे हुए बालाग्र के अस ख्य ख ड़ करके ठूँस-ठूँस कर भरे जाय उसमें से एक सूक्ष्म समय में एक बालाग्र ख ड़ निकाला जाय और जितने समय में खाली होवे, वह काल एक सूक्ष्म उद्धार पल्योपम है, वैसे १० कोडाकोडी पल्योपम का एक उद्धार सागरोपम होता है। वैसे अढ़ाई उद्धार सागरोपम के जितने सूक्ष्म समय होते है उतने द्वीप समुद्र है अर्थात् अढ़ाई उद्धार सागरोपम के सूक्ष्म समयों के बराबर द्वीपसमुद्रों की स ख्या होती है। इस प्रकार एक सूक्ष्म समय में बालाग्र निकालने से **उद्धार** पल्योपम काल होता है। १००-१०० वर्षों से एक-एक बालाग्र निकालने से **अद्धा** पल्योपम सागरोपम होता है।एव उस एक योजन ल बे-चौडे पल्य के आकाशप्रदेश गिनने से **क्षेत्र** पल्योपम होता है। तीनों प्रकार से कुआँ(पल्य) खाली होने पर तीनों प्रकार के पल्योपम होते हक्त। उन्हें १० क्रोडाक्रोड से गुणा करने पर सागरोपम होता है। इन तीनों ही माप में अस ख्य वर्ष होते हक्त। अस ख्य और अन त की स ख्या को मात्र उपमा से समझ सकते हक्त। गिनती या स ख्या से अस ख्य और अन त को छद्मस्थ जीव नहीं समझ सकते ।

निबंध-५९

देवों का क्षेत्रानुपात-अल्पबहुत्व विचारणा

उल्झन :- प्रज्ञापना सूत्रगत क्षेत्र की अपेक्षा की अल्पाबहुत्वों में स ख्यातगुणा या अस ख्यात गुणा जैसा भी मूलपाठ मिलता है उसी को प्रमाणभूत मान कर स्वीकार करना ही होता है क्यों कि कहीं उस स ब धी तर्क का समाधान होता है और कहीं कोई समाधान नहीं होता है ।

(१) तर्क एव कल्पना से अधोलोक और अधोलोक तिरियलोक के ये दो बोल सबसे पहले यानि ऊर्ध्व लोक से भी पहले होना चाहिये । क्यों कि ऊर्ध्वलोक तो ज्योतिषी विमानों से निकट है सैकड़ों हजारों अस ख्य देव भ्रमण कर सकते है कि तु स्वत त्र अधोलोक और ज्योतिषी देवों का ऐसा कोई स ब ध नहीं जमता है । मात्र सलिलावती-वप्रा इन विजयों में कभी प्रस ग से स ख्यात देव मिल सकते है (असंख्य नहीं) जो ऊर्ध्वलोक के प्रथम बोल से कम ही होने की शक्यता है।

(२) वैमानिक देवों का अल्पाबहुत्व भी आगम प्रमाण से समझ में नहीं आवे जैसा है क्यों कि उपपात-समुद्घातगत जीव प्रथम द्वितीय बोल में अस ख्य हो सकते है । तीसरे चौथे पा चवें बोल में स ख्याता देव ही स भव हो सकते है । अत: तीसरे चौथे पा चवें बोल को पहला दूसरा तीसरा कहा जाय फिर दूसरे को चौथा और पहले को पा चवाँ कहा जाय तो तर्क स गत होता है । यथा- १. सबसे कम अधोलोक तिरियलोक को स्पर्श करने वाले देव(स ख्यात) २. उससे अधोलोक में आये हुए देव स ख्यातगुणा ३. उससे तिरछालोक में आये वैमानिक देव स ख्यातगुणे ४. उससे तीन लोक स्पर्शने वाले उपपात-समुद्घात वाले अस ख्यगुणा ५. उससे ऊर्ध्व-तिरिय लोक को स्पर्शने वाले उपपात समुद्घात वाले स ख्यात गुणे । ६. उससे ऊर्ध्वलोक के वैमानिक स्वस्थान होने से अस ख्यगुणे ।

उलझन का समाधान :- ज्योतिषी देवों के प्रत्येक समुद्र में द्वीपे हैं जो हजार योजन ऊँडे हैं और असंख्य समुद्रों में होते हैं । अत: वहाँ जाने-आने वाले देव भी असंख्य हो सकते है । वैमानिकों में भी कईयों की राजधानियाँ खुद के विमान की सीध में नीचे तिरछे लोक में हैं वे भी द्वीप या समुद्र जो भी सीघ में आयेगा उसी में होगी । तो इस प्रकार नीचे लोक और तिर्छेलोक में असंख्य देवों का आवागमन होने से असंख्य बनने वाली अल्पबहुत्वें भी संगत हो सकती है अर्थात् मूल पाठ में जो भी अल्पबहुत्व कहीं है वह घटित हो सकती है अघटित जैसा कुछ नहीं रहता है । जरूरत है बाहर के द्वीप-समुद्रों में ज्योतिषी देवों के असंख्य द्वीपो में नीचे लोक में हजार योजन ऊँडे असंख्य ज्योतिषी देव मानना तथा वैमानिकों के भी असंख्य राजधानियाँ ढाई द्वीप के बाहर मानना । वास्तव में ऐसा मानने में आगम का पीठबल मिलता भी है और विरोध जैसा कुछ होता भी नहीं है । भगवती आदि सूत्रों में वैमानिक देवों की राजधानियाँ कही है और जीवाभिगम में ज्योतिषी के द्वीपे समुद्रों मे कहे हैं तथा समुद्र सभी हजार योजन ऊँडे होने से द्वीपे भी हजार योजन उंडे ही होंगे । उनमें रहने वाले या जाने वाले देव भी हजार योजन ऊँडाई में ही रहेंगे ।

निबंध-६०

श्वासोश्वास का कालमान या अंतर

स सार का छोटा बड़ा प्रत्येक प्राणी श्वासोश्वास लेता है और

इसी के आधार से जीता है। प्रज्ञापना में नारकी आदि जीव कितने समय का श्वासोश्वास लेते हैं अर्थात् उन उन जीवों को एक बार की श्वासोश्वास क्रिया में कितना समय लगता है, यह बताया गया है ।

इस सूत्र पद का अर्थ यों भी किया जाता है कि कितने समय के विरह से(अ तर से) श्वासोश्वास लिया जाता है। किन्तु आगमकार ने **कितने काल का विरह अथवा कितने काल का अ तर** होता है ? ऐसा नहीं पूछा है और उत्तर में भी अ तर या विरह के भाव का उत्तर नहीं दिया है। यदि अ तर या विरह का आशय होता तो नारकी के लिये **अनुसमय अविरहिय** शब्द का प्रयोग किया जाता और अन्य द ड़को में भी सात थोव या पन्द्रह पक्ष के अ तर से श्वासोश्वास लेते हैं ऐसा स्पष्ट कथन किया जाता। किन्तु पाठ में ऐसा प्रयोग नहीं है।

आगम में शब्द प्रयोग इस प्रकार किये हैं- **प्रश्न- केवई कालस्स आणम ति ? उत्तर- जहण्णेण सत्त थोवाणं आणम ति उक्कोसेण साइरेगस्स पक्खस्स आणमति ।** यहाँ पर 'कालस्स' 'थोवाण' 'साइरेगस्स पक्खस्स' ये श्वासोश्वास के विशेषण हैं । इनका अर्थ स्पष्ट है कि कितने काल का श्वासोश्वास लेते हैं ? जघन्य सात थोव का उत्कृष्ट साधिक पक्ष का श्वासोश्वास लेते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उन-उन जीवों को एक बार की श्वासोश्वास क्रिया में थोव, पक्ष आदि समय लगता है।

व्यवहार दृष्टि से सोचा जाय तो कोई भी सुखी या स्वस्थ प्राणी रुक-रुक कर श्वास नहीं लेता है आभ्य तर नाड़ी स्प दन या नाक द्वारा श्वास ग्रहण स्वाभाविक किसी का भी नहीं रुकता है किन्तु मद गति और तीव्र गति, मदतम गति और तीव्रतम गति से श्वास लेने की भिन्नता जरूर देखी जा सकती है और समझी जा सकती है ।

आगम में मनुष्य के श्वासोश्वास के लिये बेमात्रा शब्द का प्रयोग किया गया है। यदि इस प्रकरण में बताये गये काल मान को विरह समझा जायगा तो मनुष्य के लिये अविरह न कह कर 'बेमात्रा' का जो कथन किया गया है उसका अर्थ होगा कि अ तर का निश्चित मान नहीं है किन्तु विभिन्न तरह का अ तर होता है। जब कि प्रत्यक्ष व्यवहार से अनुभव किया जा सकता है कि नाक द्वारा चलने वाला श्वास या नाड़ी स्प दन अथवा धड़कन आदि किसी भी प्राणी के मिनट, आधा मिनट, दो मिनट ऐसी कोई

भी बेमात्रा तक के लिये रुकते नहीं है, उसमें कुछ भी विरह-अ तर नहीं पड़ता है । प्रत्यक्ष में तो यह देखा जाता है कि विभिन्न मात्रा का कालमान अलग-अलग व्यक्तियों के श्वासोश्वास क्रिया का होता है। भगवती सूत्र की टीका में भी सात लव आदि के लिये कालमान शब्द का प्रयोग किया है। आहार का अ तर जिस प्रकार प्रत्येक प्राणी के जीवन में देखा जाता है वैसे श्वासोश्वास का अ तर नहीं देखा जाता ।

भगवती सूत्र में पा च स्थावर का आहार अणुसमय अविरह कहा है, किन्तु श्वासोश्वास के लिये विमात्रा शब्द का ही प्रयोग किया है । इससे भी स्पष्ट होता है कि आगमकार को श्वासोश्वास का विरह नहीं बताना है किन्तु उसका कालमान बताना है, जो कि औदारिक शरीर वालों में विमात्रा वाला है ।

वहीं पर (श. १ उ. १ में) बेइन्द्रिय से प चेन्द्रिय तक के श्वासोश्वास के लिये केवल विमात्रा ही कहा है किन्तु आहार के लिये विमात्रा कहने के साथ अस ख्य समय के अ तर्मुहूर्त ***यावत्*** दो-तीन दिन से आहार की इच्छा उत्पन्न होती है, ऐसा कहा है। इस प्रकार आगम से भी औदारिक द ड़कों के आहार का अ तर स्पष्ट है और व्यवहार में भी आहारेच्छा में अ तर होता देखा जाता है। श्वासोश्वास के लिये ऐसा कुछ भी स्पष्ट अ तर औदारिक द ड़कों का आगम में नहीं बताया गया है और प्रत्यक्ष में भी किसी के श्वासोश्वास में ऐसा अ तर देखा नहीं जाता है ।

अत: प्रत्यक्ष अनुभवानुसार श्वास का मद मदतम होना सहज समझ में आ सकता है किन्तु कुछ कुछ समयों के लिये आहारेच्छा के समान श्वास का रुक जाना, अ तर पड़ जाना सहज समझ में नहीं आ सकता है।

समवायाग टीका में एव प्रज्ञापना टीका में किसी भी कारण से अर्थात् भ्रम से या छद्मस्थता के दोष से श्वासोश्वास के इस कालमान को अ तर या विरह कहा गया है जिसका आशय यह है कि "७ लव, १ पक्ष या ३३ पक्ष तक देव बिना श्वास क्रिया के रहते हैं उतने समय के बीतने पर एक बार श्वासोश्वास लेते हैं फिर ३३ पक्ष आदि समय तक रुक जाते हैं।" आगम प्रकाशन समिति ब्यावर से प्रकाशित विवेचन युक्त प्रज्ञापना सूत्र में भी टीका का अनुसरण करते हुए ही अर्थ विवेचन किया गया है । इस तरह श्वास क्रिया को आभोग आहार क्रिया के समान पद्धति वाला

टीका आदि में कहा होने से पाठकों में अशुद्ध धारणा एव उससे अनेक श काशीलता की स्थिति बनी है ।

यद्यपि देवों का तो हम अभी कुछ भी अनुभव कर नहीं सकते किन्तु पृथ्वीतल पर रहे तिर्यंच, मनुष्यों का अनुभव तो किया जा सकता है और उस अनुभव से तो यह निःस कोच कहा जा सकता है कि श्वास क्रिया, आभोग आहार क्रिया के समान अ तर की पद्धति वाली नहीं हो सकती ।

इस व्यवहार अनुभव दृष्टि से एव आगम आशय की ऊपरोक्त अपेक्षा से देवों की भी एक श्वासोश्वास की क्रिया ७ थोव, मुहूर्त, पक्ष आदि समय में पूर्ण होती है, इतनी शा त म द म दतम गति से वे देव श्वास लेते हैं और छोड़ते हैं। नारकी जीव शीघ्र शीघ्रतम गति से श्वास लेते छोड़ते हैं एव तिर्यंच मध्यम गति या विमात्रा से(कोई कभी म द गति से, कोई कभी तीव्र गति से) श्वास लेते- छोड़ते हैं । किन्तु आहार के समान कुछ-कुछ समय का अ तर करके कोई भी श्वास क्रिया नहीं करते हैं ।

निबंध-६१

असंख्य अनंतकाल कब कैसे ?

अपर्याप्ता के उत्कृष्ट भव :– अकेले अपर्याप्त के ६५५३६ भव भी एक साथ हो जाय तो भी अतर्मुहूर्त काल ही होता है। अतर्मुहूर्त की जघन्य स्थिति के पर्याप्त जीव के भव साथ में मिलने पर ही अस ख्य काल या अन तकाल की कायस्थिति होती है। इसी तरह अकेले सूक्ष्म की भी कायस्थिति अन तकाल नहीं होती है और अकेले बादर की भी कायस्थिति अन तकाल नहीं होती है। दोनों के भव स युक्त होवे तभी अन तकाल होता है। **सार–** अकेले अपर्याप्त की कायस्थिति अंतर्मुहूर्त से ज्यादा नहीं होती और अकेले सूक्ष्म की अस ख्याताकाल की कायस्थिति होती है, अन त काल की नहीं हो सकती है। सूक्ष्म और बादर तथा अपर्याप्त-पर्याप्त दोनों के भव मिले तभी अन तकाल होता है।

निबंध-६२

आयोजीकरण क्रिया स्वरूप

आयोजीकरण अतर्मुहूर्त का होता है। मोक्ष के सन्मुख होने की

प्रक्रिया या मोक्ष जाने के पूर्व की तैयारी को आयोजीकरण कहा जाता है। इस आयोजीकरण में मुख्यतः दो क्रियाएँ होती है– (१) केवली समुद्घात (२) योग निरोध करने की क्रमिक प्रक्रिया।

यों तो तेरहवाँ गुणस्थान जिनको प्राप्त हो गया है वे मोक्ष के सन्मुख ही है, फिर भी अन्तिम तैयारी की प्रमुखता से यहाँ आयोजीकरण विवक्षित है। यह आयोजीकरण केवली समुद्घात से प्रार भ होकर योग निरोध की पूर्णता में समाप्त होता है। योग निरोध की प्रक्रिया पूर्ण होने पर, पूर्ण अयोगी जीव १४वें गुणस्थान में पहुंचता है। वहाँ पर भी पाँच लघु अक्षर उच्चारण जितने समय तक ठहर कर अवशेष कर्म क्षय करके वह सिद्ध बुद्ध मुक्त होता है।

केवली समुद्घात और योग निरोध प्रक्रिया के बीच भी अस ख्य समयों का अ तर्मुहूर्त काल रहता है जो कई मिनिटों का होता है। उस मध्यकाल में केवली द्वारा गमनागमन, शय्या स स्तारक लौटाना, किसी के साथ अल्प वार्तालाप या देवों को मानसिक उत्तर देने की प्रक्रिया इत्यादि प्रस ग भी बन सकते हैं।

कई जीवों को केवली समुद्घात नहीं होती है उनके भी अ तर्मुहूर्त पूर्व मोक्ष जाने की प्रक्रिया रूप आयोजीकरण होता है। योग निरोध के भी पूर्व की क्रमिक तैयारी होती है एव फिर क्रमशः योग निरोध होता है। केवली समुद्घात अवस्था में मन और वचन का योग नहीं होता है। काय योग में औदारिक, औदारिक मिश्र एव कार्मण ये तीन योग होते हैं।

निबंध-६३

समुद्घात-७ का स्वरूप

मूल शरीर से कुछ आत्मप्रदेशों का अल्प समय के लिये बाहर निकलना। आत्म प्रदेशों की इस प्रकार की प्रक्रिया सात प्रकार के प्रस गों से होती है। अतः समुद्घातें सात प्रकार की कही गई है।

१. वेदनीय समुद्घात–अशाता वेदनीय की तीव्रता से आत्मप्रदेश स्वअवगाहित क्षेत्र से बाहर परिस्प दित होते हैं उस समय जो वह आत्मा की प्रक्रिया होती है उसे वेदनीय समुद्घात कहते हैं।

२. कषाय समुद्घात–क्रोध, मान, माया या लोभ किसी भी कषाय की

तीव्रता से आत्मप्रदेश शरीर अवगाहित क्षेत्र से बाहर परिस्प दित होते हैं, उस प्रक्रिया को कषाय समुद्घात कहते हैं।

३. मारणा तिक समुद्घात– मरण समय में भावी जन्म स्थान तक आत्मप्रदेशों का जाना एव वापिस आना रूप आत्म प्रक्रिया मारणा तिक समुद्घात कही जाती हैं।

४. वैक्रिय समुद्घात– नारकी, देवता, मनुष्य और तिर्यंच जो कोई भी उत्तर वैक्रिय करते हैं तब उन्हें पहले समुद्घात करनी पड़ती है, वही वैक्रिय समुद्घात है। अर्थात् वैक्रिय शरीर बनाने के लिये उसके योग्य पुद्गल ग्रहण करने हेतु आत्मप्रदेशों को ऊँचाई में हजारो योजन बाहर फैलाया जाता है। फिर उस हजारों योजन अवगाहित क्षेत्र में रहे हुए वैक्रिय वर्गणा के पुद्गल ग्रहण किये जाते हैं। इस प्रकार आत्मप्रदेशों की शरीर से बाहर निकलने की यह प्रक्रिया वैक्रिय समुद्घात कही जाती हैं।

५. तैजस समुद्घात– शीत या उष्ण तेजोलब्धि वाला किसी का उपकार या अपकार करने के परिणामों से उक्त दोनों प्रकार के पुद्गल ग्रहण करके प्रक्षेप करता है उन पुद्गलों को विशेष मात्रा में ग्रहण करने एव छोड़ने हेतु आत्मप्रदेशों के शरीर अवगाहित क्षेत्र से बाहर निकलने रूप जो क्रिया होती है वह तैजस समुद्घात है।

६. आहारक समुद्घात– शका का समाधान एव जिज्ञासा की स तुष्टि के लिये जो एक नया लघु शरीर बनाकर करोड़ों माइल दूर भेजा जाता है, वह आहारक शरीर होता है। उस आहारक शरीर को बनाने में और भेजने में आत्मप्रदेश कुछ बाहर निकाले जाते हैं और फिर कुछ आत्मप्रदेश उस नूतन शरीर के साथ रहते हुए इच्छित स्थान में जाते हैं। आत्मप्रदेशों की शरीर अवगाहित क्षेत्र से बाहर निकलने रूप यह स पूर्ण क्रिया आहारक समुद्घात हैं। चौदह पूर्व के ज्ञानी आहारक लब्धि स पन्न श्रमण ही यह समुद्घात कर सकते हैं, अन्य कोई नहीं कर सकता ।

७. केवली समुद्घात– मोक्ष जाने के निकट पूर्व में अघातिकर्मों की विषमरूपता को सम रूप में करने हेतु आत्मप्रदेश स पूर्ण लोक प्रमाण प्रदेशों में व्याप्त हो जाते हैं। आत्मप्रदेशों की और लोकप्रदेशों की स ख्या समान है। अतः यह जीव के आत्मप्रदेशों की सर्वोत्कृष्ट अवगाहना होती है। औदारिक

शरीर तो इस समय भी अपनी अवगाहना में ही रहता है, केवल आत्मप्रदेश ही बहार निकलते हैं। इस प्रकार आठ समय के लिये आत्मप्रदेशों के बाहर निकलने रूप यह प्रक्रिया है, इसे ही केवली समुद्घात कहा गया है।

समुद्घातों का समय और केवली समुद्घात के आठ समय :-

प्रार भ की ६ समुद्घातो में अस ख्य समय का अतर्मुहूर्त रूप समय लगता है। केवली समुद्घात में आठ समय लगते हैं जिसकी प्रक्रिया इस प्रकार है- केवली समुद्घात की प्रक्रिया में जीव पहले समय शरीर की चौड़ाई-मोटाई प्रमाण ऊपर-नीचे लोका त तक आत्मप्रदेशों को फैलाता है। दूसरे समय में शरीर की चौड़ाई-मोटाई प्रमाण उस द ड़ रूप प्रदेशों को पूर्व-पश्चिम और उत्तर दक्षिण में एक-एक भित्ति रूप(कपाट रूप) में विस्तृत करता है। तीसरे समय में उन भित्ति रूपस्थ आत्मप्रदेशों को दोनों बाजू में लोका त तक विकसित करता है जिससे आत्मप्रदेश पूरे लोक क्षेत्र में अर्थात् सम किनारे वाले घनीकृत लोक रूप में व्याप्त हो जाते हैं। किन्तु लोक विषम किनारे वाले घन रूप होने से उसके वे छोटे खुणे निष्कु ट रूप क्षेत्र अव्याप्त रह जाते हैं जो चौथे समय में आपूरित हो जाते हैं। इस प्रकार स पूर्ण लोक में पूर्ण रूपेण आत्मप्रदेशों को व्याप्त होने में कुल चार समय लगता है और इसी क्रम से आत्मप्रदेशों को पुनः स कुचित(साहरण) करने में भी चार समय लगते हैं।

इस तरह केवल एक समय(चौथे समय) ही आत्मप्रदेशों की स पूर्ण लोक प्रमाण अवगाहना या सर्वोत्कृष्ट अवगाहना होती है एव अपेक्षा से अर्थात् **खुणो निष्कुटों के रिक्त रहने को गोण** कर दिये जाने की अपेक्षा तीन समय (तीसरे, चौथे और पाँचवें समय) की लोक प्रमाण अवगाहना होती है। इन तीनों समयों में आत्मप्रदेश शरीर में कम और बाहर अत्यधिक होते हैं। इसीलिये इन तीन समयों में जीव अणाहारक होता है एव उस समय औदारिक का योग भी नहीं माना जाता है। कार्मण काय योग(कार्मण शरीर का व्यापार)रहता है। अन्य पाँच समयों में आत्म प्रदेश शरीर में ज्यादा रहते हैं और बाहर कम होते हैं। अतः औदारिक शरीर का योग या मिश्रयोग और आहारकता बनी रहती है।

आठ समय का विवरण :-

समय	स स्थान	योग
१	द ड़ रचना-द ड़रूप में आत्मप्रदेश	औदारिक
२	कपाट रचना-कपाट रूप (दिवालरूप)	औदारिक मिश्र
३	पूरित मन्थान-समान किनारावाला घनरूप लोक प्रमाण	कार्मण
४	पूरित लोक-विषम किनारावाला घनरूप लोक प्रमाण	कार्मण
५	लोक साहरण-समघनरूप लोक	कार्मण
६	मन्थान साहरण-कपाट रूप स स्थान	औदारिक मिश्र
७	कपाट साहरण - द ड़रूप स स्थान	औदारिक मिश्र
८	दंड़ साहरण - शरीरस्थ	औदारिक

समुद्घात की संख्या स ब धी विशेष ज्ञातव्य :- १. आहारक समुद्घात तीन बार किए हुए जीव तीन गतियों में मिल सकते हैं। मनुष्य में चार बार किये हुए मिल सकते हैं अर्थात् चौथी बार आहारक समुद्घात करने वाला उसी भव में मोक्ष जाता है।

२. दस औदारिक द ड़क में कोई भी समुद्घात के होने की नियमा नहीं है और होवे तो जघन्य १-२-३ आदि होवे।

३. नारकी में प्रत्येक जीव के वेदनीय समुद्घात नियमतः होती है। शेष किसी भी द ड़क में ऐसा नियम नहीं है।

४. कषाय समुद्घात और वैक्रिय समुद्घात नारकी और देवता दोनों में नियमतः होते हैं।

५. नियमतः होने वाली समुद्घातें १०००० आदि स ख्यात वर्ष की उम्र वालों के जघन्य स ख्याता बार होती है और अस ख्य वर्ष की उम्र वालों के जघन्य अस ख्य बार होती है। इसलिए ज्योतिषी, वैमानिक में कषाय समुद्घात जघन्य अस ख्य कही है और भवनपति आदि में जघन्य स ख्यात कही है।

समुद्घात संबंधी अन्य जानकारियाँ:-

समुद्घात आत्म प्रदेशों के शरीर से बाहर निकलने की प्रमुख क्रिया है। वे आत्म प्रदेश जितने क्षेत्र का अवगाहन करते हैं और उसमें जितना समय लगता है वह इस प्रकार है -

(१) वेदनीय और कषाय समुद्घात में-शरीर की लम्बाई-चौड़ाई का जितना क्षेत्र है उसके अंग और उपांग के मध्य आत्म प्रदेशों से जो रिक्त स्थान है उसे आपूरित करने से शरीर प्रमाण क्षेत्र घनी रूप में आत्म प्रदेशों से व्याप्त होता है। इस क्षेत्र को आत्म प्रदेशों से व्याप्त करने में एक समय या दो समय उत्कृष्ट तीन समय लगता है।

(२) आत्म प्रदेशों के व्याप्त होने की प्रक्रिया सर्वत्र एक सी होती है। केवली समुद्घात के पहले दूसरे तीसरे समय की प्रक्रिया के समान होती है। जितना क्षेत्र व्याप्त करना होता है उसके अनुसार क्षेत्र की लम्बाई-चौड़ाई का अन्तर पड़ता है। व्याप्त करने का क्षेत्र एक दिशागत हो तो एक समय लगता है चार दिशागत हो या मोड़ हो तो दो समय लगते हैं तथा विदिशा गत हो या विदिशा का मोड़ हो तो तीन समय लगते हैं एव लोका त खुणे (कोने) हो या अन्य ऐसा गमन क्षेत्र हो तो कदाचित चार समय भी आत्म प्रदेशों को जाने में लग जाते हैं।

(३) इस विधानानुसार मारणा तिक समुद्घात और केवली समुद्घात को छोड़कर शेष पाँच समुद्घात में उत्कृष्ट तीन समय में आत्म प्रदेशों के शरीर से बाहर निकल कर अपने परिलक्षित क्षेत्र में व्याप्त होने की क्रिया पूर्ण हो जाती है। मरण समुद्घात में उत्कृष्ट कदाचित चार समय भी पूर्ण व्याप्ति में लगते हैं। केवली समुद्घात में अजघन्य अनुत्कृष्ट चार समय ही आत्मप्रदेशों को लोक में व्याप्त होने में लगते हैं।

(४) इन सात समुद्घातों के पुद्गल ग्रहण निस्सरण एव कर्म निर्जरण का कुल काल जघन्य उत्कृष्ट अस ख्य समयों का अ तर्मुहूर्त है किन्तु केवली समुद्घात का काल आठ समय का अ तर्मुहूर्त ही होता है एव आहारक समुद्घात का काल जघन्य एक समय का है एव उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त का है।

(५) तात्पर्य यह है कि आत्म प्रदेशों को बाहर व्याप्त होने का काल जघन्य एक समय, २ समय और उत्कृष्ट ३ या ४ समय है और उस व्याप्त क्षेत्र में ग्रहण-निस्सरण आदि स पूर्ण क्रिया समाप्त करने का समय अंतर्मुहूर्त है एव केवली समुद्घात का सम्पूर्ण काल आठ समय है।

(६) मरण समुद्घात गत आत्म प्रदेशों की अवगाहना जघन्य अगुल के अस ख्यातवें भाग होती है और उत्कृष्ट एक दिशा में अस ख्य योजन की होती है। यह सीमा नये उत्पत्ति क्षेत्र के दूरी की अपेक्षा है।

(७) वैक्रिय और तैजस समुद्घात में- जघन्य अ गुल के अस ख्यातवें भाग उत्कृष्ट स ख्याता योजन एक दिशा या विदिशा में। इसमें पुद्गल ग्रहण हेतु द ड़ाकार आत्म प्रदेश फैलाये जाते हैं उसकी लम्बाई की अपेक्षा यह सीमा है।

(८) आहारक समुद्घात में- जघन्य अगुल के अस ख्यातवें भाग उत्कृष्ट एक दिशा में स ख्याता योजन होता है। यह सीमा भी द ड़ निकालने की अपेक्षा ही है।

(९) केवली समुद्घात में- आत्मप्रदेशों की अवगाहना स पूर्ण लोक प्रमाण होती है।

(१०) इन समुद्घातों से छोड़े गये पुद्गल लोक में प्रसारित होते हैं उनसे जिन जीवों की विराधना होती है, उन्हें किलामना पहुँचती है, उसकी क्रिया समुद्घात करने वाले जीव को लगती है। वे क्रियाएँ पाँच है- (१) कायिकी (२) अधिकरणिकी (३) प्राद्वेषिकी (४) परितापनिकी (५) प्राणातिपातिकी। इनका विश्लेषण बावीसवें क्रिया पद में किया गया है। इन पाँच में भी किसी जीव से तीन किसी से चार और किसी से पाँच क्रिया लगती है। उन जीवों को समुद्घात गत जीव से या अन्य जीवों से ३-४ या ५ क्रिया अपनी प्रवृति अनुसार लग सकती है।

(११) नैरयिक की मरण समुद्घात जघन्य साधिक हजार योजन होती है और उत्कृष्ट अस ख्याता योजन होती है। जघन्य पाताल कलशों में जन्मने की अपेक्षा होती है।

(१२) एकेन्द्रिय में मरण समुद्घात में उत्कृष्ट चार समय(दोनों तरफ स्थावरनाल की अपेक्षा)आत्म प्रदेशों को परिलक्षित क्षेत्र व्याप्त करने में लगता है। शेष १९ द ड़क में उत्कृष्ट तीन समय ही लगता है।

(१३) वैक्रिय समुद्घात वायुकाय में जघन्य अगुल के अस ख्यातवें भाग है शेष सभी में जघन्य अगुल के स ख्यातवें भाग है। नारकी और वायुकाय के यह एक दिशा में होती है शेष सभी के दिशा विदिशा में भी होती है।

(१४) तैजस समुद्घात सभी के जघन्य अगुल के अस ख्यातवें भाग की होती है। तिर्यंच में एक दिशा में होती है मनुष्य और देव में दिशा विदिशा में भी होती है।

(१५) वैक्रिय, तैजस, आहारक समुद्घात में १,२,३ समय में आत्मप्रदेशों

से जितना क्षेत्र व्याप्त करके पुद्गल ग्रहण निस्सरण होता है उतने क्षेत्र प्रमाण अवगाहना और उतने समय का काल यहाँ प्रस्तुत प्रकरण में बताया गया है। किन्तु इस प्रक्रिया के बाद जो रुप आदि बनाये जाते हैं एव जो क्रिया की जाती है उन रुपों की या क्रिया की अवगाहना या स्थिति आदि नहीं बताई गई है। इससे भी स्पष्ट होता है आत्म प्रदेशों के शरीर अवगाहित क्षेत्र से बाहर निकलने की प्रक्रिया को प्रमुख रुप से समुद्घात माना गया है।

निबंध-६४

योग निरोध स्वरूप और मुक्ति

योगनिरोध प्रक्रिया- सर्व प्रथम मनयोग का निरोध किया जाता है। सन्नी प चेन्द्रिय पर्याप्त के प्रथम समय का जो मनोयोग होता है उससे भी अस ख्यगुण हीन मनोयोग का प्रति समय निरोध करते हुए अस ख्य समयों में पूर्ण रूप से मनोयोग का निरोध कर दिया जाता है।

उसके अन तर वचन योग का निरोध किया जाता है। बेइन्द्रिय के पर्याप्त में जघन्य योग वाले के वचन योग से अस ख्यगुण हीन वचन योग का प्रति समय निरोध किया जाता है एव अस ख्य समयों में पूर्णतया वचन योग का निरोध हो जाता है।

उसके बाद काय योग का निरोध किया जाता है। सूक्ष्म अपर्याप्त पनक(फूलन) प्रथम समयोत्पन्न का जो जघन्य काय योग होता है उससे अस ख्यातगुण हीन काय योग का प्रति समय निरोध किया जाता है। अस ख्य समयों में पूर्णतया काय योग का निरोध हो जाता है।

इस प्रकार तीनों योगों का निरोध करके केवली शैलेषी अवस्था को प्राप्त करता है। इस शैलेषी अवस्था में आत्म प्रदेश दो तिहाई (२/३) शरीर अवगाहित क्षेत्र में रहते हैं। काय योग के निरोध के साथ ही १/३ भाग के आत्मप्रदेश स कुचित हो जाते हैं क्यों कि अयोगी होने के पूर्व ही आत्म प्रदेशों के स कुचित होने की क्रिया हो जाती है। शैलेषी अवस्था और अयोगी अवस्था में ऐसी प्रक्रिया स भव नहीं है और इसी में ही उनका अयोगित्व और शैलेषीपन सार्थक है।

फलितार्थ यह है कि तेरहवें गुणस्थान के अत तक- १. आत्मप्रदेशों को १/३ स कोच २. अयोगित्व ३. शैलेषी(निष्प्रक प) अवस्था इन तीनों की

प्राप्ति हो जाती है। इन तीनों अवस्था की प्राप्ति होने से ही १४वाँ गुणस्थान प्रार भ होता है, ऐसा समझना चाहिये।

चौदहवें गुणस्थान में अस ख्यगुण श्रेणी करके अस ख्य कर्मस्क धों का क्षय कर, चार अघाती कर्मों का एक साथ क्षय करके, औदारिक, तैजस, कार्मण शरीर और सभी छोड़ने योग्य पर पदार्थों को केवली त्याग करते हुए ऋजु श्रेणी से, अस्पर्शद् गति से, साकारोपयोग में, एक समय में, अविग्रह गति से सिद्ध होते हैं। वे उर्ध्व लोकाग्र में पहुच कर स्थित होते हैं।

सिद्ध अवस्था में जीव सदा के लिये कर्म रज रहित, शाश्वत आत्म सुखों में लीन रहते हैं। उनका पुनः स सार में आगमन एव जन्म मरण नहीं होता है क्यों कि कर्म ही स सार का बीज है और वे सम्पूर्ण कर्मों को मूलतः क्षय करने से ही सिद्ध बनते हैं।

सिद्धों के सुख का स्वरुप आदि औपपातिक सूत्र में वर्णित है जिसके लिये ईसी पुस्तकमें निबंध नं. ५० देखें।

निबंध-६५

भगवान ऋषभदेव की शादी

भगवान ऋषभदेव के विवाह विधि का वर्णन सूत्र में नहीं है, व्याख्याग्र थों में बताया गया है कि मिश्रण काल के कारण सुन दा और सुम गला नामक दो कु वारी कन्याओं के साथ युगल रूप में उत्पन्न बालकों के मृत्यु प्राप्त हो जाने पर वे कन्याएँ कुलकर नाभि के स रक्षण में पहुँचा दी गई थी। वे दोनों ऋषभदेव भगवान के साथ में ही स चरण करती थी। योग्य वय में आने पर शक्रेन्द्र ने अपना जीताचार जानकर कि "अवसर्पिणी के प्रथम तीर्थंकर का पाणिग्रहण करना मेरा कर्तव्य है" भरत क्षेत्र में आकर देव देवियों के सहयोग से सुम गला और सुन दा कुँवारी कन्याओं के साथ भगवान की विवाहविधि सम्पन्न की।

निबंध-६६

पाँचवें आरे के १० बोल विच्छेद

(१) परम अवधिज्ञान (२) मनःपर्यवज्ञान (३) केवलज्ञान (४-६) तीन चारित्र (७) पुलाकलब्धि (८) आहारकशरीर (९) जिनकल्प (१०) दो श्रेणी उपशम और क्षायिक।

कई लोग भिक्षुपड़िमा, एकल विहार, स हनन आदि का विच्छेद कहते हैं किन्तु वह कथन आगम से सम्मत नहीं है अपितु विपरीत भी होता है। भगवान महावीर के शासन में १००० वर्ष बाद स पूर्ण पूर्व ज्ञान का मौलिक रूप में विच्छेद हुआ, आ शिक रूपा तरित अवस्था में अब भी उपा ग, छेद आदि में विद्यमान है। २१ हजार वर्ष तक यह भगवान महावीर का शासन उतार-चढ़ाव के झोले खाता हुआ भी चलेगा। सर्वथा (आत्य तिक) विच्छेद भगवान के शासन का इस मध्यावधि में नहीं होगा। किन्तु छट्ठा आरा लगने पर पाँचवें आरे के अ तिम दिन ही होगा। प्रथम प्रहर में जैन धर्म, दूसरे प्रहर में अन्य धर्म, तीसरे प्रहर में राजधर्म, चौथे प्रहर में अग्नि का विच्छेद होगा। इसी प्रकार का वर्णन सभी अवसर्पिणी के पाँचवें आरे का समझना। यह आरा २१००० वर्ष का होता है।

निबंध-६७

उत्सर्पिणी का प्रारंभ

उत्सर्पिणी काल का प्रारम्भ श्रावण वदी एकम को होता है। शेष आरे किसी भी दिन महिने में प्रारम्भ हो सकते हैं। उसका कोई नियम नहीं है क्यों कि आगम में वैसा कथन नहीं है अपितु ऐसा नियम मानने पर आगम विरोध भी होता है। यथा- ऋषभदेव भगवान माघ महीने में मोक्ष पधारे उसके तीन वर्ष साढ़े आठ महिने बाद श्रावण वदी एकम किसी भी गणित से नहीं आ सकती। अतः चौथा आरा किसी भी दिन प्रारम्भ हो सकता है। उसी तरह अन्य आरे भी समझ लेना। मूलपाठ में केवल उत्सर्पिणी का प्रारम्भ श्रावण वदी एकम से कहा गया है। अन्य आरों के लिये मन कल्पित नहीं मानना ही श्रेयस्कर है।

निबंध-६८

चक्रवर्ती के १४ रत्नों का उत्पत्ति स्थान

दक्षिण भरतक्षेत्र में तीन ख ड़ होते है उसमें से मध्य के ख ड़ में तीर्थंकर चक्रवर्ती आदि जन्म धारण करते है। ऋषभदेव भगवान प्रथम राजा और प्रथम तीर्थंकर इस भरत क्षेत्र में हुए। उन्होंने अपने १०० पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र भरत को राज्याधिकार दिया और शेष ९९ पुत्रों को भी अलग-अलग राज्य बाँट कर राजा बनाया था। भरत राजा विनीता नगरी में रहकर राज्य

स चालन करता था। विनीतानगरी भगवान ऋषभदेव के लिये शक्रेन्द्र ने बनवाई थी। जो द्वारिका के समान १२ योजन ल बी ९ योजन चौड़ी प्रत्यक्ष देवलोक जैसी ऋद्धि समृद्धि से स पन्न थी।

भरत क्षेत्र में प्रथम चक्रवर्ती का भरत नाम होता है और ऐरवत क्षेत्र में प्रथम चक्रवर्ती ऐरवत नाम वाला होता है, महाविदेह की ३२ विजयों के नाम की समानता वाले चक्रवर्ती होते हैं।

राज्य स चालन करते हुए पुण्य प्रभाव से एव चक्रवर्ती बनने का समय निकट आने पर १४ रत्नों की उत्पत्ति होती है। (१) चक्ररत्न (२) द ड़रत्न (३) असिरत्न (४) छत्ररत्न ये चार एकेन्द्रियरत्न शस्त्रागार-आयुधशाला में उत्पन्न होते हैं। (५) चर्मरत्न (६) मणिरत्न (७) का गणिरत्न; ये तीन लक्ष्मीभ ड़ार में उत्पन्न होते हैं अर्थात् समय आने पर देवता लाकर रखते हैं। ये सातों एकेन्द्रिय रत्न १०००-१००० देवों के द्वारा सेवित होते है। ये रत्न पृथ्वीमय होते हैं।

(८) सेनापतिरत्न (९) गाथापतिरत्न (१०) बढ़ईरत्न (११) पुरोहित रत्न ये चार रत्न मानव रूप है। राजधानी में उत्पन्न होते हैं । (१२) अश्वरत्न (१३) हस्तीरत्न ये दो तिर्यंच प चेन्द्रियरत्न है, वैताढ़्य पर्वत की तलहटी में उत्पन्न होते हैं। (१४) स्त्रीरत्न विद्याधरों की उत्तरी श्रेणी में उत्पन्न होता है। ये १४ रत्न १०००-१००० देवों से सेवित होते हैं अर्थात् ये अपने पुण्य प्रभाव से देवाधिष्ठित होते हैं।

निबंध-६९

चक्रवर्ती की संपूर्ण संपदा

१४ रत्न, नवनिधान, ६४००० राणियाँ, ३६० रसोइये, १६००० देव, ३२ हजार राजा, १८ श्रेणी प्रश्रेणी(विशिष्ट राजा), बत्तीस विधियों से युक्त ३२००० नाटक(म ड़ल), ८४ लाख अश्व, ८४ लाख हाथी, ८४ लाख रथ, ९६ करोड़ पैदल सेना, ७२००० नगर, ३२००० देश, ९६ करोड़ गाँव, ९९००० द्रोणमुख, ४८००० पाटण, २४००० कस्बे, २४००० म ड़ब, २०००० खाने, १६००० खेड़े, १४००० स बाह, ५६ जलनगर, ४९ ज गली प्रदेश वाले राजा, छ ख ड़ युक्त स पूर्ण भरत क्षेत्र, ग गा-सि धु नदी, चुल्लहिमव त पर्वत, ऋषभकूट, वैताढ़्य पर्वत एव उसकी दोनों गुफाएँ, दो विद्याधरों की श्रेणियाँ, मागध वरदाम प्रभासतीर्थ ये सभी

ऋद्धि चक्रवर्ती के पुण्य प्रभाव से स्वाधीन एव विषयभूत होती है। यह स पूर्ण ऋद्धि कुछ व्यक्तिगत विनीता राजधानी में एव कुछ छ ख ड़ में समझना।

निबंध-७०

सिद्धायतन शब्द की सार्थकता एवं सिद्ध शिला

प्रश्न : ज बूद्वीप में सिद्धायतन कुल कितने कहे गये है और इस शब्द की सार्थकता कैसे हो सकती है अर्थात् ये सिद्धों के घर कैसे है क्यों कि सिद्धों का घर तो सिद्ध शिला है ?

६ वर्षधर, १६ वक्षस्कार, ४ गजद ता, ३४ वैताढ़्य, मेरु के चार वनों में १६, मेरु चूला पर एक, दो वृक्षों पर, ये कुल ७९ सिद्धायतन कहे गये है ।

समीक्षा-मेरु के प ड़क वन का पाठ देखने से ज्ञात होता है कि भवन को ही काला तर में सिद्धायतन कहने की सर्वत्र कोशिश की गयी है। क्यों कि सिद्धायतन किसका हो सकता है। कोई भी सिद्ध तो सादि अन त है और यह सिद्धायतन अनादि का है तो इसमें प्रतिमा किसकी हो सकती है ? प्रतिमा तो किसी सादि व्यक्ति की होती है। अतः अनादि प्रतिमाओं और सिद्धायतनों के होने की कुछ भी सार्थकता एव स गति नहीं हो सकती है। यदि किसी व्यक्ति की मनुष्य की आत्मा की प्रतिमा वहाँ नहीं है तब वह बिना व्यक्तित्व की प्रतिमा ही कैसी और किसकी ? वह बिना अस्तित्व की आकाश कुसुमवत होती है। इस प्रकार बिना व्यक्तित्व की प्रतिमा और जिनालय का होना निरर्थक होता है। अतः ऐसा प्रतीत होता है कि इन शास्वत स्थानों का उक्त जिनालयों और प्रतिमाओं से कोई भी प्रयोजन नहीं है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि मध्यकाल में किसी के द्वारा ऐसे पाठ कल्पित कर यत्र तत्र आगमों में जोड़े गये हैं।

इस प्रस ग में **णमोत्थुण** के पाठ के प्राचीन प्रतियों में भेद मिलना, उपासकदशा सूत्र एव व्यवहार सूत्र के चैत्य पाठ में प्रतिभेद मिलना, राजप्रश्नीय सूत्र में देवलोक गत सिद्धायतन में वर्तमान चौबीसी के प्रथम और अ तिम तीर्थंकर का नाम मिलना, प्रत्येक सामानिक आदि देवों के सुधर्मा सभाओं के निकट सिद्धायतन में १०८ प्रतिमाओं का होना(***ये १०८ व्यक्ति कौन है जिन्हें जिन कहा जाय और देव इनकी पूजा करे***

इनमें एक का भी नाम नहीं कहा गया है बिना नाम के ये जिन कब कैसे हुए थे) जम्बू वृक्ष और कूट शाल्मली वृक्ष की शाखाओं के बीच सिद्धायतन और उसके चौतरफ मालिक देव के चार भवन होना, मेरुचूलिका के ऊपर सिद्धायतन कहना और उसी पाठ में कहीं भवन शब्द का भी प्राप्त होना इत्यादि अनेक प्रमाण उक्त अनुमान के सहयोगी है। विशेष जानकारी के लिये इस निबंध की पुस्तको में देखें।

दोनों वृक्ष के वनों की दिशाओं में भवन है, विदिशाओं में पुष्करणियाँ है। जब मेरु के चारों वन का वर्णन भी ऐसा ही भवन, पुष्करणियों और कूटों वाला है तो वहाँ सिद्धायतन कैसे हो सकता है। जो प ड़कवन के भलावण युक्त स क्षिप्त पाठ में भवन रूप में उपलब्ध है।

भवन सर्वत्र लम्बाई से आधे चौड़े कहे गये हैं अर्थात् लम्बे और चौकोन कहे गये है। जब कि सिद्धायतन अन्य सूत्रों में और इस सूत्र में वर्षधर पर्वत आदि सभी पर्वतों पर गोल कहे गये हैं। फिर भी भद्रशाल आदि चारों वनों में चौकोन है जम्बूवृक्ष के प्रकरण में भी चौकोन है। इससे भी स्पष्ट है कि वास्तव में ये भवन है इन्हें ही पाठ परिवर्तन कर सिद्धायतन कर दिया गया है। जब कि इनके लम्बाई चौड़ाई का वर्णन भवन होने के पाठ को सिद्ध करता है। जो प ड़क वन के स क्षिप्त पाठ से भी पुष्ट होता है।

इस प्रकार यह प्रामाणित होता है कि कहीं गोलाकार कूटों कों सिद्धायतन बना दिया गया है और कहीं लम्बे चौकोन भवनों को भी सिद्धायतन कर दिया गया है और कहीं बिना मालिकी के नये कूट कर दिये गये हैं। अतः सिद्धायतन सम्बन्धी ये सूत्रगत सारे पाठ प्रक्षिप्तिकरण की विकृतियों से सूत्रों में प्रविष्ट है ऐसा फलितार्थ निकलता है।

निबंध-७१

ज्योतिष मंडल संबंधी ज्ञान

जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र वक्षस्कार-७ :-

इसमें चन्द्र, सूर्य आदि ज्योतिष म ड़ल स ब धी कुछ विषयों का स क्षेप में कथन किया गया है। जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र होने से जम्बूद्वीप स ब धी विविध वर्णन किये गये है तो जम्बूद्वीप के ऊपर परिभ्रमण करने वाले सूर्य, चन्द्रादि स ब धी कुछ जानकारी दी गई है। विशेष जानकारी आगे के उपा गसूत्र में अर्थात् ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति शास्त्र में दी गई है। तथापि यहाँ इस स क्षिप्त

पोइ ट रूप में जानकारी दी जा रही है- **(१)** ज बूद्वीप की अ तिम सीमा के १८० योजन में सूर्य के ६५ म ड़ल है, आगे लवण समुद्र की सीमा के ३३० योजन में सूर्य के ११९ म ड़ल है। यों अपने जम्बूद्वीप के सूर्य के भ्रमण करने के कुल १८४ म ड़ल है। सब द्वीप समुद्रों से अत्य त छोटा होने से एव इसी ज बूद्वीप के मेरु के सभी सूर्य आदि परिक्रमा लगाते होने से इस द्वीप के सूर्य के म ड़ल लवण समुद्र की सीमा के ऊपर आये हैं। आगे प्रत्येक द्वीपसमुद्र के सूर्यों के म ड़ल अपने अपने द्वीप या समुद्र की सीमा में ही ऊपर भ्रमण करते हैं या स्थिर रहते हैं। **(२)** मेरु पर्वत से सूर्य का पहला म ड़ल ४४८२० योजन दूर है और अ तिम १८४वाँ म ड़ल ४५३३० योजन दूर है। **(३)** च द्र के कुल १५ म ड़ल है जिसमें से ५ म ड़ल जम्बू द्वीप की सीमा के ऊपर है, शेष १० म ड़ल लवण समुद्र की सीमा के ऊपर है।

(४) चन्द्र म ड़लों का आयाम विष्क भ, मुहूर्तगति, चक्षुस्पर्श :

मंडल	आयाम विष्कंभ	परिधि	मुहूर्तगति	चक्षुस्पर्श
आभ्यंतर पहला	९९६४०	३१५०८९	५०७३ $\frac{७७४४}{१३७२५}$	४७२६३ $\frac{२१}{६१}$
आभ्यंतर से दूसरा	९९७१२ $\frac{५१}{६१}$, $\frac{१}{७}$	३१५३१९	५०७७ $\frac{३६७४}{१३७२५}$	
आभ्यंतर से तीसरा	९९७८५ $\frac{४१}{६१}$, $\frac{२}{७}$	३१५५४९	५०८० $\frac{१३३१६}{१३७२५}$	
बाह्य पहला	१००६६०	३१८३१५	५१५२ $\frac{६९९०}{१३७२५}$	३१८३१
बाह्य से दूसरा	१००५८७ $\frac{९}{६१}$, $\frac{६}{७}$	३१८०८५	५१२१ $\frac{११६०}{१३७२५}$	
बाह्य से तीसरा	१००५१४ $\frac{१९}{६१}$, $\frac{५}{७}$	३१७८५५	५११८ $\frac{१४०५}{१३७२५}$	

नोट- एक चन्द्रम ड़ल का दूसरे चन्द्र म ड़ल से अ तर ३६-२५/६१,४/७ योजन है। इससे दुगुना ७२-५१/६१,१/७ विष्क भ बढ़ता है। इससे तीन गुणी साधिक परिधि अधिक अधिक होती है। मुहूर्त गति प्रति म ड़ल में बढ ती है =३-९६५५/१३७२५। प्रतिम ड़ल में परिधि बढ़ती है=२३० योजन। **(५)** नक्षत्र के आठ म ड़ल में से जम्बूद्वीप में-२, लवण समुद्र में-६। **(६)** नक्षत्र की पहले म ड़ल में मुहुर्त गति-५२६५-१८२६३/२१९६० योजन है। नक्षत्र की अ तिम म ड़ल में मुहुर्त गति ५३१९-१६३६५/२१९६० योजन है। **(७)** चन्द्र एक मुहूर्त में म ड़ल पार करता है १७६८/१०९८००

भाग । सूर्य एक मुहूर्त में म ड़ल पार करता है १८३०/१०९८०० भाग । नक्षत्र एक मुहूर्त में म ड़ल पार करता है १८३५/१०९८०० भाग ।

(८) बृहस्पति महाग्रह १२ वर्षों में सभी नक्षत्रों के साथ योग समापन करता है । शनिश्चरमहाग्रह ३० वर्षों में सभी नक्षत्रों के साथ योग समापन करता है ।

(९) करण११ होते हैं, यथा-(१) बव (२) बालव (३) कौलव (४) स्त्रीविलोचन (५) गरादि (६) वणिज (७) विष्टि (८) शकुनि (९) चतुष्पद (१०) नाग (११) कि स्तुघ्न ।

सुदी	दिन में	रात्रि में	वदी	दिन में	रात्रि में
१	कि स्तुघ्न	बव	१	बालव	कौलव
२	बालव	कौलव	२	स्त्रीविलोचन	गरादि
३	स्त्रीविलोचन	गरादि	३	वणिज	विष्टि
४	वणिज	विष्टि	४	बव	बालव
५	बव	बालव	५	कौलव	स्त्रीविलोचन
६	कौलव	स्त्रीविलोचन	६	गरादि	वणिज
७	गरादि	वणिज	७	विष्टि	बव
८	विष्टि	बव	८	बालव	कौलव
९	बालव	कौलव	९	स्त्रीविलोचन	गरादि
१०	स्त्रीविलोचन	गरादि	१०	वणिज	विष्टि
११	वणिज	विष्टि	११	बव	बालव
१२	बव	बालव	१२	कौलव	स्त्रीविलोचन
१३	कौलव	स्त्रीविलोचन	१३	गरादि	वणिज
१४	गरादि	वणिज	१४	विष्टि	शकुनि
१५	विष्टि	बव	१५	चतुष्पद	नाग

नोट-वदी चौदस रात में, अमावस को दिन में और रात्रि में तथा सुदी एकम को दिन में क्रमशः शकुनि, चतुष्पद, नाग और कि स्तुघ्न ये चार करण स्थिर रहते हैं। शेष सात क्रमशः चार्ट के अनुसार बदलते रहते हैं।

(१०) चन्द्र, चन्द्र, अभिवर्द्धित, चन्द्र, अभिवर्द्धित ये पाँच स वत्सर का युग

होता है । ये स वत्सर चन्द्र से प्रारम्भ होने वाले है । अयन दो है दक्षिणायन उत्तरायन । इनमें प्रथम दक्षिणायन होता है । पक्ष दो होते हैं- कृष्ण और शुक्ल । इनमें कृष्ण पक्ष पहले होता है । इसी प्रकार करणों में बालव, नक्षत्रों में अभिजित, अहोरात्र में दिन और मुहूर्तों में रौद्र मुहुर्त ये सब पहले होते हैं ।

(११) एक युग में १० अयन, ३० ऋतु, ६० महिने, १२० पक्ष, १८३० दिन, ५४९०० मुहूर्त होते हैं ।

(१२) नक्षत्र स ब धी वर्णन दस द्वारों से है- (१) प्रमर्द आदि योग (२) देवता (३) तारा (४) गौत्र (५) स स्थान (६) चन्द्र सूर्य योग (७) कुल (८) पूनम अमावस में कुल (९) पूनम अमावस के कुलों में महिनों का सम्बन्ध (१०) रात्रिवाहक । इन दसों द्वारों का वर्णन ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति सूत्र में हैं।

(१३) आषाढ़ महिने के अ तिम दिन दो पाँव की पोरिषि छाया होती है अर्थात् पाँव के घुटने पर्यन्त की छाया दो पा व जितनी होती है । श्रावण महिने के अ तिम दिन दो पाँव और चार अ गुल छाया होती है, तब पोरिषी आती है । इस तरह प्रति मास ४ अ गुल बढ़ाते हुए पौष तक ६ महिनों में २४ अ गुल=२ पा व छाया बढ़ जाती है अर्थात् २+२=४ पाँव जितनी छाया होती है तब पोरिषी आती है । यह घुटने तक के पाँव की छाया के माप से पोरिसी जानने का माप बताया गया है ।

(१४) सोलह द्वार इस प्रकार है-(१) तारा एव सूर्य चन्द्र की अल्प या समऋद्धि स्थिति (२) चन्द्र का परिवार (३) मेरु से दूरी (४) लोका त से दूरी (५) समभूमि से दूरी (६) सबसे ऊपर नीचे आदि (७) विमानों का स स्थान (८) ज्योतिषी देवों की स ख्या (९) वाहक देव (१०) शीघ्र म द गति (११) अल्पर्द्धिक महर्द्धिक (१२) ताराओं का परस्पर अ तर (१३) अग्रमहिषियाँ (१४) परिषद और भोग (१५) आयुष्य (१६) अल्पबहुत्व। इन सभी द्वारों का वर्णन ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति सूत्र में हैं ।

निबंध-७२

जंबुद्वीप में तीर्थंकर की संख्या

जम्बूद्वीप में तीर्थंकर आदि की स ख्या :-

नाम	जघन्य	उत्कृष्ट	नाम	जघन्य	उत्कृष्ट
तीर्थंकर	४	३४	निधि रत्न अस्तित्व	–	३०६
चक्रवर्ती	४	३०	निधि रत्न उपभोग	३६	२७०
बलदेव	४	३०	प चेन्द्रिय रत्न	२८	२१०
वासुदेव	४	३०	एकेन्द्रिय रत्न	२८	२१०

निबंध-७३

जंबूद्वीप ऊँचा नीचा ऊँडा आदि

इस प्रकार यह जम्बूद्वीप एक लाख योजन लम्बा चौड़ा गोल है। ३,१६,२२७ योजन ३ कोश १२८ धनुष १३-१/२ अ गुल साधिक परिधि है। एक हजार योजन यह ऊँड़ा है (२४वीं २५वीं विजय की अपेक्षा)। ९९००० योजन साधिक(मेरु की अपेक्षा)ऊँचा है। एक लाख योजन साधिक सर्वाग्र है।

वर्ण, गध, रस, स्पर्श आदि की पर्ययो की अपेक्षा अशाश्वत है और अस्तित्व की अपेक्षा सदा था और सदा रहेगा, अतः शास्वत है। यह जम्बूद्वीप पृथ्वी पानी जीव एव पुद्गल परिणाम रुप है। सभी जीव यहाँ पाँच स्थावर रुप में अन त बार अथवा अनेक बार उत्पन्न हो चुके हैं। इस द्वीप में अनेक जम्बू वृक्ष है, जम्बू वन है वनख ड़ है। जम्बू सुदर्शन नामक शाश्वत वृक्ष है। जिस पर ज बूद्वीप का स्वामी अनादृत देव रहता है, इस कारण इस द्वीप का ज बूद्वीप यह शाश्वत नाम है।

निबंध-७४

सिद्धायतनों की प्रक्षेप प्रवृति

किसी भी शाश्वत स्थानों के मालिक देव का उस क्षेत्र के योग्य स्थान में निवास होता है। सभी द्रहों के अधिपति देवी का उसके मध्य स्थानीय पद्म पर भवन होता है,वहाँ उनका मुख्य निवास स्थान होता है। कूटों के एव गोल पर्वतों के मालिक देव उनके शिखरस्थ स्थान पर रहते हैं। वहीं उनका भवन होता है। द्रहों के अनुसार शाश्वत वृक्षों के मालिक देव का भवन उसके मध्य स्थान में अर्थात् चारों शाखाओं के बीच में होना चाहिये अर्थात् जम्बू सुदर्शन और पूरे जम्बूद्वीप के मालिक देव का निवास

स्थान भी जम्बू सुदर्शन वृक्ष की चार शाखाओं का मध्य स्थान ही होना चाहिये। उसी प्रकार कूट शाल्मली वृक्ष के मालिक देव का भी निवास स्थान चार शाखाओं का मध्य स्थान होना चाहिये। गोल पर्वतों के समान मेरु पर्वत के अधिपति देव का स्थान मेरु की चूलिका पर शीर्षस्थ स्थान पर होना चाहिये। किन्तु सिद्धायतन के पाठ प्रक्षेप की धुन वालों ने अपने प्रक्षेप परिवर्तन के सर्व सत्ता के नशे में म दर मेरु पर्वत के मालिक देव का निवास स्थान ही गायब कर दिया है। उपलब्ध मेरु पर्वत के विस्तृत वर्णन में कहीं भी मेरु पर्वत के स्वामी अधिपति देव का भवन अवशेष नहीं रहा है। कोई भी विद्वान खोज कर देखना चाहे तो देख सकता है।

मेरु के चारों वनों की पूर्व आदि चारों दिशाओं में १६ सिद्धायतन कह दिये है। विदिशाओं में इन्द्रों के प्रासादावत सक कहे हैं। भद्रशाल वन के आठ दिशा हस्ति कूटों पर आठ अन्य देव कहे हैं। न दनवन के आठ कूटों पर देवियें हैं। बलकूट पर बलदेव है। मेरु चूलिका पर सिद्धायतन कह दिया है। अब आप देखें कि बेचारे म दर मेरु के स्वामी देव म दर के लिये एक भी स्थान नहीं बचाया है। वास्तव में मेरु की चूलिका ही उसके मालिक देव का निवास स्थान आगम में था वहाँ हमारे कुछ प्रक्षेप नशे के महा-रथियों ने सिद्धायतन ला पटका है। यह प्रक्षेपकारों का स्पष्ट ही भ ड़ाफोड़ हो रहा है। इस तरह इन महारथियों ने जम्बूद्वीप के मालिक देव एव जम्बू वृक्ष के अधिपति देव के भी वृक्ष के मध्य केन्द्र स्थान पर सिद्धायतन ला रखा है और समूचे जम्बूद्वीप के मालिक देव का भी निवास स्थान केन्द्र स्थल छुड़वा दिया है।

जैन सिद्धा त में इस प्रकार के प्रक्षेप करने वाले ऐसे महान धूर्त एव जिन शासन के महान आगम चोर भी मध्यकाल में हुए हैं। जिन्होंने सत्य आगमों को भी विकृतियों से भरने का प्रयत्न किया है। यह जैन धर्म में मूर्तिपूजा मानने एव मनवाने का प्रयत्न करने वालों की मोहा ध दशा का प्रतिफल है। धर्मी बनकर भी ऐसे महापाप के कृत्य करने वाले लाख लाख धिक्कार के पात्र हैं। ऐसे कृत्य करने वाले वे स्वय डूबने वाले एव औरों को डुबाने वाले जिन शासन पाकर भी दुर्गति के भागी बने हो तो इसमें कोई स देह नहीं है।

सार- शाश्वत स्थानों में वर्णित सिद्धायतन अनावश्यक है एव कल्पित

ही फलित होते हैं। अतः सिद्धायतन वर्णित वे कई स्थान तो रिक्त हैं एव कई स्थान मालिक देव के भवन से युक्त हैं। यथा दीर्घ वैताढ्य, वर्षधर, वक्षस्कार आदि पर्वत के वे सिद्धायतन के स्थान रिक्तता को प्राप्त होते हैं। स्वत त्र कूट, वृतपर्वत के शिखर, पुष्करणियों के मध्य स्थान, वृक्षों के मध्य स्थान, मेरु चूलिका आदि के स्थान, मालिक देव के निवास भवन को प्राप्त होते हैं।

शाश्वत स्थानों में किसी व्यक्ति या सिद्ध का स ब ध स्थापित हो ही नहीं सकता है। अतः शाश्वत स्थानों का सिद्धायतन, जिनालय या मूर्ति-प्रतिमा से स ब ध जोड़ना व्यर्थ का प्रयत्न एव अरण्य प्रलाप के समान निरर्थक होता है।

निबंध-७५

सूर्यप्रज्ञप्ति के प्रथम सूत्र का सही अर्थ

यहाँ सूत्र के प्रार भ में उत्थानिका के बाद गौतम स्वामी की पृच्छा रूप में पाँच गाथाओं द्वारा २० प्रश्न किये गये हैं, वे ही २० पाहुड़ों के मुख्य विषय है। तदन तर गाथा-६ से ८ में प्रथम पाहुड़ के प्रतिपाहुड़ों के आद्य या मुख्य विषय सूचित किये गये हैं। फिर गाथा ९ से ११ तक में दूसरे पाहुड़ के प्रति पाहुड़ों के विषय निर्दिष्ट है। उसके बाद गाथा-१२ से १५ तक में दसवें पाहुड़ के २२ प्रतिपाहुड़ों के विषय दर्शाये गये हैं। फिर प्रथम पाहुड़ के प्रति पाहुड़ का विषय प्रार भ किया गया है।

तदनुसार प्रथम पाहुड़ का मुख्य विषय है- कितने म ड़लों में किस प्रकार सूर्य का गमनागमन। फिर उसके पहले प्रति प्राभृत का आद्य विषय है- मुहूर्तों की न्यूनाधिकता अर्थात् सूर्यमास, ऋतुमास, च द्रमास और नक्षत्र मास में मुहूर्त स ख्या हीनाधिक होती है। उसे दर्शाने वाला प्रथम सूत्र इस प्रकार है- **ता कह ते वुड्ढो वुड्ढी मुहुत्ताण आहिएत्ति वए ज्जा ? ता एवामेव वुड्ढोवुड्ढी मुहुत्ताण आहिएत्ति वएज्जा, त जहा- ता सूर मासे णव पण्णरस्स मुहुत्तसए आहिएत्ति वएज्जा। ता उउ मासे नव मुहुत्त सए आहिएत्ति वएज्जा। ता च दमासे अट्ठ प चासीए मुहुत्त सए, तीस च बावट्ठी भागे मुहुत्तस्स आहिएत्ति वएज्जा। ता णक्खत्त मासे अट्ठ एगूणवीसे मुहुत्तसए सतावीस च सत्तट्ठि भागे मुहुत्तस्स आहिएत्ति वएज्जा।**

इस सूत्र का तात्पर्य :- एक युग में १८३० दिन x एक दिन में मुहूर्त ३०=एक युग में ५४९०० मुहूर्त। १ युग में- सूर्यमास-६०, नक्षत्रमास-६७, च द्रमास-६२ और ऋतुमास-६१ होते हैं। युग के मुहुर्तों में प्रत्येक के युगमासों का भाग देने पर एक-एक मास के मुहुर्त निकल जाते हैं। मूल प्रश्न यही है कि सूर्य आदि प्रत्येक के मास में मुहूर्त हीनाधिक कितने होते हैं? उत्तर में नक्षत्र, सूर्य, चन्द्र और ऋतुमास की मुहूर्त स ख्या दर्शाई है उसमें कुछ हीनाधिकता है वह स्पष्ट है। इस प्रश्न का आशय सब की मासिक मुहुर्त स ख्या दर्शाकर उसमें होने वाली हीनाधिका स्पष्ट करना है। सबसे अधिक सूर्यमास के मुहुर्त है, उससे ऋतुमास के कम, उससे च द्रमास के कम, उससे नक्षत्र मास के कम, यों सबसे कम नक्षत्रमास के मुहूर्त है। सूत्र में उसी का पाठ अवशेष है, शेष तीन का पाठ कभी लिपिदोष से छूट गया, जिससे सूत्र में प्रश्न का उत्तर अस्पष्ट लगता है। प्रस्तुत में हमने पूरा मूलपाठ दिया है। जिससे इस सूत्र के विषय में कोई स शय नहीं रहता है।

सूत्रानुसार एक सूर्य मास में मुहूर्त स ख्या-९१५ है। ऋतुमास में मुहूर्त स ख्या-९०० है। चन्द्र मास में मुहूर्त स ख्या-८८५ है और नक्षत्रमास में मुहूर्त स ख्या-८१९ है। यह सभी स ख्या परस्पर हीनाधिक है किन्तु समान नहीं है। सूत्र में प्रश्न है- मुहूर्तों की हीनाधिकता किस प्रकार है ? उत्तर है सूर्य आदि ४ के मासों की मुहूर्त स ख्या इस प्रकार हीनाधिक है।

निबंध-७६

सूर्य के मंडलों की संख्या और उसका भ्रमण

सूर्य के १८४ म ड़ल है। पहला म ड़ल मेरु पर्वत की तरफ अ दर में है और १८४वाँ म ड़ल बाहर की तरफ लवण समुद्र की सीमा के ऊपर है। एक वर्ष में २ अयन होते है वे ६-६ महीने के होते हैं। सूर्य बाहर जाते प्रथम दिन दूसरे म ड़ल से परिक्रमा प्रारम्भ कर १८४ वें म ड़ल के १८३ वें दिन एक अयन की परिक्रमा पूर्ण करता है। फिर वापिस अ दर तरफ आता है जिसमें पहले दिन १८३वें म ड़ल में चलता है और १८३वें दिन अ दर पहुँचकर प्रथम म ड़ल में चलता है तब एक वर्ष सूर्य का १८३+१८३=३६६ दिन का पूरा होता है।

इस तरह सूर्य एक वर्ष में प्रथम और १८४वें म ड़ल में एक बार चलता है और शेष २ से १८३वें म डल में दो बार चलता है जिससे

१+(१८२x२)+१=३६६ म ड़ल परिक्रमा एक वर्ष में पूर्ण करता है। यों १८४वें म ड़ल में वह एक बार १८३वें दिन चलता है और प्रथम म ड़ल में वह एक बार ३६६वें दिन चलता है।

पहले दिन सूर्य दूसरे म ड़ल में और १८२वें दिन १८३वें म ड़ल में प्रथमबार चलता है। फिर १८४वें दिन पुनः १८३ वें म ड़ल में चलता है (१८३वें दिन १८४वें म ड़ल में होने से)और ३६५ वें दिन पुनः दूसरे म ड़ल में चलता है। (३६६वें दिन प्रथम म ड़ल में होने से) इस प्रकार बीच के १८२ म ड़ल में जाते और आते दोनों बार चलता है। १८४वें म ड़ल में बाहर जाते समय अ तिम दिन एक बार चलता है और पहले म ड़ल में अ दर आते समय अ तिम दिन एक बार चलता है।

इस प्रकार सूर्य वर्ष का प्रारम्भ दूसरे म ड़ल से करके वर्ष का अ त ३६६ वें दिन प्रथम म ड़ल में पूर्ण करता है और प्रथम अयन को अर्थात् छट्ठे महीने को पूर्ण १८४वें म ड़ल में करता है।

सार–सूर्य प्रथम अयन दूसरे म ड़ल से प्रारम्भ करके १८४वें म ड़ल में पूर्ण करता है और दूसरा अयन १८३ वें म ड़ल में प्रारम्भ करके प्रथम म ड़ल में पूर्ण करता है। इस तरह प्रत्येक अपेक्षा से स्पष्ट है कि सूर्य पहले और अ तिम म ड़ल में वर्ष में एक बार और शेष बीच के १८२ म ड़ल में आते और जाते यों दो बार एक वर्ष में चलता है।

निबंध–७७

सूर्य वर्ष का प्रारंभ दिन

सूर्य वर्ष का प्रथम दिन १४ जून होता है और दूसरे अयन का प्रथम दिन १४ जनवरी होता है। सूर्य की परिक्रमा का वर्ष १३ जून को पूरा होता है और सूर्य का प्रथम अयन १३ जनवरी को पूरा होता है। सूर्य वर्ष के प्रारम्भ और अ तिम दिन तारीख से निश्चित चलते हैं। उसकी अपेक्षा तिथि में और महीने में कुछ-कुछ अ तर रहता है अर्थात् १४ जून के लिये कोई भी तिथि सातम या एकम आदि हो सकती है। कभी आषाढ़ या जेठ मास १४ जून को हो सकता है। वदी पक्ष या सुदी पक्ष दोनों में से कोई भी १४ जून को हो सकता है। क्यों कि तिथि वाला वर्ष चन्द्र वर्ष है वह ३५५-५६ दिन का होता है जब कि सूर्य वर्ष ३६६ दिन का होता है। इसलिये तारीख और तिथि में फर्क चलता रहता है।

निबंध–७८

दो सूर्यों की दिन-रात करने की व्यवस्था

भारतीय सूर्य पूर्व दिशा को पार कर अपने पूर्वी केन्द्रस्थान से आगे दक्षिण की तरफ बढ़ता है तब दक्षिणी क्षेत्रों में सूर्योदय करता है। उस समय ऐरवतीय सूर्य पश्चिम दिशा पार कर अपने पश्चिमी केन्द्रस्थान से आगे उत्तर की तरफ बढ़ता है एव उत्तरी क्षेत्रों में सूर्योदय करता है। फिर ये दोनों सम्पूर्ण उत्तर दिशा और स पूर्ण दक्षिण दिशा साथ-साथ में पार करते हुए दोनों क्षेत्रों में दिन करते हैं।

जब ये सूर्य उत्तर दक्षिण को प्रकाशित कर वहाँ दिन करते हैं तब पूर्व पश्चिमी क्षेत्रों में(महाविदेह में) रात्रि करते हैं। जब उत्तर दिशा को पार करने वाला ऐरवतीय सूर्य उत्तर पूर्व में आता है और फिर पूर्वी दिशा को प्रकाशित करता है। तभी भारतीय सूर्य दक्षिण दिशा को पार कर दक्षिण पश्चिम में आता है और फिर पश्चिमी दिशा को प्रकाशित करता है। इस समय दोनों सूर्य पूर्व पश्चिम महाविदेह में दिन करते है और दक्षिणी उत्तरी क्षेत्रों में रात्रि करते है।

इस प्रकार ये दोनों सूर्य दो क्षेत्रों को प्रकाशित करते हुए और दो क्षेत्रों में रात्रि करते हुए पूरा म ड़ल परिभ्रमण करते है। इसीलिये भरत-ऐरवत क्षेत्रों में दिन होता है तब दोनों महाविदेह में रात्रि होती है और जब दोनों महाविदेह क्षेत्र में दिन होता है तब भरत ऐरवत क्षेत्र में रात्रि होती है। ये रात्रि और दिन सूर्य के अभाव में और सद्भाव में होते है। वास्तव में इन सूर्यों के अभाव और सद्भाव से स्वतः रात्रि और दिवस तथा सूर्योदय सूर्यास्त होते जाते हैं।

इस विषय में भी मिथ्या मान्यताएँ है- (१) सूर्य सुबह पूर्व में किरण समूह रूप में उत्पन्न होकर शाम को पश्चिम में नष्ट हो जाता है। (२) पृथ्वी में से उत्पन्न होकर पृथ्वी में शाम को नष्ट हो जाता है। (३) पानी में उत्पन्न होकर शाम को पानी में नष्ट हो जाता है। (४) अथवा शाम को पृथ्वी आदि में प्रवेश करके नीचे जला जाता है। फिर नीचे लोक को प्रकाशित कर पुनः पूर्व में उदित होकर ऊपर आता है एव पुनः पूर्वदिशा में उदित हो जाता है। (५) कोई ज बूद्वीप के दो विभाग कल्पित करते हुए बताते है कि सूर्य पूर्व में ऊपर उदित होकर शाम को पश्चिम में अस्त हो

जाता है तब दूसरे विभाग में उदय हो जाता है। वहाँ दिन भर रहकर अस्त हो जाता है और पुनः प्रथम विभाग में उदित हो जाता है। इत्यादि ये सभी कथन भ्रमित एव अपूर्ण है।

निबंध-७९

पोरुषी छाया का मतलब तथा पाठ शुद्धि

पोरिषी छाया का मतलब है जो चीज जितनी है उसकी उतनी ही छाया होना वह(एक)पोरिषी(अर्थात् पुरुष की पुरुष प्रमाण) छाया होती है। यह छाया का माप युग के आदि समय अर्थात् श्रावण वदी एकम की अपेक्षा यहाँ कहा गया है । वह इस प्रकार है-

(१)	अपार्ध पोरिषी(आधी)छाया	तीसरा भाग दिवस ६ मुहूर्त बीतने पर
(२)	पोरिषी(पुरुष प्रमाण)छाया	चौथाई दिवस ४-१/२ मुहूर्त बीतने पर होती है उतना ही दिवस शेष रहने पर पोरिषी छाया होती है ।
(३)	ड़ेढ़ पोरिषी(ड़ेढ़गुणी)छाया	५वाँ भाग ३ मुहूर्त ३० मिनट दिन बीतने पर
(४)	दो पोरिषी छाया(दुगुणी)	छट्ठा भाग दिन ३ मुहूर्त बीतने पर ।
(५)	ढ़ाई पोरिषी छाया(ढ़ाईगुणी)	७वाँ भाग दिन २ मुहूर्त २७ मिनट बीतने पर
(६)	५८-१/२ पोरिषी(५८-१/२) गुणी)छाया	१९००वाँ भाग २७-१/४ सेक ड़ दिवस बीतने पर ।
(७)	उनसाठपोरिषी(५९गुणी)छाया	२२०००वाँ भाग २-१/३सेक ड़ दिन बीतने पर
(८)	साधिक उनसाठपोरिषी छाया	सूर्योदय और सूर्यास्त का प्रार भिक प्रथम समय होता है अर्थात् दिवस का कोई भीभाग व्यतीत नहीं होता है ।

प्रश्न : इस प्राभृत के मूलपाठ में कुछ कुछ लिपि दोष या अपूर्णता है ?

उत्तर- इस पाहुड़(प्राभृत) का विषय एव सूत्र सहज समझ में नहीं आने योग्य होने से आगम प्रकाशन समिति ब्यावर के सूर्यप्रज्ञप्ति के स पादन करने वाले विद्वान श्रमण ने मूल पाठ पर एव रचना सूत्रों पर श का खड़ी करके अस गत होने की कल्पना प्रगट की है। वास्तव में सूत्रपाठ की एव रचना की ऐसी कोई स्थिति नहीं है कि चित् लिपि दोष से प्रति भेदमात्र हो सकता है। जिसका समाधान प्रतियों को या टीका को देखने से हो सकता है किन्तु ऐसा लगता है कि स पादक टीका देखने पर भी इन सूत्रों का सही

आशय जान नहीं पाये हैं। ऊपर उन सूत्रों का स क्षिप्त सही-स गत अर्थ दे दिया गया है। जिसे अच्छी तरह समझ लेने के बाद कोई स शय नहीं रह सकता है।

इसी प्रकार उक्त स पादक महोदय ने टिप्पणों में जगह जगह सूक्ष्म विषयों का, सूत्रों का, आशय नहीं समझ सकने के कारण ऐसे ही अनेक स शय एव दोष उपस्थित किये है जो वास्तव में प्रायः व्यक्तिगत स देह मात्र है। सूत्र में ऐसा कुछ दूषण अधिका शतः नहीं है। परस्पर अन्य सूत्रों से विरुद्ध कथन जाने की कल्पना भी स पादक की अपनी व्यक्तिगत समझ भ्रम के कारण है। उस स पादन में प्रकाशन समिति ने मूल पाठ का सरल अर्थ भी नहीं दिया है। यदि सही अर्थ दिया होता तो वैसे स देह स्थल स्वतः समाधित हो जाते ।

निबंध-८०

तिथियों की वध-घट

ऋतु- (१) प्रावृट (२) वर्षा (३) शरद (४) हेम त (५) बस त (६) ग्रीष्म ये छ ऋतुएँ ५९-५९ दिन की होती है।

चन्द्र स वत्सर में ६ तिथियाँ घटती है- (१) तीसरे (२) सातवें (३) ग्यारहवें (४) पन्द्रहवें (५) उन्नीसवें (६) तेवीसवें पक्ष में यों चन्द्र ऋतु के ५९ दिन है।

सूर्य स वत्सर में ६ तिथियाँ बढ़ती है- चौथे, आठवें, बारहवें, सोलहवें, बीसवें, चौवीसवें पक्ष में। यों सूर्य ऋतु के ६१ दिन होते हैं।

इस कारण चन्द्र स वत्सर के दो महिने ५९ दिन के होते है और सूर्य स वत्सर के दो महिने ६१ दिन के होते हैं। जिससे चन्द्र स वत्सर ३५४ दिन का और सूर्य स वत्सर ३६६ दिन का होता है। पाँच चन्द्र स वत्सर १७७० दिन के और पाँच सूर्य स वत्सर १८३० दिन के होते है। पाँच चन्द्र स वत्सर में ६० दिन कम होते है। उसे ही मिलाने के लिये पाँच वर्ष में दो महीने बढ़ाये जाते हैं।

निबंध-८१

प्राभृत १८,१९,२० में कहे विशेष तत्त्व

समभूमि से सूर्य विमान ८०० योजन ऊपर है। ८८० योजन

ऊँचाई पर च द्र है। ग्रह नक्षत्र तारा विभिन्न ऊँचाई पर है। अतः उनका अलग अलग कथन नहीं करके समुच्चय कथन है कि समभूमि से ७९० योजन से लेकर ९०० योजन ऊँचाई तक सर्वत्र तारा विमान है तथा ग्रह नक्षत्र भी अलग-अलग ऊँचाई पर है, उनका खुलाशा नहीं किया गया है।

इस विषय में २५ मान्यताएँ है- कोई सूर्य को १००० योजन ऊँचा बताते है यों दो से २५-२५॥ हजार योजन ऊँचाई कहते है वे सभी असमीचीन मान्यताएँ है।

तारा विमान सूर्य से ऊँचे-नीचे, अल्पर्द्धि-समऋद्धि :-

चन्द्र-सूर्य से अधिक ऊँचाई पर भी ताराविमान है, नीचाई पर भी है। समकक्ष भी तारा विमान है। उन तारा विमान में रहने वाले देव सूर्य विमान वाले देवों से समऋद्धि भी हो सकते और अल्पर्द्धि होते है अधिक ऋद्धि वाले नहीं होते। तारा विमानवासी देवों की उत्कृष्ट स्थिति **पाव पल्योपम** की है और सूर्य विमानवासी सामान्य देवों की स्थिति भी पाव पल्योपम की है। अतः स्थिति की अपेक्षा समऋद्धि कहे गये हैं। देवों में ऋद्धि की न्यूनाधिकता में स्थिति का ही मुख्य कारण होता है। यदि स्थिति समान हो तो चन्द्र महर्द्धिक है उससे सूर्य अल्पर्द्धिक है। उससे ग्रह नक्षत्र और तारे क्रमशः अल्पर्द्धिक है।

सूर्य चन्द्र का आपसी स ब ध :-

बलदेव वासुदेव की तरह च द्र सूर्य दोनों तुल्य होते हैं। दोनों की राज्यऋद्धि एक ही होती है उसे बलदेव की कहो या वासुदेव की, दोनों का सम्मिलित परिवार है। २८ नक्षत्र, ८८ महाग्रह, ६६९७५ कोड़ा- कोड़ी तारे, यह एक चन्द्र सूर्य का परिवार है।

मेरुपर्वत से ज्योतिषीकी दूरी :-

मेरुपर्वत १०००० योजन जाड़ा है उसके चौतरफ ११२१ योजन दूरी तक कोई भी तारे आदि नहीं होते हैं। उतनी दूरी छोड़ने बाद ही तारे आदि होते है जो वहीं पर से परिक्रमा लगाते है।

लोकांत से लोक के अ दर ११११ योजन तक ज्योतिषी विमान नहीं होते हैं।

(१) अभिजित नक्षत्र सबसे अधिक मेरु के निकट आभ्य तर म ड़ल में है। (२) मूल नक्षत्र सबसे अधिक बाह्यक्षेत्र तक लवण समुद्र में है।

(३) सबसे अधिक ऊपर स्वाति नक्षत्र है। (४) भरणी नक्षत्र समस्त नक्षत्रों से नीचे है।

ज्योतिषी विमानों का स स्थान

च द्र सूर्य आदि सभी के विमान अर्ध कपीठ के फल जैसा होता है, नीचे समतल होता है ऊपर गोल गुम्बज के सदृश होता है। सर्व स्फटिक रत्नमय होते हैं। तपनीय स्वर्ण की बालुरेत विमान में फैली हुई होती है।

विमान की ल बाई चौड़ाई एव देवों की स्थिति :-

विमान की ल बाई चौड़ाई एव देवों की स्थिति इस प्रकार है-

नाम	आयाम विष्क भ	बाहल्य	वाहकदेव	स्थिति		देवी की उत्कृष्ट
				जघन्य	उत्कृष्ट	
चद्र	$\frac{५६}{६१}$योo	$\frac{२८}{६१}$	१६०००	$\frac{१}{४}$पल०	१पल १ला०वर्ष	$\frac{१}{२}$पल०५०ह०
सूर्य	$\frac{४८}{६१}$यो०	$\frac{२४}{६१}$	१६०००	$\frac{१}{४}$पल०	१पल १ह०वर्ष	$\frac{१}{२}$ पल०५००
ग्रह	२ कोस	१ कोस	८०००	$\frac{१}{४}$पल०	१पल	$\frac{१}{२}$ पल०
नक्षत्र	१ कोस	$\frac{१}{२}$कोस	४०००	$\frac{१}{४}$पल०	$\frac{१}{२}$पल०	$\frac{१}{४}$पल०सा०
तारा	$\frac{१}{२}$कोस	५०० ध०	२०००	$\frac{१}{८}$पल०	$\frac{१}{४}$पल०	$\frac{१}{८}$ पल०सा०

वाहकदेव :- विमान नीचे से सपाट सीधा होता है वहाँ बीच केन्द्र से ४ प क्तियाँ चार दिशाओं में होती है। हाथी, घोड़ा, बैल और सि ह ये चार आकार होते हैं, उसमें देव प्रविष्ट होकर चलते हैं। वे देव गतिरतिक होते हैं। वाहक देवों की स ख्या जो १६००० आदि कही गई है उसके चार विभाग जितने अर्थात् ४०००-४००० चारों दिशाओं में समझ लेना चाहिये। यों तो विमान स्वाभाविक ही अनादि से गति करते है, फिर भी देवों की औपचारिक व्यवस्था होती है।

ताराओं का आपसी अ तर:- स्वाभाविक अ तर जघन्य ५०० धनुष उत्कृष्ट २ कोष का होता है। मेरु पर्वत बीच में आने पर दोनों बाजु के ताराओं का अ तर १२२४२ योजन (१०००० + ११२१ + ११२१) होता है। निषध नील आदि पर्वतों के कूट बीच में हो जाने से २६६ योजन का (२५० + ८ + ८) अ तर ताराओं का आपस में हो जाता है। कूटों से तारा विमान ८-८ योजन दूर रहते हैं। मेरु से ११२१ योजन दूर रहते हैं। कूटों की चौड़ाई वहाँ २५० योजन की होती है।

नोट- च द्र सूर्य की देवी परिवार स ब धी वर्णन जीवाभिगम (प्रश्नोत्तर भाग-६) में है तथा उनके सुखोपभोग स ब धी वर्णन भगवती श.१२ उद्देशक-६ में (प्रश्नोत्तर भाग-३ में है।)

प्राभृत-१९ में विषय वर्णन :-

इसमें अनेक जानने योग्य सामान्य विशेष तत्त्व है, वे इस प्रकार है-

(१) जम्बूद्वीप में २ सूर्य २ चन्द्र ५६ नक्षत्र १७२ ग्रह १,३३,९५० कोटाकोटी तारे हैं। आगे प्रत्येक द्वीप समुद्र में अधिक अधिक स ख्या है जो जीवाभिगम सूत्र (प्रश्नोत्तर भाग-६) में देखें।

यहाँ इस विषय में १२ मान्यताएँ कही गई है उनमें यह बताया गया है कि सम्पूर्ण लोक में एक सूर्य चन्द्र प्रकाश करते है। इसी प्रकार ३,३-१/२,७,१०,१२,४२,७२,१४२,१७२,४२०००, ७२०००, चन्द्र सूर्य सम्पूर्ण लोक में होने की मान्यताएँ है किन्तु ये समीचीन (सही)नहीं है। सम्पूर्ण लोक में अस ख्य सूर्य, अस ख्य चन्द्र है और उन सभी का अपना परिवार भी है।

(२) नक्षत्र और तारे सदा एक म ड़ल में परिक्रमा लगाते हैं। अर्थात् ये म ड़ल नहीं बदलते हैं। सूर्य, चन्द्र, ग्रहों के म ड़ल बदलते रहते हैं। ये सभी अपने अपने म ड़ल में मेरु पर्वत की परिक्रमा लगाते हैं।

(३) ये सूर्य, चन्द्र आदि ऊँचाई की अपेक्षा जहाँ है वहीं रहते हैं नीचे ऊँचे नहीं होते हैं। उसी ऊँचाई में म ड़ल परिवर्तन करते हैं।

(४) इन चार (तारा को छोड़कर) ज्योतिषियों की गति विशेष से मनुष्यों के सुख दुःख का स योग वियोग होता है अर्थात् इनके निमित्त से सुख दुख के स योग का ज्ञान होता है।

(५) बाह्य से आभ्य तर म ड़ल में आते समय सूर्य का ताप क्षेत्र बढ़ता है बाहर जाते समय घटता है। चन्द्र के नीचे चार अ गुल दूर नित्य राहु का विमान चलता है। एक दिन में १/१५ भाग चन्द्र घटता बढ़ता है और ६२ भाग करने की अपेक्षा स्थूल दृष्टि से ४/६२ भाग प्रतिदिन बढ़ता घटता है।

(६) मनुष्य क्षेत्र में सूर्य चन्द्र आदि चलते हैं, उसके बाहर सभी चन्द्र सूर्य अपने स्थान पर स्थिर हैं।

(७) धातकी ख ड़ से आगे आगे के द्वीप समुद्रों में उसके अन तर पूर्व के द्वीप समुद्र के सूर्य स ख्या से तीन गुणे करके उस में अ दर के सभी द्वीप

समुद्रों के सूर्य की स ख्या जोड़ने पर जो राशि हो उतने सूर्य चन्द्र और उनके परिवार होते हैं।

(८) ढ़ाई द्वीप के बाहर चन्द्र के साथ अभिजित नक्षत्र का योग है और सूर्य के साथ पुष्य नक्षत्र का योग रहता है। इस प्रकार ही ये सदा स्थिर है। वहाँ प्रत्येक सूर्य-सूर्य का एव चन्द्र-चन्द्र का परस्पर अ तर १ लाख योजन है तथा सूर्य और चन्द्र का अ तर ५०००० योजन का है।

(९) ज्योतिषी के इन्द्र का विरह ६ महीने का हो सकता है उस समय ४-५ सामानिक मिलकर उस स्थान सम्बन्धी कार्य की पूर्ति करते हैं।

(१०) द्वीप समुद्रों का वर्णन जीवाभिगम सूत्र में देखें।

नोट- ग्रहों के म ड़ल आदि सम्बन्धी स्पष्टीकरण आगम में नहीं है अर्थात् इनके म ड़ल कितने है मुहूर्त गति कितनी है इत्यादि कोई भी वर्णन उपलब्ध नहीं होता है। उनके मंडल हैं। मंडल परिवर्तन भी सदा होता रहता है। गति परिवर्तन भी होती हैं परंतु उसका खुलाशा नहीं मिलता हैं। आकाश में देखने से भी विविध गति के रूप अनुभव होते हैं। अतः व्याख्याकारों ने **विचित्रागति ग्रहाणां** कह दिया हैं।

प्राभृत-२०में विषय निरूपण :-

इस प्राभृत में सूर्य, चन्द्र और राहु विमान स ब धी अनेक स्पष्टीकरण किये गये हैं। वे इस प्रकार है-

(१) चन्द्र सूर्य को कोई अजीव पुद्गल मात्र मानते हैं राहु को भी १५ प्रकार के काले पुद्गल मानते हैं और जीव भी मानते हैं। वास्तव में ये सभी विमान है और इनके स्वामी चन्द्र, सूर्य, राहु आदि महान ऋद्धिसम्पन्न वैक्रिय शक्तिसम्पन्न देव है।

(२) राहु के विषय में लोक में विविध कथन है कि वह एक भुजा से सूर्य चन्द्र को ग्रहण कर दूसरी भुजा से छोड़ता है, मुँह से ग्रहण करता है या मुँह से निकालता है, जिधर से ग्रहण करता उधर से ही निकालता है अथवा अन्य तरफ से निकालता है इत्यादि।

(३) वास्तव में राहु महर्द्धिक देव है उसके पाँच र ग के विमान हैं। काले र ग वाले विमान सूर्य चन्द्र को आच्छादित करते हैं अर्थात् मनुष्यों के और सूर्य चन्द्र के बीच में आड़े आ जाते हैं, दिखने में बाधक हो जाते हैं, उनके प्रकाश को आच्छादित कर देते हैं। ये राहु विमान सूर्य चन्द्र के निकट नीचे आ जाते

हैं तब मनुष्य लोक में सूर्य चन्द्र पूर्ण नहीं दिखता है उसका प्रकाश पु ज भी अपूर्ण सा हो जाता है तब सूर्य चन्द्र ख ड़ित या आच्छादित दिखते हैं। नित्य राहु चन्द्र के पूर्ण दिखने में सदा बाधक बना रहता है। कुछ न कुछ हीनाधिक सीध में आता रहता है, खिसकता रहता है। पर्व राहु सूर्य चन्द्र दोनों के नीचे कभी कभी आता है। इसके पुद्गल नित्य राहु से भी अधिक काले हैं।

(४) पर्व राहु चन्द्र के नीचे कम से कम ६ महीने बाद और उत्कृष्ट ४२ महीनों बाद आता है, इससे अधिक समय नहीं होता है। सूर्य के नीचे आने में भी कम से कम ६ महीने का समय व्यतीत हो जाता है और उत्कृष्ट ४८ वर्ष तक भी वह पर्व राहु सूर्य के नीचे आड़ा नहीं आता है।

(५) राहु के द्वारा चन्द्र सूर्य पश्चिम दक्षिण किधर भी आच्छादित किये जा सकते हैं क्यों कि ये तीनों ही म ड़ल परिवर्तित करते रहते हैं, एक ही म ड़ल (मार्ग)में नहीं चलते हैं। इसी कारण आच्छादित किये जाते हुए सूर्य चन्द्र विविध आकार में-(आड़े, खड़े, तिरछे, बैठे, सोये इत्यादि आकारों में) दृष्टिगोचर होते हैं, माने जाते हैं, कहे जाते हैं।वास्तव में ये आच्छादित होने के ही विविध प्रकार है और म ड़ल परिवर्तन के कारण से बनते हैं।

(६) राहु चन्द्र सूर्य को निगल रहा है, वमन कर रहा है, कुक्षि भेद कर रहा है, घात कर रहा है इत्यादि कथन भी आच्छादित की भिन्नताओं के कारण ही कल्पित करके लोगों द्वारा कहे जाते हैं, माने जाते हैं, वैसी स ज्ञा दी जाती है।

(७) चन्द्र विमान का नाम मृगा क है, सुन्दर सुरूप है, देव भी सुन्दर सोम्य कांति वाले है, इसलिये चन्द्र को शशि भी कहा जाता है। विमान के रत्नों की प्रभा में कुछ हीनाधिक एव विशेषता इस प्रकार की है जिससे मनुष्य लोक में दिखने वाले चन्द्र के बीच में मृग जैसे आकारकाआभास होता है।

(८) लोक में सूर्य ही समय, आवलिका, मुहूर्त, दिन, रात की आदि करने वाला है। सूर्योदय से ही नया वर्ष, नया दिन, नया युग एव उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी प्रारम्भ होते हैं। अतः इसे आदित्य कहा जाता है। दिन और रात्रि भी सूर्य की प्रमुखता से ही होते है। आकाश म ड़ल में प्रकाश और ताप की अपेक्षा सूर्य का ही साम्राज्य है। उसके अभाव में ही अ धकार एव रात्रि होती है। उसके समकक्ष चन्द्र आदि सभी प्रकाशमान पदार्थ फीके नजर आते हैं।

अतः यह काल की, दिन की, युग की, स वत्सर की आदि एव निर्माण का प्रधान निमित्त है इसीलिये इसे आदित्य कहा गया है।

ग्रह ८८ हैं उनके अलग-अलग ८८ नाम सूत्र हैं। जिसमें- शनिश्चर, भस्म, धूमकेतु, बुध, शुक्र, बृहस्पति, राहु, काल, महाकाल, एक जटी, द्विजटी, केतु आदि ग्रहों के नाम लोक में विशेष रूप से प्रचलित एव परिचित है। ज्योतिषी देवों के काम भोग जनित सुख आदि की उपमा युक्त वर्णन भगवती सूत्र में कथित वर्णन के समान समझना चाहिये।

निबंध-८२

सूर्योदय तिथी से पर्व क्यों नहीं

प्रश्न : दिन की युग की आदि और निर्माण का प्रधान निमित सूर्य है तो लोग पर्व तिथी चन्द्र उदय से क्यों मानते हैं ?

उत्तर- प चा ग का निर्माण करने वाले सूर्योदय की प्रधानता से ही तिथि तारीख सूचित करते हुए सम्पूर्ण प चा ग बनाते है।

इतना होते हुए भी लोक में विद्वान कहे जाने वाले कई लोग प चा ग में सूचित तिथि को छोड़कर अस्त तिथि से पर्व दिन के उपवास आदि व्रत करते हैं यह उनका लौकिक भ्रमित प्रवाह मात्र है। क्यों कि सभी तिथियों की युग की, स वत्सर की आदि करने वाला तो सूर्य ही आगम में कहा गया है तो पर्व तिथि की आदि उसे करने से अस्वीकार करना कैसे उपयुक्त हो सकता है।

आगमों के व्याख्याकारों ने तो उपवास आदि व्रत प्रत्याख्यान सभी सूर्योदय की प्रमुखता की तिथि से करने का ही विधान किया है। फिर भी जैनागम वेत्ता लौकिक प्रवाह से पर्व तिथि स वत्सरी का उपवास भी सूर्योदय की तिथि छोड़ कर, प चा ग सूचित को छोड़ कर करने लग गये हैं, यह लौकिक नकल आगम सम्मत नहीं है। क्यों कि आदित्य-सूर्य ही दिवस आदि की आदि करने वाला कहा गया है। अतः किसी भी पर्व दिन की अस्त समय से आदि(प्रार भ) मानना आगम सम्मत नहीं हो सकता। इसीलिये ही प चा गकार भी सभी तिथियों को सूर्योदय के लक्ष्य से ही अ कित करते हैं, कोई भी प चा ग सूर्यास्त के लक्ष्य से आज तक नहीं बना, नहीं बनेगा।

निष्कर्ष यह है कि पर्व तिथि के उपवास आदि प चा ग में लिखी तिथि से ही करने चाहिये। आगम में पर्व तिथियाँ अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस, पूर्णिमा एव पर्यूषणा स वत्सरी कहे गये हैं। इनमें से अष्टमी, चतुर्दशी आदि के उपवास आदि प चा ग में लिखी तिथि से किये जाते हैं किन्तु पक्खी, स वत्सरी के उपवास आदि के लिये उस तिथि को छोड़कर अस्त तिथि को ढू ढ़ा जाता है। यह अपूर्ण और भ्रमित नकल परम्परा है। किन्तु आगम से स गत नहीं है।

निबंध :-८३

चन्द्रप्रज्ञप्ति सूत्र की विचारणा

उत्तर- इस सूत्र के नाम से एक दो पृष्ट जितना ही पाठ उपलब्ध होता है। उसमें भी विषयों का स कलन सूचन मात्र है और वे विषय प्रायः सूर्यप्रज्ञप्ति रूप ज्योतिष गण राज प्रज्ञप्ति में अ कित है। अतः यह सूत्र लिपिकाल के दोष से दूषित है। यह सूत्र स्वत त्र था या किस रूप में था, ये १-२ पृष्ट क्यों कैसे अवशेष रहे हैं ? जिनमें भी सूर्य प्रज्ञप्ति के विषयों का ही स कलन मात्र है पाहुड़ प्रतिपाहुड़ भी वैसे ही कहे हैं। अतः उक्त प्रश्न इतिहासज्ञों के खोज के लिये है।

वास्तव में अभी यह सूत्र कुछ भी स्वत त्रता लिये हुए उपलब्ध नहीं है। अतः इसे सूत्र कहना और गिनती में गिनना आदि भी एक प्रवाह पर परा मात्र है। वस्तुतः देखा जाय तो ३२ में या ४५ में इसे आगम गिनने की भी कोई उचितता नहीं है। यदि ऐसे गिने जाय तो न दीसूत्र कथित अनेक आगम और गिने जा सकते हैं। अतः इन दोनों सूत्रों को एक सूत्र ही गिनना चाहिये, उपलब्ध दोनों सूत्र के प्रारम्भ की सूचक गाथाओं में कहीं भी सूर्य प्रज्ञप्ति या चन्द्र प्रज्ञप्ति का नाम ही नहीं है दोनों जगह ज्योतिष राज प्रज्ञप्ति ही नाम अ कित है, यथा-

णामेण इन्दभूइत्ति, गोयमो व दिउण तिविहेण ॥
पुच्छइ जिणवर वसह , जोइस रायस्स पण्णत्ति ॥
एव जोइस गण राय पण्णति ॥-चन्द्रप्रज्ञप्ति गा.४,सू.प्र गा.४॥

निष्कर्ष यह है कि आज न तो सूर्य प्रज्ञप्ति नामक कोई शास्त्र उपलब्ध है और न चन्द्रप्रज्ञप्ति के नाम का। इस नाम से प्रचलित इन दोनों सूत्रों में ज्योतिष राज प्रज्ञप्ति यही नाम मूलपाठ की तीसरी चौथी गाथाओं में

अ कित है। इसलिये यह सूत्र ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति स ज्ञक है और ए क ही है। प्राचीन काल में कभी(विक्रम की १२वीं, १३वीं शताब्दि में)१२उपांग सूत्र गिनने में एक सूत्र के दो सूत्र करके नंदी में एक को कालिक में दूसरे को उत्कालिक में रखने की बुद्धिमानी की गई है। क्यों कि न दीसूत्र की नामावली में ऐसे प्रचलित परिवर्तनों का समय समय पर असर हुआ ही है। तभी निरियावलिका-उपा ग सूत्र एक ही शास्त्र है उसके भी ५ वर्गों को ५ सूत्र रूप में गिनकर नंदी में ५ नाम अ कित हुए हैं।

सूत्रों की स ख्या आदि की जिज्ञासा के लिये अन्य निबंध देखें।

निबंध-८४

नक्षत्र संबंधी ज्ञान १२ द्वारों से

नक्षत्रों का बारह द्वारों से यहाँ विचार किया जाता है यथा- (१) नक्षत्र नाम (२) आकार (३) तारा स ख्या (४) म ड़ल में नक्षत्र (५) रात्रिवाहक (६) म ड़ल सम्बन्ध (७) योग (८) सीमा विष्क भ (९) योग काल (१०) मुहूर्त गति (११) म ड़ल दूरी (१२) मास स वत्सर काल मान।

(१ से ३) नाम, आकार, तारे- इनका चार्ट १० वें प्राभृत के आठवें नवमें प्रतिप्राभृत में दिया गया है।जिसे सारांश या प्रश्नोत्तर के भागों में देखें।

(४) म ड़ल में नक्षत्र-नक्षत्र के आठ म ड़ल है उनमें नक्षत्र इस प्रकार है-**पहले म ड़ल में-** अभिजित, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषक, पूर्वाभाद्रपद, उत्तर भाद्रपद, रेवती, अश्विनी, भरणी, पूर्वा फाल्गुनी, उत्तरा फाल्गुनी, स्वाति ये १२ नक्षत्र है।**दूसरे म ड़ल में-** पुनर्वसु, मघा ये दो नक्षत्र है। **तीसरे म ड़ल में-** कृतिका। **चौथे म ड़ल में-** चित्रा, रोहिणी। **पाँचवें म ड़ल में-** विशाखा। **छट्ठे म ड़ल में-** अनुराधा। **सातवें म ड़ल में-** ज्येष्ठा। **आठवें म ड़ल में-** मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुष्य, अश्लेषा, हस्त, मूल, पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा ये ८ नक्षत्र हैं।

(५) रात्रिवाहक- इनका चार्ट दसवें प्राभृत के दसवें प्रतिप्राभृत में

है।जिसे सारांश या प्रश्नोत्तर के भागों में देखें ।

(६) म ड़ल सम्बन्ध-

१. चन्द्र के म ड़ल से नक्षत्र म ड़ल का सम्बन्ध-१,३,६,७,८,१०,११,१५

२. नक्षत्र म ड़ल का सूर्य के म ड़ल से सम्बन्ध- १,२,७,८

३.सूर्यम ड़ल का च द्रम ड़ल से स ब ध-१,२,३,४,५११,१२,१३, १४,१५शेष मंडल सीध में नहीं है, आगे पीछे है । ऐसा तीनों में समझे ।

४. चन्द्र म ड़ल के साथ सूर्य एव नक्षत्र म ड़ल का अर्थात् तीनों का म ड़ल सम्बन्ध-चन्द्रका १-३-११-१५, नक्षत्र का १-२-७-८, सूर्य का १-२७-१४४-१८४ । यहाँ स ब ध का मतलब एक दूसरे के सीध में ऊपर-नीचे से है ।

(७) जोग- १. दक्षिण योग- ६ नक्षत्र मृगशीर्ष आदि, **२.** उत्तर योग- १२ नक्षत्र अभिजित आदि, **३.** तीनों योग- ७ कृतिका, रोहिणी, पुनर्वसु, मघा, चित्रा, विशाखा, अनुराधा, **४.** दक्षिण व प्रमर्द योग-पूर्वाषाढा, उत्तराषाढा **५.** प्रमर्द योग-ज्येष्ठा ।

(८) सीमा विष्क भ- अपने अपने म ड़ल के १०९८०० भाग में से निम्न भाग प्रमाण इन नक्षत्रों का सीमा विष्क भ (चंद्र सूर्य के साथ अपना योग क्षेत्र) है- ६३० भाग-अभिजित । १००५ भाग-शतभिषक, भरणी, आर्द्रा, अश्लेषा, स्वाति, ज्येष्ठा । २०१० भाग- श्रवण धनिष्ठा आदि१५ (प्रा.१०, प्र.प्रा.२)। ३०१५ भाग- उत्तर भाद्रपद, रोहिणी, पुनर्वसु, उत्तरा फाल्गुनी, विशाखा, उत्तराषाढ़ा ।

(९) योग काल-

नक्षत्र	च द्र के साथ	सूर्य के साथ
अभिजित	९-३७/६७ मुहूर्त	४ दिवस ६ मुहूर्त
६ नक्षत्र	१५ मुहूर्त	६ दिवस २१ मुहूर्त
१५ नक्षत्र	३० मुहूर्त	१३ दिवस १२ मुहूर्त
६ नक्षत्र	४५ मुहूर्त	२० दिवस ३ मुहूर्त

(१०) मुहूर्त गति :-

	प्रथम म डल	अ तिम म डल
सूर्य	५२५१ $\frac{२९}{६१}$	५३०५ $\frac{१५}{६०}$
चंद्र	५०७३ $\frac{७७४४}{१३७२५}$	५१२५ $\frac{६९९०}{१३७२५}$
नक्षत्र	५२६५ $\frac{१८२६३}{२१९६०}$	५३१९ $\frac{१६३६५}{२१९६०}$

(११) म डल अ तर :- सूर्य विमान $\frac{४८}{६१}$ योजन, च द्र $\frac{५६}{६१}$ योजन, नक्षत्र विमान एक कोस है । यह ल बाई चौडाई है । ऊ चाई इससे आधी है । आठ नक्षत्र मंडलों में सात अंतर-

(१) ७२ $\frac{५१}{६१}$,$\frac{१}{७}$ (२) १०९$\frac{१५}{६१}$,$\frac{५}{७}$ (३) ३६ $\frac{२५}{६१}$,$\frac{४}{७}$ (४) ३६ $\frac{२५}{६१}$, $\frac{४}{७}$ (५) ७२ $\frac{२५}{६१}$,$\frac{४}{७}$ (६) ३६ $\frac{२५}{६१}$,$\frac{४}{७}$ (७) १४५ $\frac{५१}{६१}$,$\frac{२}{७}$

सूर्य म डल का अ तर २-२ योजन है । चन्द्र म डल का ३५-३०/ ६१, ४/७ योजन का अ तर ।

(१२)पाँच स वत्सर का कालमान :-

क्रम	स वत्सर	मास के दिन	युग में मास	स वत्सर के दिन	युग के दिन
१	नक्षत्र	२७ $\frac{२१}{६२}$	६७	३२७ $\frac{५१}{६१}$	१६३८$\frac{५४}{६७}$
२	चद्र	२९ $\frac{३२}{६२}$	६२	३५४ $\frac{१२}{६२}$	१७७० $\frac{६०}{६२}$
३	ऋतु	३०	६१	३६०	१८००
४	सूर्य	३० $\frac{१}{२}$	६०	३६६	१८३०
५	अभिवर्धित	३१ $\frac{१२९}{१९४}$	५७मा.०७दि. ११$\frac{३३}{६२}$ मुहूर्त	३८३ $\frac{४}{६२}$	१९१८ $\frac{३४}{६२}$

कितने वर्ष बाद मिलान :- (१) च द्र सूर्य का मास मिलान-२-१/२ वर्ष लगभग में (२) च द्र सूर्य स वत्सर का मिलान -३० वर्षों में (२-१/२x१२) (३) च द्र, सूर्य, ऋतु और नक्षत्र स वत्सर का मिलान -६० वर्षे में (४) पाँचों का मिलान- (१) ७८० सूर्य स वत्सर में (२) ८०६ च द्र स वत्सर में (३) ८७१ नक्षत्र स वत्सर में (४) ७९३ ऋतु स वत्सर में (५) ७४४ अभिवर्धित स वत्सर में होता है ।

निबंध-८५

प्रक्षिप्त पाठ अप्रक्षिप्त पाठ विचारणा

सूर्यप्रज्ञप्ति के प्राभृत-१० प्रति प्राभृत-१७ का पाठ :-

वर्तमान में ६००-७०० वर्ष पूर्व तक की ही हस्तलिखित प्रतियाँ प्रायः आगमों की उपलब्ध होती है। उसके पूर्व आगमों के पाठ कैसे थे ? उसके पूर्व कितना लिपि काल और कितना मौखिक काल बीता था उस बीच के काल में विवेक पूर्वक कितने परिवर्तन स घ सम्मति से हुए ? कितने परिवर्तन व्यक्तिगत समझ से हुए और कितने दुर्बुद्धि या स्वार्थबुद्धि से हुए इसके लिये कल्पसूत्र, महानिशीथ सूत्र व अन्य अनेक प्राचीन ग्र थों के स्वाध्याय एव चिंतन से और आगम पाठों के साथ तुलना करने से ज्ञात किया जा सकता है एव अनुभव हासिल किया जा सकता है।

अतः १०००वर्ष पूर्व का तो कोई भी प्रमाण कैसे कहा जा सकता है। सुधर्मा, ज बू से देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण तक की कोई हस्त प्रति मिलती नहीं है। देवर्द्धिगणि के शास्त्रलेखन के पश्चात ५०० वर्ष तक बीच के काल में क्या घटा, क्या बढ़ा, इसका भी कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता है क्यों कि १५०० वर्ष प्राचीन कोई प्रति नहीं मिलती है।

अतः सम्पूर्ण जैनसमाज से एव जैनागमों से स्पष्ट रूप से विरुद्ध दिखने वाले पाठ के लिये निश्चित प्रमाण की आवश्यकता समझना व्यर्थ है।

कृतिका नक्षत्र से नक्षत्रों का प्रार भ स ब धी तर्क भी प्रक्षिप्तता सिद्ध करने में बहुत ठोस है, उपेक्षा करने योग्य नहीं है तथा लिपि पर परा से प्राप्त आगमों के प्रति विवेक पूर्ण श्रद्धा से निर्णय किया जा सकता है, न कि केवल निर्विचार श्रद्धा से।

आगमों में मद्य मा स आहार को नरक गमन का कारण बताया है। साधु मा स मछली मद्य का सेवन नहीं करने वाले होते है ऐसे आगम वाक्य है। इससे यह निश्चित है कि आगम काल में ये शब्द इसी अर्थ में प्रचलित थे। अतः **आचारा ग सूत्र** में साधु के आहार ग्रहण करने स ब धी पाठ में भ्रान्ति पैदा करने वाले इन शब्दों का प्रयोग आगमकार नहीं कर सकते हैं। क्या उनके शब्दकोष में अन्य शब्द नहीं थे कि वे

निषिद्ध और नरक गमन योग्य खाद्यपदार्थों के नाम से साधु के आहार का वर्णन करे कि **मस ग मच्छग भोच्चा, अट्ठियाइ क टए य गहाय।**

अतः **देवर्द्धिगणि के लिपि काल** के बाद और टीकाकार **(शीला काचार्य व मलयगिरी)** आचार्यों के पहले के काल का या बाद का यह प्रक्षिप्त दूषण है। इसे गणधरों और पूर्वधरों पर ड़ालना उचित नहीं है। अहिंसा महाव्रती को भाषा का पूर्ण विवेक रखना आगमों में कहा है। वही साधक ऐसे हिंसा मूलक वाक्य कहे या लिखे यह कितना अनर्थकारी है। यथा- **अमुक सचित पदार्थ खाकर जावे या अमुक का मा स खाकर जावे तो कार्य सिद्ध होवे ।**

अन्य आगमों में तो वनस्पति परक अर्थ करने व खेंचतान करके जमा देने से स तोष किया भी जा सकता है किन्तु सूर्यप्रज्ञप्ति में **सावद्य भाषा का दोष** तो फिर भी ज्यों का त्यों सुरक्षित बना रहता है जो पूर्वधर और गणधरों पर ड़ाला जाता है।

१४ पूर्वी की रचना में खेंचतान कर अर्थ जमाना पड़े ऐसे प्रयास करने की अपेक्षा मध्यकाल का प्रक्षिप्त पाठ मानना अधिक उचित प्रतीत होता है। क्यों कि आगमकारों के समय भी मा स मछली और मद्य का प्रचलित अर्थ यही था और उन्होंने इन्ही शब्दों से निषेध और नरक गमन का कथन किया है।

१४ पूर्वी तो अपने ज्ञान के कारण आगम विहारी कहलाते है। वे भविष्य की अर्थ परम्पराओं का विचार करके ही अस दिग्ध रचना करते हैं। अतः जितने स दिग्ध स्थल आगमों के हैं उसे श्रद्धा के बहाने गणधरों आदि पर आरोपित नहीं करना चाहिये। अपितु मध्यकाल में प्रक्षिप्त किया गया प्रदूषण ही समझना चाहिये। अन्यथा अ धश्रद्धा से प्रमाणिक पुरुषों की प्रमाणिकता पर ही प्रहार होगा। जिससे आशातना से बचने की जगह ज्यादा ही आशातना लगेगी।

आचारांग सूत्र का आठवाँ अध्ययन :-

आचारा ग के आठवें अध्ययन के विछिन्न होने के स ब ध की टीका के विषय में यह विचारणा चाहिये कि देवर्द्धिगणि के ५००-६०० वर्ष बाद शीला काचार्य हुए है। तथा सैकड़ों साधु देवर्द्धिगणि के समय भारत में थे। उन्हें ११ अ ग, एक पूर्व का ज्ञान तथा ८४ आगम सब क ठस्थ रह

गये थे, तब आचारा ग के ही बीच में से सीर्फ, सातवाँ अध्ययन सभी साधु और एक पूर्वधर भूल जावे और विस्मृत होकर विच्छेद हो जाये, ऐसी कल्पना करना सर्वथा अस गत है एव अघटित है। अतः लिपिकाल में अनुपयुक्त समझ कर उसका लिपिबद्ध न करना ही विशेष स गत प्रतीत होता है। मूल पाठ में उस स्थान पर चूर्णी व्याख्या काल तक विच्छेद आदि कुछ भी लिखा हुआ नहीं था। बाद में जिसके जो समझ में आया उसने वैसा ही अनुमान किया। किन्तु सही विचार करने पर ही किये गये अनुमान की कसोटी हो सकती है।

प्रक्षेप की प्रवृति का उदाहरण:-

मध्यकाल में प्रक्षिप्त करने की प्रवृत्ति का उदाहरण- दशाश्रुतस्क ध सूत्र भद्रबाहु स्वामी रचित (स कलित) है। इसके निर्युक्तिकार (छट्ठी शताब्दी के) द्वितीय भद्रबाहु (वराहमिहिर के भाई) है। निर्युक्तिकार ने प्रथम गाथा में सूत्रकर्ता **प्राचीन भद्रबाहु** को व दन किया है। सूत्र परिचय देते हुए निर्युक्तिकार ने कहा कि इसमें छोटी छोटी दशाएँ कही गई है। बड़ी दशाएँ अन्य सूत्रों में है। आठवीं दशा में (पर्युषणा कल्प)केवल साधु समाचारी स ब धी सूत्रों की व्याख्या उन्होंने की है।

कल्पसूत्र को महत्त्व देने की रुचि वाले मध्यकालीन तथाकथित महापुरुषों ने यह प्रचार किया है कि "बारह सो श्लोक प्रमाण उपलब्ध पूरा कल्पसूत्र, दशाश्रुतस्क ध का आठवाँ अध्ययन ही है जो भगवद् कथित और गणधर गू थित तथा चौदह पूर्वी भद्रबाहु से स कलित है।"

इस प्रचार को पुष्ट करने के लिये आठवीं दशा में किसी ने पूरा **बारह सो श्लोक का कल्पसूत्र लिख भी दिया।** जो ४०० वर्ष से अधिक पुरानी दशाश्रुतस्कन्ध की हस्तलिखित प्रति **अहमदाबाद की एल. ड़ी. लाइब्रेरी** में देखा गया है। उसमें पूरा कल्पसूत्र आठवीं दशा में उपलब्ध है। जो कि **महान प्रक्षिप्तिकरण** का उदाहरण है।

प्रश्न- धातकीखंड अर्ध पुष्करदीप के क्षेत्र, पर्वत कैसे है ?

उत्तर- आभ्यंतर परिधि का ३८०वाँ भाग और बाह्य परिधि का भी ३८०वाँ भाग भरतक्षेत्र की चौडाई होती है और उसकी लंबाई दीप की चौडाई के जितनी ४ लाख या ८ लाख योजन होती है अर्थात् वे भरतक्षेत्र अंदर की तरफ कम चौडे और बहार की तरफ ज्यादा चौडे और द्वीप

जितने लंबे होते है। उसी तरह चुल्ल हिमवंत आदि दुगुने दुगुने चौडे है, लंबचौरस है ऐसा समझना।

निबंध-८६

ध्यान संबंधी बहुआयामी परिज्ञान

ध्यान के भेद-प्रभेद :-

ध्यान चार- (१) आर्त्तध्यान (२) रौद्रध्यान (३) धर्म ध्यान और (४) शुक्लध्यान।

आर्त्तध्यान के चार भेद अथवा पाये- १. पाँच इन्द्रियों तथा तीन योगों को इष्ट, साताकारी, सुखकर ऐसे पौद्गलिक स योग जो अप्राप्त हक्त वे प्राप्त हो तथा जो प्राप्त है वे टिके रहे, ऐसी चिंतन की स्थिरता, एकाग्रता। २. पाँच इन्द्रियों तथा तीन योगों को अनिष्ट, असाताकारी दुःखकर ऐसे पौद्गलिक स योगों का वियोग हो तथा वियोग बना रहे, ऐसी चिंतन की एकाग्रता। ३. कामभोगों को भोगने में, आरोग्य बना रहे, जवानी बनी रहे, योग इन्द्रियों का सामर्थ्य बना रहे, स्वाधीनता, सत्ता बनी रहे, उन्माद बना रहे, ऐसी चिंतन की एकाग्रता। ४. इस भव में तथा आगामी भव में और भव भव में इन्द्र चक्रवर्ती आदि के पद, सुख मिले, ऐसी आका क्षामय चिंतन की एकाग्रता।

आर्त्तध्यान के चार लक्षण-चिन्ह- १. इष्ट वियोग अनिष्ट स योग होने पर मन से शोक करना, अरति-ग्लानि-उदासीनता करना, उद्विग्न होना, स तप्त-परितप्त होना, २. वचन से रुदन करना, विलाप करना, आक्रन्द करना, दीन वचन कहना आदि, ३. काया से छाती-माथा हाथ आदि से कूटना, हाथ पैर पछाडना, मस्तक को झुकाकर उस पर हाथ देकर बैठना, मु ह को ढ कना, ४. आँखों से अश्रुपात करना, आँखें भीगी-भीगी होना, नाक से निःश्वास ढालना, मु ह से जिव्हा बाहर निकालना आदि। (१) अनिष्ट वियोग, इष्ट स योग आदि होने पर मन से प्रसन्न होना, रति भाव का होना, मन में गुदगुदी होना, खुशी में फूलना, तृप्त-परितृप्त होना, (२) वचन से गीत गाना; हास्य यावत् अट्टहास करना; बा सुरी, सीटी, बिगुल बजाना; खिलखिलाहट हँसना आदि, (३) काया से मूछों

पर ताव देना, हाथों से ताली बजाना, पैरों से नाचना, हाथ पैर उछालना, कूदना, भुजा आदि फटकारना, अभिनय करना, आँखों का विकसित होना, हर्ष के आँसू आना, नाक से श्वास की गति मन्थर धीमी होना, जिव्हा का ओष्ठ पर घूमना आदि ।

रौद्रस्थान के चार भेद-पाये- १. अपने इष्ट स योग आदि के लिये निर्दोष निर्बल को दबाना, पीडित करना, द ड देना, हत्या करना, युद्ध करना, २. झूठ बोलना, विश्वासघात करना, मिथ्या कल क दोषारोपण करना, झूठी साक्षी देना, ३. बडी चोरी करना, डाका डालना, लूँटना, उसके लिये प्रेरणा-सहायता देना, चोरी का माल सस्ते में लेना, न्यायोचित्त कर(टेक्ष) की चोरी करना, चोरी करके प्रसन्न होना, ४. निर्दोष को कारावास में डालना, कन्या, परस्त्री या विधवा का अपहरण करना, बलात्कार करना, सराफ श्रेष्ठि बनकर धरोहर दबा कर मुकर जाना, स्वामी उपकारी का द्रोह करना आदि ।

रौद्रध्यान के चार लक्षण-चिन्ह- (१) स्वजन या परजन के अनजान में प्रथम बार में किये गये छोटे अपराध पर बडा कोप करना, बडा क्रूर द ड देना, (२) बार बार विविध प्रकार से द ड देना, (३) आरोप प्राप्त के द्वारा निर्दोषता प्रमाणित किये जाने पर भी उसे जानने समझने को उद्यत न होना, समझ में आने पर भी स्वीकार करने को तैयार न होना, (४) आरोपी के द्वारा क्षमा मा ग लिये जाने के बाद भी एव जीवन में सुधार लाये जाने के बाद भी, मरण तक उनके प्रति वैर शत्रुता बनाये रखना ।

धर्मध्यान के भेद-पाये- १. तीर्थंकर देवों की आज्ञा का, स वर निर्जरा धर्म आदरने का ध्यान-विचार करे, अनाज्ञा का, आश्रव का विरमण करने का, ध्यान-विचार करे, २. आज्ञा पालन से इह भव के सुख-शा ति आदर आदि के लाभ तथा कर्म निर्जरा के लाभ का चिंतन करे, आज्ञा पालन न करने से इस लोक के दु:ख, अशा ति, अनादर आदि का तथा कर्मब ध एव कर्म गुरुता का ध्यान करे, ३. आज्ञापालन से परभव के पुण्यफल तथा निर्जरा का चिंतन करे तथा आज्ञा विराधना से परभव के पाप फल तथा कर्मब ध का चिंतन करे, ४. आज्ञापालन से लोकाग्र, लोक मस्तक, सिद्ध शिला पर सिद्धत्व प्राप्ति एव अनुत्तर अव्याबाध सुख का चिंतन करे तथा आज्ञा विराधना से चौदह राजु परिमाण उर्ध्व-

अधो-तिर्यक लोक में, ४ गति, २४ द डक, ८४ लाख जीवयोनि में परिभ्रमण, दारुण दु:ख, दु:खपर परा अनुब ध का विचार करे ।

धर्मध्यान के चार लक्षण-चिन्ह- (१) देवगुरुशास्त्र की आज्ञा आदेश अनुशासन में तथा तदनुसार क्रिया में रुचि, (२) विधि, उपदेश, बोध, समझाइश में तथा तदनुसार क्रिया में रुचि, (३) सूत्र- मूलआगम पाठ, सिद्धा त-श्रवण, वाचन, अध्ययन, क ठस्थ करना आदि में रुचि, (४) निसर्ग-ऊपर के तीनों कारणों के बिना क्षयोपशम स्वभाव से ही दृश्य पदार्थ की अनुप्रेक्षा से, जातिस्मरणज्ञान या अवधिज्ञान से क्रिया में रुचि।

धर्मध्यान के चार आल बन- (१) गुरु-शिष्य या साधर्मिक से वचना लेना-देना, सुनना, सुनाना, सीखना, सीखाना, (२) जिज्ञासा स्पष्टता परीक्षादि हेतु प्रश्न पूछना-उत्तर देना, वादविवाद करना एव प्रश्नोत्तर चर्चा-वार्ता सुनना, (३) स्वाध्याय करना कराना, सुनना, पुनरावर्तन करना, पक्का करना, (४) धर्मकथा कहना, सुनना, शिक्षाबोध उपदेश आज्ञा देना-लेना ।

धर्मध्यान की चार अनुप्रेक्षा- (१) एकत्व की अनुप्रेक्षा- स सारी जीव, कुटु ब, जाति, समाज आदि में अनेक रूप से लगा होते हुए भी जीव अकेला है, अकेला ही पूर्व भव से आया है, अकेला ही आगामी भव में जाने वाला है, कर्म को बा धने में, स चित करने में, उदीरणा में, भोगने में, निर्जरने में अकेला आत्मा ही मुख्य कारक है, अन्य सभी उपकारक या सहकारक है । (२) अनित्य भावना- जीव से जीव का पुद्गल से पुद्गल का, जीव से पुद्गल का स योग स ब ध अनित्य है, क्यों कि वियोग अवश्य भावी है । यथा-जीव और शरीर का जन्म-स योग है तो मृत्यु-वियोग निश्चित्त है । लग्न के बाद वैधव्य, विधुरत्व अनिवार्य है। स घात से स्कन्ध बनने के बाद भेद से परमाणु दशा अवश्य आती है । (३) अशरण भावना-जब तक पुण्य है, तब तक शरीर, परिवार, धन आदि शरणभूत दिखते हक्त किन्तु निकाचित पापोदय होने पर दारुण कर्म विपाक को भोगना ही पडता है । कोई भी उससे बचाने का सामर्थ्य नहीं रखता, उसे कम भी नहीं कर सकता, 'कम हो जायेगा' ऐसा वास्तविक पक्का आश्वासन भी नहीं दे सकता । (४) स सार भावना- जो आज माता है, वह पुत्री, पत्नी, भगिनी, पुत्रवधु बन जाती है, जो आज पिता

है वह पुत्र, भाई, पति, जमाई बन जाता है, इस तरह अनुकूल स ब ध भी परिवर्तनशील है तथा शत्रु, शोषक, हत्यारा, विश्वास घाती, ये प्रतिकूल स ब ध भी परिवर्तनशील है । अनुकूल प्रति- कूल में तथा प्रतिकूल अनुकूल में यों भी परिवर्तन चालू रहता है । कोई आगामी भव में तो कोई इसी भव में परिवर्तित हो जाते हक्त ।

शुक्लध्यान के चार भेद-पाये- १. धर्मध्यान की सूक्ष्मता बढाते हुए श्रुतज्ञान के शब्द से अर्थ में या अर्थ से शब्द में स क्रान्त होना, श्रुत निर्दिष्ट द्रव्य से गुण में गुण से पर्याय में, पर्याय से द्रव्य में किसी भी विकल्प से स क्रान्त होना पर तु अन्य विषयों में न जाना, उसी विषय में एकाग्र होना, २. श्रुतज्ञान के शब्द या अर्थ में, द्रव्य, गुण या पर्याय में स क्रान्त हुए बिना किसी एक में ही एकाग्र होना । इसी प्रकार मन वचन काया से भी स क्रान्त हुए बिना एकाग्र होना, ३. तेरहवें गुणस्थान से चौदहवें गुणस्थान में आरूढ होने के लिये मन वचन काय योग का निरोध करना, ४. सूक्ष्म मन वचन काययोग का भी निरोध करके चौदहवें गुणस्थान में मेरु पर्वत के समान सर्वथा अचल होना, आत्मप्रदेशों का भी उत्कलन न रहना ।

शुक्लध्यान के चार लक्षण- (१)प्रखर, परम असाताकारक; प्रखर वेदनीय तथा मरण के प्राप्त होने पर भी 'व्यथित न होना' । (२) प्रबल, चरम मोहकारक अप्सरादि के विलास, कटाक्ष, आम त्रण, आलिंगन आदि में भी 'मोह प्राप्त न करना' । (३) जीव और शरीर में पृथक्करण का अनुभव करना, विवेक भाव प्राप्त करना, जागृत रहना। (४) पृथक्करण अनुभव के अनुसार शरीर ममत्व आदि का त्याग करना, पौद्गलिक सुख-दु:ख के स योग में अख ड निर्वेद भाव में रहना । शरीर और उपकरणों में आसक्ति भाव का 'व्युत्सर्जन' होना ।

शुक्लध्यान के चार आल बन- (१) क्रोध की उदीरणा का बलवान कारण उपस्थित होने पर भी अपूर्व **क्षमा** धारण करना, सोमिल ब्राह्मण के प्रस ग में **गजसुकुमाल** के समान । (२) लोभ उदीरणा का बलवान प्रस ग उपस्थित होने पर भी अपूर्व **लोभमुक्त** होना, यथा- भवनपति देवों द्वारा निदान करने की प्रार्थना किये जाने पर भी लोभ मुक्त **तामली** तापस- वत् । (३) माया उदीरणा का बलवान कारण उपस्थित होने पर भी **सरलता** निष्कपटता एकरूपता तीनों योगों की बनाये रखना । यथा-

महाबल के द्वारा माया किये जाने पर भी सरलमना छहमित्र राजर्षि के समान । (४) मान उदीरणा का बलवान कारण उपस्थित होने पर भी **नम्र विनीत कोमल लघु** बने रहना, क्षत्रिय राजर्षि के द्वारा स्तुति किये जाने पर नम्र स यति राजर्षि के समान ।

शुक्लध्यान की चार अनुप्रेक्षा- (१) व्यवहार राशि का प्रत्येक स सारी जीव सभी योनियों में अन तबार परिभ्रमण कर चुका है, फिर भी मोह के कारण विराम की भावना नहीं आई । (२) विश्व के सभी पुद्गल पदार्थ स्वभाव से या प्रयोग से शुभ से अशुभ में तथा अशुभ से शुभ में परिणत होते रहते हक्त, तो फिर उनमें एका त राग या एका त द्वेष क्यों करना ? वीतरागता के भाव में ही रहना । (३) इस स सार के समस्त प्रवर्तनों में दु:ख ही दु:ख का अनुभव करना, यथा- **अहो दुक्खो हु स सारो** अर्थात् **यह सारा स सार दु:खमय है** ऐसा चिंतन करके विरक्त रहना। (४) दु:ख के मूल कारण का चिंतन करना, यथा- स सार परिभ्रमण अर्थात् जन्म मरणादि दु:ख के मूल है, जन्म मरण का मूल कर्मब ध है एव इसका मूल विषयेच्छा-भोगेच्छा है तथा इसका मूल राग-द्वेष, अर्थात् मोह है ।

अत: मोह, राग-द्वेष, भोगेच्छा, कर्मब ध, जन्म मरणादि दु:खों से विरक्त होकर आत्मा का मोक्ष मार्ग तथा मोक्ष के प्रति सन्मुख होना । इस प्रकार २+२+४+४=१२x४=४८ भेद-प्रभेदों से चार ध्यान का वर्णन किया गया है ।

आध्यात्मिक ज्ञान :-

चित्त की अवस्थाओं का किसी विषय पर केन्द्रित होना ध्यान है। जैन पर परा में ध्यान के चार प्रकार है- (१) आर्त्तध्यान (२) रौद्र ध्यान (३) धर्मध्यान और (४) शुक्लध्यान । इसमें से आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान चित्त की दूषित प्रवृत्तियाँ है । अत: साधना एव तप की दृष्टि से उनका कोई मूल्य नहीं है, ये दोनों ध्यान त्याज्य है । आध्यात्मिक साधना की दृष्टि से धर्मध्यान और शुक्लध्यान ये दोनों ही महत्वपूर्ण है । इनकी विचारणा इस प्रकार है-

धर्मध्यान- इसका अर्थ है चित्त विशुद्धि का प्रार भिक अभ्यास । धर्मध्यान के लिये चार बातें आवश्यक-१.आगमज्ञान २. अनासक्ति ३.आत्मस यम

और ४.मुमुक्षुभाव । धर्मध्यान के चार प्रकार है- (१) आज्ञा विचय-आगम के अनुसार तत्त्व स्वरूप एव कर्तव्यों का चिंतन करना । (२) अपाय- विचय- हेय क्या है, इसका विचार करना । (३) विपाक-विचय- हेय के परिणामों का विचार करना । (४) स स्थान - विचय- लोक या पदार्थों की आकृतियों, स्वरूपों का चिन्तन करना।

चौथा स स्थान-विचय धर्मध्यान चार उपविभागों में विभाजित है- १. पि डस्थ ध्यान- यह किसी तत्त्व विशेष के स्वरूप के चिंतन पर आधारित है । इसकी पार्थिवी, आग्नेयी, मारुती, वारुणी और तत्त्वभू ये पाँच धारणाएँ मानी गई है । २. पदस्थ ध्यान- यह ध्यान पवित्र म त्राक्षर आदि पदों का अवल बन करके किया जाता है । ३. रूपस्थ ध्यान- रागद्वेष मोह आदि विकारों से रहित अर्हन्त प्रभु का ध्यान करना । ४. रूपातीत ध्यान- निराकार, चैतन्य-स्वरूप सिद्ध परमात्मा का ध्यान करना ।

शुक्लध्यान- यह धर्म-ध्यान के बाद की स्थिति है । शुक्लध्यान के द्वारा मन को शा त और निष्प्रकम्प किया जाता है । इसकी अ तिम परिणति मन की समस्त प्रवृत्तियों का पूर्ण निरोध है । शुक्लध्यान चार प्रकार का है- **(१)** पृथक्त्व-वितर्क-सविचार- इस ध्यान में ध्याता कभी अर्थ का चिंतन करते-करते शब्द का और शब्द का चिंतन करते-करते अर्थ का चिंतन करने लगता है । इस ध्यान में अर्थ, व्य जन और योग का स क्रमण होते रहने पर भी ध्येय द्रव्य एक ही रहता है । **(२)** एकत्व-वितर्क अविचारी-अर्थ, व्य जन और योग स क्रमण से रहित एक पर्याय-विषयक ध्यान **एकत्व-श्रुत विचार** ध्यान कहलाता है । **(३)** सूक्ष्म क्रिया-अप्रतिपाति- मन, वचन और शरीर व्यापार का निरोध हो जाने एव केवल श्वासोश्छवास की सूक्ष्म क्रिया के शेष रहने पर ध्यान की यह अवस्था प्राप्त होती है । **(४)** समुच्छिन्न-क्रिया-निवृत्ति- जब मन वचन और शरीर की समस्त प्रवृत्तियों का निरोध हो जाता है और कोई भी सूक्ष्म क्रिया शेष नहीं रहती, उस अवस्था को समुच्छिन्न क्रिया शुक्लध्यान कहते हक्त । इस प्रकार शुक्लध्यान की प्रथम अवस्था से क्रमश: आगे बढते हुए अ तिम अवस्था में साधक कायिक, वाचिक और मानसिक सभी प्रवृत्तियों का पूर्ण निरोध कर अ त में सिद्धावस्था प्राप्त कर लेता है।

ध्यान स्वरूप विचारणा :-

किसी भी प्रवृत्ति करने के पूर्व उसका स्वरूप समझना आवश्यक होता है । कहा भी है-

प्रथम ज्ञान पीछे क्रिया, यह जिन मत का सार ।
ज्ञान सहित क्रिया करे, तो उतरे भव पार ॥

दशवैकालिकसूत्र अध्ययन ४, गाथा १० में भी यही भाव कहा गया है और यह भी कहा है कि अज्ञानी अपने हित या अहित को कैसे समझ सकता है ?

ग्रामा तर जाना है तो उस ग्राम का मार्ग कौन सा है ? अन्य ग्राम के मार्ग भी बीच में कौन से जाते हक्त ? इसकी सही जानकारी करनी आवश्यक होती है ।

गमन करने के लिये सही मार्ग भी होते हक्त और लक्ष्य से विपरीत मार्ग भी होते हक्त; किसी भी कार्य को करने की सही विधि भी होती है, गलत विधि भी होती है; खाने के पदार्थ अच्छे भी होते हक्त एव खराब भी होते हक्त । ठीक इसी प्रकार ध्यान भी दो तरह का है- १. शुभ २.अशुभ।

अशुभ ध्यान के दो प्रकार है- १. आर्तध्यान २. रौद्र ध्यान । शुभ ध्यान के दो प्रकार है- १. धर्मध्यान २. शुक्ल ध्यान । आत्मा के परिणाम-अध्यवसाय भी दो तरह के होते हक्त- १. शुभ २. अशुभ ।

आगम में कहा है कि ' सद् ध्यान में रत रहने वाले की शुद्धि होती है' । अन्यत्र यह भी कहा है कि- 'धर्मध्यान में जो रत रहता है वह भिक्षु है ' ***-दसवै.अ.८ ।***

ध्यान परिभाषा- जब धर्मध्यान या शुभध्यान होता है तो प्रतिपक्षी अशुभध्यान या अधर्मध्यान का अस्तित्व भी होता ही है, यह स्पष्ट है । अत: ध्यान की परिभाषा वही शुद्ध हो सकती है जिसमें अशुभध्यान और शुभध्यान दोनों का समावेश हो सकता है अन्यथा वह ध्यान की परिभाषा पूर्ण नहीं कहला सकती ।

जैन आगमों व ग्र थों में जहाँ भी ध्यान के भेद किये हक्त या ध्यान की परिभाषा दी है उसमें यह अपूर्णता नहीं है क्यों कि उस परिभाषा में, भेदों में शुभ-अशुभ दोनों ध्यानों का पूर्ण समावेश होता है । कोई भी वस्तु की परिभाषा उस पदार्थ के स पूर्ण अवयवों को ग्रहण न करे तो उसे सही

परिभाषा नहीं कह सकते । जैन आगमानुसार ध्यान के चार प्रकार है उसमें दो आत्मा के लिये अहितकर है, त्याज्य है । दो हितकर है, ग्राह्य है । प्रत्येक ध्यान के आल बन और लक्षण आदि भी आगमों में बताये गयेहक्त ।

सभी प्रकार के ध्यानों को समाविष्ट करने वाली तथा ध्यान और अध्यान के स्वरूप को बताने वाली ध्यान की परिभाषा इस प्रकार है-

गाढाल बण लग्ग , चित्त वुत्त निरेयण झाण ।
सेस न होइ झाण , मउय-मवत्त भम त वा ॥आव.नि.गा.१४८३ ॥

अर्थ- किसी भी गाढ आल बन में लगा हुआ और अक पमान(स्थिर) चित्त **ध्यान** कहा जाता है । शेष जो चित्त की अवस्थाएँ होती है वे ध्यान स्वरूप नहीं है, यथा- १. आल बन रहित शा त चित्त, २. अव्यक्त चित्त, ३. भटकता हुआ चित्त ।

ज थिर अज्झवसाण त झाण , ज चल तय चित्तं ।
त होज्ज भावणा वा अणुप्पेहा वा अहव चिंता ॥ ध्यान शतक-२॥

अर्थ- जो स्थिर अध्यवसाय है वह ध्यान है और जो चल अध्यवसाय है वह चित्त है । जो कि भावना स्वरूप, अनुप्रेक्षा स्वरूप व अन्य कोई चिंता स्वरूप भी हो सकते हक्त ।

इन दोनों परिभाषाओं में शुभ या अशुभ दोनों प्रकार के ध्यानों का समावेश हो जाता है तथा ध्यान और अध्यान अवस्था का भी स्पष्टीकरण हो जाता है ।

सार- शुभ या अशुभ जो स्थिर अध्यवसाय अवस्था है वह ध्यान है और अस्थिर च चल अध्यवसाय है वह अध्यान अवस्था है । गाढ आल बन युक्त अवस्था अर्थात् किसी भी एक विषय में तल्लीन अवस्था है तो ध्यान हो सकता है और जो आल बन रहित या म द (सुस्त-शा त) परिणाम है, अव्यक्त परिणाम(निद्रा आदि के समय) तथा भटकते विचार आदि है, वे कोई भी ध्यान नहीं है । वह आत्मा की अध्यान अवस्था कहलाती है ।

अशुभ विषयों में तल्लीन आत्मा में दो अशुभ ध्यान हो सकते हक्त। शुभ विषयों में तल्लीन-एकाग्र चित्त सावधान आत्मा में दो शुभ ध्यान हो सकते हक्त । अन्य अनेक अवस्थाएँ जो भी है वे अध्यान रूप है । जैसा कि

आवश्यक निर्युक्ति गाथा १४८१-१४८२ में बताया है ।

अध्यान- प्रचला-झपकी आने की अवस्था, गाढ निद्रावस्था, जागृत अवस्था में भी अव्यापारित(अप्रवृत्त शा त-सुस्त) चित्त, अपर्याप्तावस्था, अव्यक्त चित्त(असन्नी के), मूर्च्छित अवस्था, नशे में बेभान अवस्था, ये सब अध्यान अवस्थाएँ हक्त । इन अवस्थाओं में आत्मा का शुभ-अशुभ कोई भी ध्यान नहीं होता है ।

किसी भी विषय में तल्लीन होना और स्थिर होना यही ध्यान है।

चार ध्यान- (१) सुख-दु:ख के स योग-वियोग आदि विषयों में तल्लीन और स्थिर चित्त आर्तध्यान है । (२) अन्य का अहित करने आदि में तल्लीन और स्थिर चित्त रौद्रध्यान है । ये दोनों आत्मोन्नति के ध्यान नहीं है । अत: धर्मध्यान की साधना में इनका सावधानी पूर्वक त्याग किया जाता है । (३) इनके सिवाय आत्म लक्ष्य के किसी भी विषय में चित्त को तल्लीन कर एकाग्र करना धर्मध्यान है । (४) उससे आगे बढकर सूक्ष्म व सूक्ष्मतर विषय में केन्द्रित होने पर शुक्लध्यान की (प्रथम)अवस्था आती है । शुक्लध्यान की आगे की अवस्था केवलज्ञान प्राप्ति के समय एव उसके बाद ही है जो मोक्ष प्राप्ति के कुछ सैक ड पूर्व होती है । वह योग निरोध अवस्था अ तिम ध्यान स्वरूप है । छद्मस्थ और केवली के ध्यान का स्पष्टीकरण इस प्रकार है- दो ध्यान-

अ तोमुहुत्त मेत्त , चित्त-वत्थाण एग वत्थुम्मि ।
छउमत्थाण झाण , जोग निरोहो जिणाण तु ॥३॥

अर्थ- अ तर्मुहूर्त समय मात्र के लिये किसी भी एक वस्तु(तत्त्व) विचार में चित्त का स्थिर हो जाना यह छद्मस्थों का ध्यान है । योग निरोध करते समय एव योग निरोध हो जाने पर जो आत्म अवस्था होती है वह केवलियों का ध्यान है । अ तर्मुहूर्त के बाद छद्मस्थ को कोई भी अन्य चल विचार या अन्य ध्यान हो जाता है । बहुत वस्तुओं के आल बन की अपेक्षा विषयान्तर की अपेक्षा ध्यान ल बे समय तक भी रह सकता है ।- ***'ध्यान शतक,' गाथा-४ ।***

छद्मस्थों का ध्यान शुभ-अशुभ दोनों तरह का हो सकता है और अध्यान अवस्था भी बहुत समय रहती है । केवलियों के योग निरोध अवस्था के समय शुक्लध्यान है शेष दीर्घकालीन उम्र अध्यान अवस्था

हक्त । इस प्रकार ध्यान को समझ कर अशुभ से शुभ ध्यान में आत्मा को तल्लीन, स्थिर करने से धर्मध्यान की साधना की जा सकती है । आत्मा को धर्मध्यान में तल्लीन करने के आल बनभूत विषय- १. आत्मस्वरूप २. कर्मस्वरूप ३. भवभ्रमणस्वरूप ४. कषाय स्वरूप ५. सिद्धस्वरूप ६. स्वदोष दर्शन ७. परगुण दर्शन ८. स्वदृष्टि पुष्टि (आत्म दृष्टि पोषण) ९. परदृष्टि त्याग १०. पुद्गलासक्ति त्याग ११. अकेलेपन का चिंतन- एकत्वानुप्रेक्षा, अनित्यत्व, अशरणत्व, अन्यत्व आदि चिंतन तथा जिनभाषित किसी भी तत्त्व का स्वरूप या भगवदाज्ञा का स्वरूप ।

कोई भी विषय की पस दगी में ध्यान यही रखना चाहिये कि उसमें शारीरिक, इहलौकिक, सुखस योग, दु:खवियोग, पर-अहित रूप, अशुभ विषय नहीं होना चाहिये ।

सार- (१) शुभ ध्यान आत्मा के लिये हितकर है, महान कर्म निर्जरा का हेतु है । (२) अशुभध्यान कर्मब ध का हेतु है । (३) चित्त की च चल अवस्था रूप **अध्यान** भी अनेक कर्मों की वृद्धि करने वाला है । (४) चित्त की शा त या सुप्त अव्यक्त अवस्था रूप **अध्यान** में आश्रव कम होने के साथ निर्जरा भी कम होती है ।

अत: इन चारों अवस्था में प्रथम अवस्था आत्मोन्नति में ज्यादा उपयोगी है । यह समझकर महान निर्जरा के हेतु रूप शुभध्यान अर्थात् धर्मध्यान में आत्मा को जोडने की साधना करनी चाहिये ।

वर्तमान प्रचलित अनेक ध्यान प्रणालियों से प्राप्त अवस्थाएँ वास्तव में अध्यान रूप आत्म अवस्थाएँ है, ऐसा उपरोक्त प्रमाण व विवेचन से समझ में आ सकता है । वह उपरोक्त चौथी अवस्था अर्थात् दूसरी अध्यान अवस्था है । अत: मोक्ष प्राप्ति की साधना में वह विशेष गतिप्रद साधना नहीं हो सकती है ।

ध्यान के साथ सच्ची श्रद्धान- जैनधर्म की दृष्टि से धर्मध्यान की साधना करने वाला मुमुक्षु सम्यग्ज्ञान व सम्यग् श्रद्धान से युक्त होना चाहिये । इसके बिना स पूर्ण स यम-तप राख के उपर गोबर लिपने के समान होता है । भगवद् वाणी के प्रति पूर्ण श्रद्धा के साथ यथाशक्ति भगवदाज्ञा अनुसार श्रावक के १२ व्रत रूप देश विरति धर्म में अथवा स यम रूप सर्वविरति धर्म में साधक का पुरुषार्थ अवश्य होना चाहिये । उसका इन

दोनों प्रकार के धर्मों के प्रति श्रद्धा निष्ठा होनी चाहिये । किन्तु ' ये तो क्रियाका ड हक्त ' ऐसे शब्दों या भावों से आत्मा में उपेक्षावृत्ति नहीं होनी चाहिये ।

श्रावकों के आगमिक विशेषणों में सर्वप्रथम विशेषण 'जीवादि पदार्थों का ज्ञाता' होना बताया गया है । सम्यक्त्व के स्वरूप में भी जीवादि पदार्थों का ज्ञान व श्रद्धान आवश्यक अ ग कहा है ।

ध्यान तप है उसके पूर्व सम्यग्ज्ञान, सम्यग् श्रद्धान एव यथाशक्ति देशविरति या सर्वविरति चारित्र आवश्यक है । इन तीनों (ज्ञान, दर्शन, चारित्र) की उपस्थिति में ही तप-ध्यान आदि, आत्म साधना के अ ग रूप होकर विकास करा सकते हक्त । अत: तप या ध्यान की साधना में अग्रसर होने वाले साधक को अपनी सम्यग् ज्ञान सम्यग् श्रद्धान तथा सम्यग् चारित्र की भूमिका को सुरक्षित रखते हुए आगे बढना चाहिये ।

सामान्य ज्ञान वाले छद्मस्थों की अपेक्षा विशिष्ट ज्ञानी छद्मस्थों के कथन को प्रमाणभूत मानना और विशिष्ट ज्ञानी छद्मस्थों की अपेक्षा सर्वज्ञानी केवलज्ञानी वीतराग भगवान के कथनों को विशेष प्रमाणभूत मानना, यह निर्णय बुद्धि रखकर शुद्ध श्रद्धा के साथ शुद्ध आचरण करना चाहिये ।

चारों ध्यान के जो लक्षण हक्त तथा जो आल बन, अनुप्रेक्षाएँ है, उनमें वर्तते हुए जब स्थिर अवस्था आती है, तब यह ध्यान होता है । उसके पूर्व वह साधक उस ध्यान के आल बनादि की अवस्था में रहता है।

आल बन, लक्षण, भावना आदि के माध्यम से ही जब स्थिर परिणाम अवस्था होती है, तब वह शुभ या अशुभ ध्यान होता है । अत: शुभध्यान अवस्था प्राप्त करने के लिये उनके आल बन आदि में रहते हुए तल्लीन व स्थिर परिणाम होने का अभ्यास करना ही धर्मध्यान की साधना है । आल बन रहित या शरीर के अ ग अथवा श्वास के आल बन की साधना केवल अस्थिर चित्त की अस्थिरता को कम करने का उपाय मात्र है । उससे आगे बढकर किसी भी आत्म अनुप्रेक्षा में, धर्म तत्त्वानुप्रेक्षा में, अध्यवसायों को, चित्त को, स्थिर करना तथा भगवदाज्ञा की अनुप्रेक्षा में, आत्मअहित करने वाले अपायों-आश्रवों की अनुप्रेक्षा में, कर्म विपाक अनुप्रेक्षण में या लोक स्वरूप के अनुप्रेक्षण में आकर, अध्यवसायों को

एकाग्र-स्थिर करना; यह आत्मोन्नति रूप एव तप रूप धर्मध्यान की साधना होती है । इस प्रकार समझपूर्वक धर्मध्यान की तप साधना करना ही श्रेयस्कर है ।

ध्यान की अन्य कोई परिभाषा करना शुद्ध नहीं कहा जा सकता। क्यों कि यदि **मन को निश्चेष्ट करना ध्यान कहा जाय** तो वह आर्तध्यान में कैसे लागू होगा और धर्मध्यान, रौद्रध्यान कैसा होगा । ये भी तो ध्यान ही हक्त ।

अत: ध्यान की अन्य कोई परिभाषा जो इन आगमोक्त चारों ध्यान में पूर्ण घटित नहीं हो सकती, वह परिभाषा अध्यान स्वरूप ही कहलायेगी ।

अध्यान स क्षेप में दो प्रकार का है- शा त सुप्त चित्त अवस्था और च चल चित्त अवस्था । अन्य परिभाषाओं वाले प्रचलित ध्यान भी इन अध्यानों में समाविष्ट होते हक्त ।

आगम निरपेक्ष होकर कोई उसे पाँचवाँ ध्यान कह दे अथवा वास्तविक ध्यान यही है शेष सब चारों अध्यान है ऐसा कहे तो यह उसका कथन आगम निरपेक्ष तथा जैनधर्म से निरपेक्ष एव बुद्धि कल्पित कहलायेगा। इसे जैनागम या जैन धर्म के ध्यान के नाम से कहना या समझना भ्रामक होगा ।

जैनधर्म का ध्यान ज्ञानपूर्वक ध्यान है । इसके चार प्रकार है जिसमें शुभ अशुभ दोनों का समावेश है । ये चारों ध्यान चित्त की तल्लीनता व स्थिरता एकाग्रता से उत्पन्न होते हक्त । दो हेय है दो उपादेय है । उन चारों के चार लक्षण है, चार-चार आल बन है । धर्म ध्यान के चार विचय-चिंतन के मुख्य विषय है, चार अनुप्रेक्षा(आत्म भावनाएँ) है, चार आल बन है । चार रुचियाँ हक्त । ये सभी उस ध्यान में पहुँचाने में उपयोगी द्वार हक्त । द्वार में प्रवेश करेगा वही अ दर पहुँचेगा । ये धर्मध्यान के द्वार हक्त । इनमें पहुँचकर साधक जब जिस किसी विषय में तल्लीन-एकाग्र होगा तो वह ध्यान दशा होगी और चल-विचल होगा वह धर्मध्यान के आल बन आदि द्वारों पर रहेगा । ध्यान के अ दर नहीं पहुँचेगा ।

साधु का जीवन ही आत्मसाधना के लिये होता है । उसकी

दिनचर्या के विषय में आगम में बताया है कि प्रथम प्रहर में सदा स्वाध्याय करना और दूसरे प्रहर में ध्यान करना । स्वाध्याय के लिये चार प्रहर कहे हक्त ध्यान के लिये दो प्रहर कहे हक्त । गौतमस्वामी सरीखे गणधर ज्ञानी भी प्रथम प्रहर में स्वाध्याय और दूसरे प्रहर में ध्यान करते थे । इस प्रकार जैनागम तो ज्ञानपूर्वक ध्यान करना ही कहते हक्त और वर्तमान ध्यान पद्धति वाले खाना, सोना शारीरिक कृत्यों का निषेध नहीं कर के स्वाध्याय का निषेध करते हक्त, यह आगम निरपेक्ष मानसवृत्ति है। ज्ञान से ध्यान की शुद्धि व वृद्धि होती है । कषायों से ध्यान की विकृति होती है । कषाय बाह्यवृत्ति से होते हक्त । ज्ञान स्वाध्याय अ तर्मुखी जागृति कारक है, वह ध्यान का सहयोगी है । आगम स्वाध्याय को रागद्वेष का मूलक नहीं कहा जा सकता । भगवदाज्ञा की कोई भी प्रवृत्ति को रागद्वेष नहीं कहा जा सकता । व्यक्तिगत किसी के लिये तो आश्रव के स्थान निर्जरा भूत बन सकते और वह निर्जरा के स्थान से ब ध भी कर सकते हक्त किन्तु सिद्धान्त तो ज्ञान को सदा आगे रखने वाला है । राग द्वेष के मुख्य विषयभूत स्थल इन्द्रिय-विषय, आशा, तृष्णा, हिंसादि पाप हक्त । ये सब त्याज्य है । ज्ञान, स्वाध्याय त्याज्य नहीं किंतु उपादेय है । यथासमय यथायोग्य वृद्धि करने योग्य है, आभ्य तर तप है । यह ध्यान को प्राप्त कराने का आधार है, आल बन है ।

स पूर्ण सार- किसी भी(तत्त्व आदि के) आल बन में तल्लीन और स्थिर चित्त की अवस्था आने पर ध्यान होता है । बिना किसी आल बन का शा त(सुस्त) चित्त या च चल चित्त या सुप्तचित्त अथवा अव्यक्त चित्त ध्यान नहीं कहा जाता है । वह अध्यान है ।

अत: किसी भी धर्म तत्त्व या आत्म तत्त्व के चिन्तन में तल्लीन होकर स्थिर होने का अभ्यास करने पर ध्यान की साधना हो सकती है। आर्त्त, रौद्र के चिन्तनों से निवृत्त होकर धर्म तत्त्व के चिन्तन में आकर स्थिर होने का अभ्यास कर स्थिर हो जाना **धर्मध्यान** कहा जाता है ।

ध्यान के आसपास की तत्त्व विचारणा

गुप्ति- मन, वचन एव काया का निग्रह करना; उन्हें अल्प, अल्पतम प्रवृत्त करना; सहज आवश्यक चिन्तन के सिवाय अन्य स कल्पों का निग्रह करना; मन को अधिक, अधिकतर आत्म वश में करना **मनगुप्ति**

है । वचन प्रयोग करने की उत्पन्न इच्छाओं का निग्रह करना, अल्प या अल्पतम बोलना अथवा अत्य त आवश्यक होने पर ही बोलना अन्यथा मुख पर या वचन पर अत्यधिक लगाम रखना **वचनगुप्ति** है । काया की च चलता, इन्द्रियों की च चलता, खाना, पीना, चलना, फिरना, मौज-सौख, देखना, सुनना आदि अनेक प्रवृत्तियों से उदासीन होकर अल्प, अल्पतम, सीमित काय-प्रवर्तन में अभ्यस्त होना **कायगुप्ति** है ।

समिति- समिति में निग्रह का विषय नहीं है । दिन रात जो भी आवश्यक कर्तव्य करना है, स यम कार्य या योग प्रवर्तन करना है, तो भले ही करते रहो, किन्तु **जय चरे जय चिट्ठे** आदि का पालन करना आवश्यक है । हर प्रवृत्ति यतना-विवेक से करना, चाहे १० घ टे बोलते रहो या १० घ टे चलते रहो या दिन रात सेवा कार्य में लीन रहो, पढना पढाना आदि करते रहो, इन्हें विवेक से एव स यम मर्यादा से करते रहो । इस प्रकार समिति में हर प्रवर्तन में विवेक रखना होता है । इसमें निग्रह की मुख्यता नहीं है।

स्वाध्याय- आगम या आगम कथित तत्त्वों का अध्ययन, स्वाध्याय, क ठस्थ करना, अर्थ समझना, जिज्ञासाओं को पूछकर हल करना, स्वय अनुप्रेक्षण कर अर्थ परमार्थ की उपलब्धि करना, इस प्रकार से उपलब्ध हुए श्रुत या श्रुत नवनीत को यथावसर विश्लेषण कर भव्य जीवों को समझाना, ये वाचना, पृच्छा, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा रूप स्वाध्याय के अ ग हक्त ।

ध्यान- (१) स योग वियोग के गाढतर स कल्प-आर्त्तध्यान है । (२) दूसरों के अनिष्ट के अत्य त स क्लिष्ट स कल्प-रौद्रध्यान है। (३) आत्मलक्षी अनुप्रेक्षाएँ(१२ भावना आदि) या तप स यमोन्नति के अनुप्रेक्षण-धर्मध्यान है। (४) अत्य त शुक्ल, पवित्र एव सूक्ष्मतम आत्म अनुप्रेक्षाएँ करना, अनुप्रेक्षा से आत्मभाव में एकमेकता एव दृढता-स्थिरता की अवस्था होना-शुक्लध्यान है । ये चारों ध्यान और ध्यान की अनुप्रेक्षाएँ, आगम तत्त्व अवागाहन रूप अनुप्रेक्षा से भिन्न हक्त ।

ध्यान और स्वाध्याय- यद्यपि आत्म तत्त्व भी आगम विहित ही है । फिर भी ज्ञान और ज्ञान के परमार्थ का अनुप्रेक्षण स्वाध्याय है । स्वाध्याय, धर्म ध्यान का आल बन है किन्तु ध्यान स्वाध्याय के पाँच भेदों से भिन्न अलग तत्त्व, अलग तप और अलग निर्जरा भेद कहा गया है । अत: इन

दोनों की भिन्नता को सही रूप से समझना चाहिये । ऐसे गहन विषय पर परा के अर्थों में उलझने से समझ में नहीं आ सकते ।

पर परा से व्यवहार में कहा जाने वाला **धर्मध्यान** तो धर्माचरण के लिये रूढ है । वैसे ही दूसरे प्रहर का आगम कथित ध्यान भी उन आगमों के अर्थ का चिन्तन मनन अवगाहन के लिये रूढ प्रयोग है, क्यों कि उस दूसरे प्रहर में उत्कालिक सूत्रों का स्वाध्याय करना, गुरु से अर्थ की वाचना लेना और प्रथम प्रहर में किये गये स्वाध्याय के अर्थ परमार्थ का अनुप्रेक्षण करना इत्यादि विधानों से भी वह स्वाध्याय रूप ही ध्यान है । ऐसा आगम उल्लेखों से और स्वाध्याय के कहे गये पाँच भेदों के वर्णन से स्पष्ट है । इसी कारण ध्यान की पोरिसी का दूसरा नाम अनेक जगह **अर्थ-पोरुषी** कहा गया है ।

ध्यान तप जो स्वत त्र है स्वाध्याय से भिन्न है उसे स्वाध्याय की परिभाषा से और पाँचों भेदों से अलग ही समझना होगा ।

ध्यान कब- ध्यान तप की अपेक्षा आगमों में **"पुव्वरत्तावररत्त काल समयय सि धम्म जागरिय जागरमाणे"** तथा **"जो पुव्व रत्तावररत्त काले, स पेहए अप्पगमप्पएण "** आदि वाक्य आये हक्त । इसके अतिरिक्त आगम में ध्यान की अनुप्रेक्षाएँ भी स्वत त्र कही गई है । तात्पर्य यह है कि पुद्गल लक्षी या पर लक्षी अनुप्रेक्षण की तल्लीनता अशुभ ध्यान है और आत्मलक्षी अनुप्रेक्षण की तल्लीनता शुभध्यान है तथा तत्त्वलक्षी तत्त्व निर्णायक अनुप्रेक्षण स्वाध्याय के भेद रूप अनुप्रेक्षा है ।

व्युत्सर्ग- मन वचन काया की स्थूल या शक्य सभी प्रवृत्तियों को समय की मर्यादा करके वोसिरा देना, स घ, समूह और स योगों को वोसिरा देना, शक्य हो जितना सर्वथा त्याग करना **व्युत्सर्ग तप** है । इसमें कायोत्सर्ग का, मौन व्रत का एव एक वस्तु या क्रिया प्रेक्षण का समावेश समझना चाहिये ।

(१) स्वाध्याय या उसके अनुप्रेक्षण रूप ध्यान घंटो तक हो सकते हक्त । (२) व्युत्सर्ग रूप कायोत्सर्ग, मौनव्रत और एक वस्तु प्रेक्षण ये बहुत ल बे समय तक शक्ति अनुसार, स्थिरता-दृढता अनुसार हो सकते हक्त। (३) ध्यान क्षणिक होता है मिनट दो मिनट या उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त (कुछ मिनट) तक ही रह सकता है इसका समय अधिक नहीं है ।

जाप और लोगस्स- जाप और लोगस्स आदि का पुनरावर्तन करना न स्वाध्याय है न व्युत्सर्ग है । यह प्रवर्तन आगम आधार से नहीं किन्तु पर परा मात्र से है जो कि साधक की प्रार भिक स्टेज-अवस्था है ।

नमस्कार या विनय प्रवर्तन मर्यादा से होता है । यथा- गुरु, माता, पिता आदि को प्रणाम, नमन, चरणस्पर्श, व दन एक बार या यथासमय ही उपयुक्त होता है । उसी का कोई रटन करे, बार बार प्रणाम करे, तो अनुपयुक्त होता है । गुण-कीर्तन भी यथासमय एक बार प्रकट रूप से किया जाना उपयुक्त होता है । अत: जाप लोगस्स आदि आगम सम्मत उन्नतशील प्रवर्तन नहीं है अथवा ध्यान आदि रूप भी वास्तव में नहीं है । किन्तु ये जाप, आश्रव त्याग रूप है, प्राथमिक अवस्था रूप है, अथवा स्वाध्याय आदि करने की योग्यता रहित व्यक्ति के लिये धर्माचरण रूप या उसके आल बन रूप है ।

ध्यान आदि के कर्ता और आसन- सामान्य साधुओं का अधिक समय स्वाध्याय और उसके अनुप्रेक्षण रूप ज्ञान-ध्यान में व्यतीत होता है जो कि स्वाध्याय का चौथा प्रकार है ।

छद्मस्थ-तीर्थंकर, गच्छमुक्त जिनकल्प एव प्रतिमाधारी आदि साधकों का अधिक समय व्युत्सर्ग में व्यतीत होता है ।

कायोत्सर्ग, व्युत्सर्ग का ही एक अ ग है । जो विधि रूप से खडे-खडे ही किया जाता है और अपवाद रूप में बेठे, सोए आदि भी हो सकता है ।

स्वाध्याय का अनुप्रेक्षण रूप ध्यान उत्कटुक आसन (खमासमणा देने का आसन) से करना प्रमुख विधि रूप है, शेष आसन सामान्य विधि रूप है ।

ध्यान-पद्मासन, पर्यंकासन, सुखासन, उत्कटुकासन आदि यथायोग्य आसन से किया जा सकता है । स्वाध्याय भी विनय युक्त किसी भी आसन से किया जा सकता है ।

कायोत्सर्ग शब्द काया की मुख्यता से कहा गया है फिर भी वास्तव में तीनों योगों का शक्य व्युत्सर्ग करना उसमें निहित-अ तर्भावित है ऐसा समझना चाहिये ।

एक तप में दूसरा तप- किसी भी तप के साथ अन्य कोई भी तप किया

जाना निषिद्ध नहीं है । यथा- स्वाध्याय करते-करते आत्मध्यान में लीन हो सकते हक्त अथवा कायोत्सर्ग में स्वाध्याय का अनुप्रेक्षण या आत्मलक्षी ध्यान भी हो सकता है किन्तु एक का अस्तित्व दूसरे में एकमेक नहीं कर देना और एक के अभाव में दूसरे का निषेध भी नहीं कर देना । यथा उपवास के साथ पौषध हो सकता है किन्तु बिना पोषध के उपवास नहीं होता है, यह निषेध भी अनुचित्त है और बिना उपवास के पौषध नहीं होता है, यह निषेध भी आगम विरुद्ध है ।

आहार त्याग रूप उपवास भी एक व्रत प्रत्याख्यान या तप है, तो सावद्ययोग त्याग भी एक व्रत है । दोनों साथ में हो सकते हक्त उसका महत्व और नाम भिन्न होता है । किन्तु अलग-अलग होने का निषेध करना, ए का त आग्रह रखना, जिनमार्ग के प्रतिकूल है । जिस साधक को जो रुचि, योग्यता एव अवसर हो वह एक अथवा अनेक धर्मक्रिया या तप आदि साथ में या अलग-अलग कर सकता है । कोई ऊँचे दर्जे की साधना करता है, कोई अन्य दर्जे की । किन्तु श्रद्धान, ज्ञान शुद्ध है, तो उसकी कोई भी दर्जे वाली आगम सम्मत क्रिया को एका त दृष्टि पकड कर खराब या खोटी कह देना या समझ लेना, सही और अनेका तिक दृष्टि नहीं है । किन्तु स कीर्ण एका तिक, आगम निरपेक्ष, दुराग्रहवृत्ति वाली दृष्टि है । समन्वय एव विचारक दृष्टि से, आगम के विशाल अनुप्रेक्षण से, किसी भी व्यक्ति की सही कसौटी तटस्थता-मध्यस्थता के साथ करनी चाहिये । पर परा या एका गी दृष्टि से किसी की कसौटी करना, स्वय का मान, पर परा-आग्रह या स कीर्ण दृष्टिकोण है । जो आत्मा में या अन्य में रागद्वेष की वृद्धि करने वाला होता है, उससे समभाव और परम शा ति में क्षति ही होती है किन्तु वृद्धि नहीं ।

अन्य की अपेक्षा करना उपेक्षा नहीं- दृढयोग या योगाभ्यास आदि अन्य मत का जो भी है, जैन मत में वह व्युत्सर्जन रूप कायोत्सर्ग है । उसी में उन सब का समावेश होता है । सम्यग् ज्ञान, श्रद्धान यदि सुरक्षित है तो तप रूप या अनाश्रव रूप कोई भी क्रिया साधक के लिए हितकर सिद्ध हो सकती है । उसमें किसी को हीन समझना अविवेक होता है ।

आचारा ग श्रुतस्कंध २, अ. १ में विभिन्न प्रकार की सात पिंडेषणाएँ=अभिग्रह कहे हक्त । उनके अ त में कहा है **' जिसको जिसमें**

समाधि हो वह करे किन्तु यह नहीं सोचे कि मैं ही बढिया कर रहा हूँ, दूसरों की अच्छी नहीं है ' । किन्तु यह सोचे कि **'जिसकी जिसमें समाधि रुचि है, वह वही करता है, सभी जिनाज्ञा में उपस्थित हक्त'।**

अत: जिनाज्ञा से बाहर हो उसकी साधना असम्यक् कही जा सकती है किन्तु जिनाज्ञा में रहते हुए कोई किसी भी एक या अनेक साधना को करे, उसे गलत दृष्टि से देखना अच्छा नहीं है ।

अपने स्थान पर आय बिल का महत्व है तो उपवास का महत्व भी अपने स्थान पर ही है ।

अपने स्थान पर स्वाध्याय का महत्व है तो सेवा का महत्व भी कम नहीं है ।

अपने स्थान पर एकल विहार भी दूसरा श्रमण मनोरथ है तो समूह की सारणा एव स रक्षण करने वाले आचार्य के लिये शीघ्र मोक्ष का फल भी कहा गया है ।

आगम में जिनकल्प और अचेलचर्या भी बतायी गयी है तो वस्त्र युक्त रहते हुए भी स यम की आराधना कही गई है । अत: स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग सभी तपों का अपना अलग-अलग महत्व एव अस्तित्व है उसे झुठलाना नहीं चाहिये, चाहे दूसरों का हो या अपना ।

अमिनेष दृष्टि विचारणा- कायोत्सर्ग के लिये जो **अनिमेष दृष्टि** या **एग पोग्गल दिट्ठी** शब्द का प्रयोग आगम में है । उसके लिये दो प्रकार की विचारणा है, **प्रथमपक्ष-** यह 'एग पोग्गल दिट्ठी' शब्द भावात्मक है, उसे चक्षु की अपेक्षा समझना स्थूल और अपूर्ण दृष्टि है । क्यों कि काया का व्युत्सर्ग करना है तो आँख को खुली रखने से कोई तात्पर्य नहीं है । आँखों का खुला रहना अनेक दृष्यों एव विकल्पों में उलझने वाला है ।

अ धेरी रात में स्मशान या कहीं भी गुफा आदि में कायोत्सर्ग करने का और उसमें नाक पाँव या पुद्गल पर दृष्टि रखने का कोई मतलब या अस्तित्व भी नहीं हो सकता है ।

अत: उक्त अनिमेष दृष्टि शब्द से आत्मदृष्टि को एक वस्तु या एक क्रिया पर केन्द्रित कर शेष का व्युत्सर्जन कर देना ऐसा अर्थ समझना चाहिए । आँओं का ब द किया जाना सम्भव है और काया का व्युत्सर्ग करना ही है तो खुली रखने में लाभ क्या है कुछ भी देखने से दृष्टिजा

क्रिया लगेगी ही । अत: यह **एक पुद्गल दृष्टि और अनिमेष दृष्टि** का कथन आत्म आभ्यन्तर भाव से या अ तरमन से निरीक्षण करने की अपेक्षा समझना चाहिए ।

कायोत्सर्ग तो महिनों तक भी किया जा सकता है किन्तु आँखों को अमिनेष खुली रखना अधिक समय तक सम्भव नहीं हो सकता है ।

दूसरा पक्ष- दृष्टि-चक्षु को शक्य केन्द्रित खुली रखकर इधर-उधर देखना-सोचना तो कुछ है ही नहीं स पूर्ण व्यूत्सर्जन ही करना है । फिर आँख खुली रहे उसमें कुछ तकलीफ नहीं है, ब ध करके ज्यादा समय खडे रहना कायोत्सर्ग में रहना या अप्रमत्त रहना शक्य नहीं है क्यों कि आँख ब द होने से प्रमाद आने की, निद्रा आने की शक्यता रहती है जिससे अप्रत्तभाव से स्थिर रहना मुश्किल होता है। दर्शनावरणीय कर्म के उदय से निद्रा आवे तो लम्बे समय में उसकी भी पूर्ण स भावना रहेगी । इससे खडे-खडे गिरने पडने की नौबत भी आ सकेगी । समाधान समन्वय-धारणानुसार गुरुगम से समझना । खास ज्ञानीगम्य ।

रिसर्च क्या ध्यान है ?- रिसर्च रूप अध्ययन प्रणाली को स्वाध्याय के अनुप्रेक्षण रूप चौथे विभाग के समकक्ष ही समझना चाहिए, न कि ग्यारहवें तप के भेद रूप ध्यान में ।

पाँचवाँ आवश्यक- प्रतिक्रमण का पाँचवाँ आवश्यक काय व्युत्सर्ग-कायोत्सर्ग है । उसका मौलिक स्पष्टीकरण श्वासोश्वास में ही कहा गया है अर्थात्-

देवसिक प्रतिक्रमण में-	१०० श्वासोच्छवास
रात्रिक प्रतिक्रमण में -	५० श्वासोच्छवास
पाक्षिक प्रतिक्रमण में-	३०० श्वासोच्छवास
चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में-	५०० श्वासोच्छवास
सा वत्सरिक प्रतिक्रमण में-	१००८ श्वासोच्छवास

लोगस्स का पाठ आगमों में अनेक जगह कायोत्सर्ग के बाद बोलने का स्पष्ट रूप से कहा गया है । यह स्तुति-कीर्तन का पाठ है और कीर्तन को प्रकट में बोलकर के ही उससे भक्ति प्रदर्शित की जाती है । कायोत्सर्ग में लोगस्स बोलने का आगम प्रमाण न होने से एव तर्कस गत भी न होने से श्वासोच्छवास के स्थान पर प्राथमिक स्टेज रूप में बनाई

गई यह पर परा मात्र है, ऐसा समझना चाहिये । इसी कारण क्रान्तिकारी धर्मसिंह जी म.सा ने उस पर परा को परिवर्तित किया था । वह पर परा आज भी अनेक स प्रदायों में प्रचलित है वहाँ लोगस्स का कायोत्सर्ग नहीं किया जाता है और वे मौलिक श्वासोश्वास प्रणाली को भी नहीं समझते हक्त।

सार- सारा श यह है कि समिति अलग है, गुप्ति और व्युत्सर्ग तप में भी कुछ भिन्नता है तो स्वाध्याय का अनुप्रेक्षण और ध्यान का अनुप्रेक्षण भी भिन्न है और स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग तीनों अलग-अलग दसवाँ ग्यारहवाँ बारहवाँ तप है । जाप और लोगस्स आदि के रटन भी एक प्राथमिक स्टेज के लिये चलाई गई पर परा है । इन्हें उदार दृष्टि से समझने का प्रयत्न रखना चाहिये ।

वर्तमान के प्रेक्षाध्यान आदि क्या है- उक्त सभी पहलुओं (स्थलों) का विचार करने पर यह निर्णय आता है कि आजकल (वर्तमान युग) के प्रचलित **प्रेक्षाध्यान निर्विकल्प ध्यान और गोय का ध्यान** आदि व्युत्सर्ग तप में समाविष्ट होते हक्त । उनमें ध्यान शब्द रूढ कर दिया गया है जो कि अशुद्ध है । उन प्राणालियों में मन का वचन का एव काया का व्युत्सर्जन ही सिखाया जाता है । स्वाभाविक चलने वाली कायप्रवृत्ति श्वासोश्वास आदि का प्रेक्षण, आत्मभाव रूप ज्ञाता दृष्टा की वृत्ति से होता है । योगों के त्याग को ही अपेक्षा से कायोत्सर्ग कहा गया है । इसीलिए इसे **योग** या हठयोग की स ज्ञा दी जाती है । यह सम्पूर्ण प्रकार का योगत्याग रूप ध्यान, व्युत्सर्ग तप है ।

जिस प्रकार मिथ्यादृष्टि का या विकृत सम्यग्दृष्टि का उपवास, सामायिक, स यम आदि तप और स यम ही कहा जाता है । किन्तु सुदृष्टि नहीं होने से वह मोक्ष का हेतु नहीं होता है । मासखमण तप भी मिथ्यात्वी का तप ही कहा जाता है किन्तु वह मोक्ष हेतुक नहीं होता है । उसी प्रकार वर्तमान में प्रचलित योग व्युत्सर्ग प्रवृत्ति जिसे कि ध्यान का नाम दिया जाता है, जो कि वास्तव में अध्यान ध्यान रहित अवस्था है, उसके साथ यदि सम्यग् तत्त्वज्ञान, आगम श्रद्धान, सम्यग् श्रावक वृत्ति या सम्यग् स यम भाव है तो ही वह उनका व्युत्सर्ग नामक बारहवाँ तप है और मोक्षहेतुक है किन्तु बाल तप नहीं है ।

यदि इन वर्तमान युग के ध्यान कर्ताओं में सम्यग् आगम श्रद्धान एव जिनवाणी की सद्दहणा प्ररूपणा, फरसना आदि शुद्ध नहीं है, श्रावक व्रतों या साधुव्रतों को यथाशक्ति पालन न करके उपेक्षा भाव रखते हक्त, स्वाध्याय ध्यान आदि व्युत्सर्ग के सिवाय तपों का अपने स्थान में महत्व नहीं मानते हक्त, एका त व्युत्सर्ग तप रूप रूढ ध्यान का आग्रह रखकर उसे ही वीतराग भाव प्राप्ति का उपाय मानते हक्त, अन्य तप आदि का महत्व नष्ट करते है या निषेध करते हक्त, तो वे मोक्ष मार्ग की आराधना में नहीं गिने जा सकते ।

श्रावकों में कोई एक दो तीन या कोई १२ व्रत पालन करता है, कोई किसी व्रत प्रत्याख्यान को लेता है, कोई उससे भिन्न अन्य व्रत लेता है । इसी तरह की अनेक भिन्नताओं में भी वे सभी श्रावक ही कहे जा सकते हक्त । साधुओं में भी कोई अध्ययन में रुचि रखता है, कोई अनशन तप में वृद्धि करता है, कोई भिक्षाचरी तो कोई वैयावृत्य में आन द मानता है, कोई स्वाध्याय में, कोई ध्यान में और कोई व्युत्सर्ग कायोत्सर्ग में स्थित रहता है । तो भी सभी का अपने स्थान में महत्व है । सभी अपनी अपनी योग्य रुचि अनुसार आत्मसाधना एव तप निर्जरा में गिने जाते हक्त । इसमें किसी भी साधना को एका त वीतराग मार्ग मान कर अन्य का निषेध करना उचित नहीं है ।

वर्तमान की ध्यान प्राणाली व्युत्सर्ग तप का एक विकृत रूपक है । इसके साधक प्राय: अन्य साधनाओं का महत्व नहीं मानते हक्त तथा व्युत्सर्ग तप तो खडे रहकर शरीर का पूर्ण ममत्व एव स चार के त्याग के स कल्प से होता है किन्तु प्रचलित ध्यान यथेच्छ आसन से होता है पूर्ण शरीर के ममत्व त्याग का स कल्प भी नहीं होता है ।

कायोत्सर्ग तप शरीर निरपेक्ष होता है किन्तु वर्तमान ध्यान शरीर सापेक्ष होता है यह दोनों में अ तर है अत: ये ध्यान प्रवृत्तियाँ ध्यान नहीं है, अध्यान-ध्यान रहित अवस्था है अर्थात् व्युत्सर्ग तप का विकृत परिशेष रूप है, ऐसा समझना चाहिये ।

प्रश्न- कायक्लेश, ध्यान तथा व्युत्सर्ग(कायोत्सर्ग), इन तीनों को बारह तप में पृथक-पृथक स्थान दिया है, तो इन तीनों में क्या भिन्नता है ?

उत्तर- काया को खडे बैठे या सोये किसी भी आसन से स्थिर करने के

पश्चात् एव किसी भी स यम कार्य में लगाने के बाद उत्पन्न असाता वेदना को दीनता, भय आदि से रहित होकर सहन करना, कायक्लेश है।

निर्वात स्थान में जैसे दीपशिखा स्थिर होती है, वैसे मन को स्थिर करना तथा सूर्य की किरणें जैसे बहिर्गोल का च से केन्द्रित की जाती है वैसे ही मन को केन्द्रित करना, ध्यान है ।

मन की स्थिरता तथा केन्द्रीभूतता के अनुरूप वचन काया की एकाग्रता भी ध्यान का अ ग है ।

ध्यान बल से काया की वेदना को पराई समझना, तुच्छ समझना, शरीर से ममत्व हटाकर उसे निश्चेट करना, वैसे ही वचन और मन को भी चेष्टा रहित करना, ऐसी आत्मस्थिति का होना और आत्मस्थ हो जाने के कारण काया की वेदनाओं का आभास नहीं होना अथवा म द अनुभव होना यों तीनों योगों का शक्य अधिकतम व्युत्सर्जन करना यही **कायोत्सर्ग** है ।

प्रश्न- क्या निर्विकल्प ध्यान स भव है ?

जैनागम की दृष्टि से यह अशुद्ध वाक्य पद्धति है । निर्विकल्प होना या उसका अभ्यास करना यह व्युत्सर्ग तप है । जिसमें वचन काया के साथ मन का अर्थात् चिंतन का भी त्याग-व्युत्सर्जन किया जाता है अर्थात् निर्विकल्प होना सम्भव है । क्यों कि व्युत्सर्ग तप भी स भव ही है । किसी भी योग का अ तर पड सकता है । गाढ निद्रा में, बेहोशी में भी मन योग का अ तर पडता ही है । आत्म अध्यवसाय तो अरूपी है वे तो सदा शाश्वत रहते हक्त । किन्तु मन तो पुद्गल परिणामी और विरह स्वभावी है । अत: निर्विकल्प साधना का निषेध नहीं करना चाहिये ।

निर्विकल्प साधना ध्यान नहीं किन्तु ध्यान से आगे की साधना है । ध्यान ग्यारहवाँ तप है और यह निर्विकल्प साधना व्युत्सर्ग रूप बारहवाँ तप है ।

जिस प्रकार जिन मत से भिन्न तापस आदि का एक महीने का या दो महीने का स थारा भी आगम में पादपोपगमन स थारा कहा जाता है, वैसे ही जिन मत में श्रद्धा नहीं रखने वालों के उपवास आदि को तप एव व्युत्सर्ग रूप निर्विकल्प साधना को व्युत्सर्ग तप ही कहा जायेगा । किन्तु जिन वचनों में सम्यग् श्रद्धान के अभाव में वे तप मोक्ष साधन रूप

अथवा आराधना रूप नहीं हो सकते क्यों कि सम्यग् दर्शन के बिना समस्त क्रियाएँ अलूणी है, पूर्ण सुफल दायक नहीं हो सकती है ।

पुनश्च- ध्यान सार-

(१) आगम तत्वों की विचारणा अनुप्रेक्षा **स्वाध्याय** है ।

(२) आत्मलक्षी एक विषय में स्थिर चित्त होना **धर्मध्यान** है ।

(३) शुक्लध्यान उसके आगे की सूक्ष्मतम ध्यान अवस्था है ।

(४) चित्त की च चलता ध्यान नहीं है । शून्य शा त चित्त भी ध्यान नहीं है। अव्यक्त चित्त भी ध्यान नहीं है, एकाग्रचित्त ध्यान है ।

(५) निर्विकल्प अवस्था व्युत्सर्ग तप की साधना है ।

(६) वर्तमान के प्रेक्षा ध्यान, निर्विकल्प ध्यान, आदि व्युत्सर्ग तप की साधनाएँ हक्त । इन्हें भ्रम वश ध्यान कहा जाने लगा है । इन साधनाओं के कर्ता आदि यदि सम्यग् ज्ञान, सम्यग् श्रद्धान से युक्त है, व्रत प्रत्याख्यान श्रावक-व्रत, संयमव्रत में श्रद्धावान है, तो उनके व्युत्सर्गता की आराधना मोक्ष साधक होती है । सम्यग् श्रद्धान यदि जिन प्रवचन में नहीं है तो वे समस्त साधनाएँ पूर्ण फलदायी या मोक्ष फलदायी नहीं है । (७) व्युत्सर्ग तप बारहवाँ तप है, वह ध्यान से भी अगले दर्जे का तप है। ध्यान की अपेक्षा कठिन एव दुष्कर भी है, क्यों कि मन दुष्ट, च चल घोडे की उपमा वाला है । (८) मन का वचन का अल्प समय के लिये पूर्ण व्युत्सर्जन किया जाना सम्भव है, काया के स पूर्ण ममत्व का त्याग भी स भव है । काययोग का शक्य व्युत्सर्जन स भव है । सम्पूर्ण व्युत्सर्जन अयोगी अवस्था में होता हक्त।

इस प्रकार यहाँ ध्यान स ब धी जानकारी के साथ अन्य भी सहयोगी जानकारियाँ दी गई है उसका तात्पर्य यही है कि साधक समभाव, तटस्थभाव, अनैका तिक विचारणा के साथ शुद्ध सत्य समझ को प्राप्त करे, प्ररूपण भी विवेकपूर्वक आगमानु मत ही करे तथा आचरण भी सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र से समन्वित तप-ध्यान युक्त श्रेष्ठ आराधना होवे वैसा करे । स क्षेप में इस ध्यान स्वरूप परिशिष्ट के अध्ययन से साधक ध्यान के स ब ध में और जिनाज्ञा की आराधना में सही दृष्टि और सही समझ को प्राप्त कर मोक्षाराधना में सफलता प्राप्त करे । इसी दृष्टिकोण से यहाँ यह प्रास गिक निब ध परिशिष्ट रूप में दिया गया है ।

निबंध-८७

गुणस्थान स्वरूप

जीव की आध्यात्मिक उच्चावच्च अवस्थाओं को गुणस्थान कहते हक्त । ऐसे जीव के गुणस्थान चौदह कहे गये हक्त । जिसमें चौथे गुणस्थान से १४ वें गुणस्थान तक के ग्यारह गुणस्थान वाले जीव उन्नतिशील-प्रगतिशील आत्मस्थान में अवस्थित होते हक्त । शेष एक से तीन गुणस्थान वाले अवनत आत्मस्थान में होते हक्त । उन १४ गुणस्थानों का स्वरुप इस प्रकार है-

(१) मिथ्यात्व गुणस्थान- जो परभव, पुनर्जन्म, कर्म सिद्धा त और जीव का अनादि अस्तित्व नहीं मानता है । **(२)** अठारह प्रकार के पाप, २५ क्रियाएँ एव आठ प्रकार के कर्म का ब ध, उदय आदि नहीं मानता है । **(३)** जो सुदेव, सुगुरु, सुधर्म, सद्शास्त्र-आगम की श्रद्धा नहीं रखता है, स्वछ दता स्वेच्छा से कुदेव, कुगुरु, कुधर्म और कुशास्त्रों की श्रद्धा करता है । **(४)** श्रावक के १२ व्रत एव साधु के पाँच महाव्रतों की, समिति गुप्ति की एव अन्य भी अनेक छोटी-बडी जिनाज्ञाओं की सम्यग् श्रद्धा नहीं करता है ।**(५)** जीव-अजीव, पुण्य-पाप, आश्रव- स वर, निर्जरा, ब ध, मोक्ष, इन तत्त्वों का तीर्थंकर भगवान द्वारा कथित स्वरूप के अनुसार श्रद्धान नहीं करता है ।**(६)** ईश्वर को स सार का कर्ता मानता है । **(७)** यज्ञ, हवन, पशुबली आदि में धर्म मानता है, अन्य भी छोटी-बडी हिंसाकारी सावद्य प्रवृत्तियों को, छः काया के जीवों का स हार करने वाली प्रवृत्तियों को धर्म मानता है । **(८)** जिनेश्वर भगव तों के कथित सिद्धा तों से विपरीत या हीनाधिक प्ररूपणा करता है । **(९)** अनेका तिक सिद्धा तो से हटकर एका त के आग्रह में पडता है । सात नयों का ख्याल नहीं करके दुर्नय में पडता है। **(१०)** कलह, गुस्सा, र जभाव को दीर्घकाल तक टिकाये रखता है । **(११)** किसी भी पापकृत्य में अति आसक्त, गृद्ध, लीन बनता है अर्थात् लोभ, परिग्रह, निंदा (पर परिवाद), माया, झूठ, चोरी एव जीवहिंसा आदि किसी भी पापकृत्य में तल्लीन हो जाता है ।**(१२)** जो जिनेश्वर भगव तो पर, उनके धर्म पर या उनके मार्ग पर चलने वाले धर्मगुरुओं पर द्वेष रखता है इत्यादि। इन उक्त सभी अवस्थाओं वाला जीव व्यवहार से मिथ्यात्व गुणस्थानवर्ती जानना चाहिए ।

निश्चय दृष्टि की अपेक्षा मिथ्यात्व रूप मोहनीय कर्म की प्रकृति के उदय होने से एव उदय रहने से जीव मिथ्यात्व गुणस्थान में रहता है । यह जीव का प्रथम गुणस्थान है । इसमें रहने वाले जीवों की स्थिति की अपेक्षा इसके तीन भ ग है- **१.** अनादि अन त(अभवी जीवों के मिथ्यात्व आश्री) **२.** अनादि सा त(भवी जीवों के मिथ्यात्व आश्री) **३.** सादि सा त(समकित से प्रतिपाती(पडिवाई) की अपेक्षा है) । इस तीसरे भ ग वाले मिथ्यात्वी की स्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त की उत्कृष्ट देशोन अर्द्धपुद्गल परावर्तन की होती है।

इस प्रथम गुणस्थान में मरने या आयुष्य बा धने वाला जीव चार गति में भ्रमण करता है । इस गुणस्थान में वर्तता हुआ जीव कर्मों का विशेष ब ध करता हुआ कर्म वृद्धि और स सार वृद्धि करता है । यह गुणस्थान पाँच अनुत्तर विमान के अतिरिक्त सभी स सारी जीवों में पाया जा सकता है ।

(२) सास्वादन गुणस्थान- जिस जीव ने चौथा गुणस्थान प्राप्त कर लिया है, फिर भी उसमें अथवा तो उससे उपर के किसी भी गुणस्थान में उक्त प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान में कही गई किसी भी व्यवहार की अवस्था को प्राप्त करता है और निश्चय से मिथ्यात्व के उदयाभिमुख होता है, तब वह उन चौथे, पाँचवें आदि गुणस्थानों से गिर कर प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान में जाता है । उस समय चौथे आदि गुणस्थानों से च्युत होकर प्रथम गुणस्थान में पहु चने के बीच का जो क्षणिक काल एव आत्मा की अवस्था है वही दूसरा सास्वादन गुणस्थान है । यथा- वृक्ष से टूटा हुआ फल भूमि पर गिरने के पूर्व जो मार्ग में कुछ समय व्यतीत करता है, वैसी अवस्था दूसरे गुणस्थान की समझनी चाहिये। इस गुणस्थान की उत्कृष्ट स्थिति छः आवलिका की होती है जो एक सेक ड के हजारवें भाग से भी कम स्थिति होती है । इसलिये इस गुणस्थान का अस्तित्व कि चित् मात्र होता है, जो छद्मस्थों के अनुभवगम्य नहीं है । यह गुणस्थान एकेन्द्रियों में नहीं होता है । शेष बेइन्द्रिय आदि असन्नि प चेन्द्रिय पर्यंत के अपर्याप्त में होता है, सन्नी प चेन्द्रिय के पर्याप्त अपर्याप्त दोनों में और चारों गति में होता है ।

(३) मिश्र गुणस्थान- समकित और मिथ्यात्व के मिश्र परिणामों वाली आत्मा की अवस्था को मिश्र गुणस्थान कहा गया है । जैसे- श्रीख ड खट्टे मीठे उभय स्वभाव वाला होता है, उसी प्रकार इस गुणस्थान वाला जिनेश्वर

भगव त के धर्म की भी श्रद्धा रखता है एव जिनेश्वर भगव त के सिद्धा तो से विपरीत सिद्धा तो वाले धर्म की भी श्रद्धा करता है । सभी धर्मों को सु दर एव सही समझता है । ऐसे भोले स्वभाव वाली अनभिज्ञ आत्माओं को यह तीसरा गुणस्थान होता है । यह गुणस्थान भी जघन्य-उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त अर्थात् ४८ मिनट से कम समय तक ही रहता है । उसके बाद आत्मा के वे मिश्र परिणाम मिथ्यात्व में अथवा समकित में परिवर्तित हो जाते हक्त । तात्पर्य यह है कि इस गुणस्थान वाला शुद्ध सम्यक्त्व(सही समझ) के परिणामों में नहीं आवे तो स्वत: प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थान को प्राप्त करता है । यों पुन: कभी अ तर्मुहूर्त के लिये मिश्र गुणस्थान में और फिर ज्यादा समय मिथ्यात्व गुणस्थान में बिताता रहता है ।

यह गुणस्थान मिश्र परिणाम वाला होने से इसमें जीव मरता भी नहीं है एव आयुष्य भी नहीं बा धता है । यह गुणस्थान सन्नी जीवों के पर्याप्तावस्था में ही होता है । पाँच अणुत्तर विमानवासी देवों में यह गुणस्थान नहीं होता है । एकेन्द्रिय विकलेन्द्रियों में भी नहीं होता है । युगलिकों में भी यह गुणस्थान नहीं होता है । यह गुणस्थान अनादि मिथ्यात्वी को नहीं आता है कि तु जिसने एक बार सम्यक्त्व प्राप्त करली है फिर सम्यक्त्व से च्युत हो गया है ऐसे जीव में ही यह गुणस्थान अ तर्मुहूर्त के लिये पाया जा सकता है ।

(४) अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान- पहले गुणस्थान में जो आत्मा की अवस्था रूप लक्षण कहे गए हक्त उन अवगुणों की अवस्थाओं में नहीं रहने वाला इस गुणस्थान को प्राप्त करता है अर्थात् उन उक्त अवगुणों से विपरीत गुणों वाली आत्म अवस्था को व्यवहार की अपेक्षा अविरत सम्यग्दृष्टि गुणस्थान कहा गया है । निश्चय दृष्टि से दर्शन मोहनीय कर्म की तीन प्रकृति एव चारित्र मोह की अन तानुब धी क्रोध मान माया लोभ ये चार; यों कुल ७ प्रकृति के क्षय, उपशम या क्षयोपशम होने पर जीव को यह चौथा गुणस्थान प्राप्त होता है । इस गुणस्थान वाले की सभी प्रकार की समझ एव दृष्टिकोण सम्यग् ही होते हक्त, अत: इसे सम्यगदृष्टि कहा गया है। इस गुणस्थान वाला किसी भी प्रकार के प्रत्याख्यान भावों में परिणत या प्रगतिशील नहीं होता है, केवल सम्यग् श्रद्धान तक ही रहता है । इसलिये इसके सम्यग्दृष्टि गुण के साथ अविरत लग जाने से इसका परिपूर्ण नाम

अविरत सम्यग् दृष्टि गुणस्थान होता है । इस गुणस्थान वाले को सम्यक्त्वी, समकिती, सम्यग्दृष्टि आदि नामों से भी कहा जाता है । इस गुणस्थान को गुण की मुख्यता से सम्यक्त्व या समकित ऐसा कथन भी कर दिया जाता है। यथा- एक बार **समकित** अर्थात् चौथा गुणस्थान आ जाने पर जीव अर्द्ध पुद्गल परावर्तन से ज्यादा स सार में भ्रमण नहीं करता है ।

इस गुणस्थान वाला जिनेश्वर भगव त भाषित सभी सिद्धा तो में ज्ञान, चारित्र, तप रूप सभी प्रवर्तनों में, जीवादि पदार्थों में, सम्यक् सही श्रद्धान रखता है, कथन या प्ररूपण भी सही करता है, हिंसा आदि पापकृत्यों में अति आसक्त नहीं होता है, उन पापजनक प्रवृत्तियों में, छ:काया के आर भजनक प्रवृत्तियों में कभी भी धर्म नहीं मानता है, कषायों को और कलह को दीर्घकालीन नहीं रखता है । इस गुणस्थान में आयुष्य बा धने वाला जीव जघन्य इस भव सहित तीसरे भव में मोक्ष जाता है । उत्कृष्ट १५ वें भव में मोक्ष जाता है । यह गुणस्थान चार गति के सन्नी जीवों के पर्याप्त अपर्याप्त दोनों में होता है ।

निश्चय दृष्टि से इस गुणस्थान में सात प्रकृतियों के क्षय आदि के अनेक विकल्प होते है । क्षय आदि का अर्थ इस प्रकार है- १. **क्षय-** उस प्रकृति की आत्मा में से सत्ता समाप्त हो जाना । २. **उपशम-** उस प्रकृति का उदय रुक जाना, सत्ता में अवरुद्ध रहना । ३. **क्षयोपशम-** उस प्रकृति का प्रदेशोदय होना, विपाकोदय रुकना । ४.**उदय-** उस प्रकृति का विपाकोदय होना उदय कहा जाता है । **पुनश्च-** १. क्षय- सर्वथा क्षय २. उपशम-सर्वथा अनुदय ३. क्षयोपशम-प्रदेशोदय ४. उदय- विपाकोदय ।सात प्रकृतियों से होने वाले विकल्प इस प्रकार है-

१. सात प्रकृति का क्षय- क्षायिक समकित । **२.** सात प्रकृति का उपशम-उपशम समकित ।**३.** छ प्रकृति का क्षय, एक का उदय- क्षायिक वेदक ।**४.** छ प्रकृति का उपशम, एक का उदय-उपशम वेदक । **५.** छ प्रकृति का क्षयोपशम, एक का उदय-क्षयोपशम समकित । **६.** पाँच का क्षयोपशम, एक का उपशम, एक का उदय-क्षयोपशम समकित । **७.** चार का क्षयोपशम, २ का उपशम, एक का उदय-क्षयोपशम समकित । **८.** चार का क्षय, ३ का क्षयोपशम । **९.** पाँच का क्षय, २ का क्षयोपशम । **१०.** छ प्रकृति का क्षय, एक का क्षयोपशम । **११.** चार का क्षय, २ का क्षयोपशम, एक का

वेदन(सूक्ष्म) **१२.**पाँच का क्षय, एक का क्षयोपशम, एक का वेदन(सूक्ष्मतर)। क्रमा क ८ से १२ के ५ भ ग क्षायिक समकित की पूर्व भूमिका के भ ग है, इनमें अन तानुब धी चतुष्क का सर्वथा क्षय नियमत: होता है । स क्षिप्त में, इन सभी भ गों का तीन समकित में समावेश होता है तब उक्त तीसरे भ ग से लेकर १२ वें तक के सभी भ गों का क्षयोपशम समकित में समावेश हो जाता है अर्थात् सातों का क्षय या सातों का उपशम नहीं हो वे सभी भ ग क्षयोपशम समकित के ही दर्जे हक्त ।

इस गुणस्थान में वर्तता हुआ जीव नरक-तिर्यंच का आयुष्य ब ध नहीं करता है, देव या मनुष्य यों दो गति का आयुष्य ब ध कर सकता है अर्थात् इस गुणस्थान वाले नारकी देवता केवल **मनुष्य का** एव तिर्यंच मनुष्य केवल **देवता का** ही आयुष्य ब ध करते हक्त । देव का आयुब ध करने वाले इस गुणस्थानवर्ती मनुष्य तिर्यंच दोनों केवल वैमानिक जाति के देवों का आयुब ध करते हक्त, भवनपति, व्य तर एव ज्योतिषी इन तीन जाति के देवों का आयुष्य नहीं बा धते हक्त । इस गुणस्थान वाला स्त्री वेद और नपु सक वेद का ब ध भी नहीं करता है । केवल पुरुष वेद का ही ब ध करता है ।

इस गुणस्थान की स्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट साधिक ३३ सागरोपम की होती है (६६ सागरोपम कहना भ्रम पूर्ण है) । इतने समय के बाद यह गुणस्थान बदल जाता है अर्थात् वह जीव पाँचवें आदि गुणस्थानों में आगे बढ जाता है अथवा नीचे के गुणस्थानों में चला जाता है । एक भव में यह गुणस्थान हजारों बार आ सकता है और अस ख्य भवों में अस ख्य बार आ सकता है ।

क्षायिक समकित एक बार ही आती है । इसके आने के बाद मनुष्य कोई भी आयुष्य नहीं बा धता है और उसी भव में मोक्ष जाता है । यदि मनुष्य के क्षायिक समकित आने के पहले चारों गति में से किसी गति का आयुष्य ब ध गया हो तो उस गति में जाना ही पडता है । नरक देव में गया हुआ क्षायिक सम्यक्त्वी फिर मनुष्य का भव प्राप्त कर मोक्ष जाता है । मनुष्य तिर्यंच का आयुष्य बा धा हुआ जीव वहाँ जाता है फिर उस भव में देव का आयुष्य बा धता है और देव भव के बाद मनुष्य बन कर मोक्ष जाता है । कि तु इन भवों के बीच में वह क्षायिक समकित कभी बदलती नहीं है अर्थात् एक बार प्राप्त हुई यह समकित मोक्ष पर्यंत सदा शाश्वत रहने वाली

होती है । इस समकित की प्राप्ति केवल मनुष्य गति में ही होती है अन्य तीन गति में नहीं ।

उपशम सम्यक्त्व जीव को एक भव में उत्कृष्ट २ बार एव अनेक भवों में कुल ५ बार ही आ सकती है । क्षयोपशम समकित की अपेक्षा ही यह गुणस्थान एक भव में हजारों बार एव अस ख्य भवों में अस ख्य बार आता है । उपशम समकित वाला ही मिथ्यात्व में जाते समय दूसरा गुणस्थान स्पर्श करता है । क्षयोपशम समकित वाला तो छट्ठे, पाँचवें, चौथे गुणस्थान से सीधा मिथ्यात्व गुणस्थान में जा सकता है और ७ वें से, ११ वें तक के गुणस्थान वाला सीधा चौथे गुणस्थान में जा सकता है ।

(५) देश विरति(श्रावक) गुणस्थान- किसी भी सम्यक्त्व वाला जीव जब सम्यक् श्रद्धा के साथ व्रत प्रत्याख्यान की रुचि वाला होता है, कुछ न कुछ व्रत प्रत्याख्यान धारण करता है, पापों का देशत: त्याग करता है, उसे व्यवहार से पाँचवाँ देश विरति गुणस्थान प्राप्त होता है । इस गुणस्थान वाले को श्रावक या श्रमणोपासक कहा जाता है।

निश्चय दृष्टि से मोहनीय कर्म की अप्रत्याख्यानी कषाय चतुष्क रूप चार प्रकृति का क्षय या उपशम अथवा क्षयोपशम होने पर यह गुणस्थान प्राप्त होता है अर्थात् सात प्रकृति चौथे गुणस्थान में कही गई है उनके सहित कुल ११ प्रकृति का क्षय, उपशम अथवा क्षयोपशम होने से यह गुणस्थान प्राप्त होता है ।

इस गुणस्थान वाले में चौथे गुणस्थान वाले सभी लक्षण पाये जाते हक्त, विशेषता यह है कि इसमें व्रत धारण एव प्रत्याख्यान रुचि का विकास होता है । वह श्रावक के १२ व्रतों में से अनुकूलता अनुसार एक या अनेक अथवा सभी व्रतों को धारण करता है । आगे बढकर श्रावक की ११ प्रतिमाएँ धारण करता है । तीन मनोरथ चि तन करता है, दैनिक १४ नियम धारण एव सामायिक करता है; महीने में कम से कम ६ पौषध करता है; जीव अजीव आदि तत्वों का ज्ञाता बनता है; क्रमश: अनेक शास्त्रों में, जिन मत में विशारद, कोविद, बहुश्रुत होकर देवों से भी वाद-विवाद कर विजय प्राप्त करने योग्य बन सकता है और अपने धर्म में ऐसी दृढ आस्था वाला बन जाता है कि देव दानव की स पूर्ण शक्ति से युक्त कष्ट झेलकर भी विचलित नहीं होता है ।

इस गुणस्थानवर्ती जीव अपने जीवन में दीक्षा लेने का सदा मनोरथ रखता है, दीक्षा लेने वालों का हार्दिक सहयोगी होता है एव दीक्षित श्रमण निर्ग्रंथों का हार्दिक स्वागत, भक्ति, विनय, व दन करता है, उनकी पर्युपासना-सेवा करता है, भक्ति और उत्साह के साथ उन्हें स यम योग्य कल्पनीय आहार-पानी, वस्त्र-पात्र, औषध-भेषज, मकान-पाट आदि का निर्दोष दान देकर प्रतिलाभित करता है । श्रमण निर्ग्रंथों को देखते ही, उनके दर्शन होते ही, उसकी आत्मा में प्रसन्नता की लहर व्याप्त हो जाती है । इसलिये इस गुणस्थान वाले को श्रमण+उपासक= श्रमणोपासक इस सार्थक नाम से कहा जाता है।

इस गुणस्थान में मरने वाला या आयुब ध करने वाला केवल वैमानिक देव रूप देवगति को ही प्राप्त करता है ।अन्य किसी भी गति अथवा द डक में नहीं जाता है । वैमानिक में भी १२ देवलोक एव नौ लोका तिक में ही जाता है । यह गुणस्थान जीव को एक भव में उत्कृष्ट अनेक हजार बार एव आठ भव में भी उत्कृष्ट अनेक हजार बार आ सकता है अर्थात् इतनी बार इस गुणस्थान को प्राप्त करना और छोड देना हो सकता है । छोडने में अनेक रास्ते है- १. आगे के गुणस्थानों में जाना २. मिथ्यात्व आदि रूप में नीचे जाना ३.आयु समाप्त हो जाने के कारण स्वत: इस गुणस्थान का छूट जाना और चौथे गुणस्थान का प्राप्त होना । अर्थात् आयु समाप्त हो जाने पर इस गुणस्थान वाला देवलोक में जाता है और वहाँ पाँचवाँ आदि उपर के गुणस्थानों का स्वभाव नहीं होने से देवायुष्य के प्रारंभ होते ही स्वाभाविक चौथा गुणस्थान आ जाता है ।

इस गुणस्थान की स्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त, उत्कृष्ट देशोन करोड पूर्व वर्षों की होती है अर्थात् पूरे भव तक निर तर भी यह गुणस्थान रह सकता है । मनुष्य एव तिर्यंच यों दोनों गति में ही सन्नी जीवों के पर्याप्त में यह गुणस्थान हो सकता है । तिरछे लोक में मनुष्य तिर्यंचों को यह गुणस्थान होता है । मनुष्य की अपेक्षा इस गुणस्थान वाले मनुष्य लोक में स ख्यात होते हक्त और ढाई द्वीप के बाहर के तिर्यंच की अपेक्षा अस ख्य होते हक्त । इस गुणस्थान में आयुष्य बा धने वाला या मरने वाला कम से कम तीन भव(वर्तमान भव सहित) उत्कृष्ट १५ भव करके मोक्ष जाता है ।

(६) प्रमत्त स यत गुणस्थान- जो मनुष्य भावपूर्वक स यम स्वीकार करता

है, जिनशासन में प्रव्रजित होता है, मुनि बनता है और उसके बाद उत्तरोत्तर स यम गुणों का विकास करते हुए भगवदाज्ञा का पालन करता है उसे व्यवहार की अपेक्षा यह छट्ठा प्रमत्त स यत गुणस्थान प्राप्त होता है ।निश्चय दृष्टि से पूर्वोक्त ११ मोहकर्म की प्रकृति एव प्रत्याख्यानावरण चतुष्क यों कुल १५ मोहकर्म की प्रकृति के क्षय या उपशम अथवा क्षयोपशम होने से यह गुणस्थान प्राप्त होता है । व्यवहार की अपेक्षा चौथे गुणस्थान में कहे गये सभी गुणों से तो यह सम्पन्न होता ही है । उन गुणों के अभाव में यह गुणस्थान या उपर के कोई भी गुणस्थान नहीं रहते हक्त ।

यह गुणस्थान और आगे के सभी गुणस्थान केवल मनुष्य गति में ही होते हक्त, शेष तीन गति में नहीं होते । एक जीव को यह गुणस्थान अधिकतम आठ भव में आ सकता है । एक भव में यह गुणस्थान स यम रहित होने की अपेक्षा सैकडों वार आ सकता है और आठ भवों में भी सैकडों बार आ सकता है और अप्रमत्त होने की अपेक्षा हजारों बार आ सकता है । इस गुणस्थान में आयुष्य बा धने वाला एव मरने वाला वैमानिक देव के ३५ स्थानों में उत्पन्न हो सकता है, अन्यत्र कहीं भी उत्पन्न नहीं होता है । इस गुणस्थान में जीव जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन करोड पूर्व वर्ष तक लगातार स्थिर रह सकता है ।

गुण स पन्न श्रमण एव श्रमणियाँ इस गुणस्थान के अधिकारी होते है । शरीर स ब धी प्रमाद रूप प्रवृतियों से युक्त होने के कारण इस गुणस्थान का नाम **प्रमत्त स यत** है । वे प्रवृतियाँ इस प्रकार है- गोचरी लाना, खाना एव मल-मूत्र त्यागना, सोना, वस्त्र-पात्र आदि उपकरणों का एव शरीर का परिकर्म, शुश्रूषा करना आदि ये मुनि जीवन के प्रमाद है । अन्य मद्य, निंदा, विषय, कषाय, विकथा आदि मुनि जीवन के योग्य नहीं है, उन्हे यहाँ नहीं समझना चाहिये । यह गुणस्थान जब भी आता है तो सातवें गुणस्थान में होकर ही आता है । उसके सिवाय कोई भी गुणस्थान वाला सीधा इस गुणस्थान में प्रवेश नहीं करता है ।

इस गुणस्थान वाला पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, रात्रिभोजन त्याग एव अन्य अनेक भगवदाज्ञाओं का पालन करता है, स पूर्ण १८ पापों का त्यागी होता है; किसी भी पाप कार्य की, सावद्य कार्य की, छ: काय जीवों की हिंसामूलक प्रवृतियों की प्रेरणा या प्ररूपणा भी

नहीं करता है, तीन करण तीन योग से छोटी-बडी सभी सावद्य प्रवृतियों का मन-वचन-काया से त्याग करता है, सदा सरल, निष्कपट रहता है, यथासमय स्वाध्याय ध्यान में सदा प्रयत्नशील बना रहता है ।

(७)अप्रमत्त स यत गुणस्थान- छट्ठे गुणस्थान में कहे गये सभी लक्षणों से युक्त जीव जब शरीर और उपकरण स ब धी प्रमाद प्रवृतियों में नहीं होता है अथवा प्रवृतियों के होते हुए भी भावों में निस्पृह रहता है, तप, स्वाध्याय, ध्यान, आत्मचि तन में लीन होता है, आहारस ज्ञा, भयस ज्ञा आदि से रहित होता है, निकेवल आत्मलक्षी परिणामों में वर्तता है तब उस श्रमण को यह सातवाँ अप्रमत्त स यत गुणस्थान प्राप्त होता है । निश्चय दृष्टि से इसमें उक्त १५ प्रकृतियों का क्षय आदि छट्ठे गुणस्थान के समान ही रहता है ।

जीव के स यम भाव में प्रवेश करने पर सर्वप्रथम इसी गुणस्थान की प्राप्ति होती है । उसके बाद ही छट्ठा या आठवाँ गुणस्थान प्राप्त होता है अर्थात् यह गुणस्थान स यम का प्रवेशद्वार है । यह गुणस्थान व्यवहार से श्रमण धर्म स्वीकार करने वालों में होने के अतिरिक्त कदाचित् गृहस्थलि ग में एव अन्य मतावल बी के लि ग-वेशभूषा में भी भावों से हो सकता है ।

इस गुणस्थान की स्थिति प्रार भ में (जीवन में पहली बार आने पर) जघन्य अ तर्मुहूर्त की होती है और बाद में पुन: पुन: आने पर जघन्य एक समय, उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त की होती है। एक भव में यह गुणस्थान सैकडों-हजारों बार आ सकता है अर्थात् यह छट्ठे गुणस्थान में हजारों बार आता जाता रहता है ।

इस गुणस्थान में आयुब ध प्रार भ नहीं किया जाता है। छट्ठे गुणस्थान में प्रार भ किया हो तो इसमें पूर्ण किया जा सकता है । इस अपेक्षा से इसमें आयुब ध और मरने पर गति केवल वैमानिक की ही होती है, जो छट्ठे गुणस्थान के समान है । यह गुणस्थान भी उत्कृष्ट आठ भव में ही आ सकता है । इस गुणस्थान वाला सीधा छट्ठे के अतिरिक्त नीचे के किसी गुणस्थान में नहीं जाता है कि तु आयुष्य समाप्त होने पर सीधा चौथे गुणस्थान में जा सकता है ।

(८) निवृत्ति बादर गुणस्थान - यह गुणस्थान निश्चय दृष्टि से ही आता है, व्यवहार दृष्टि से सात गुणस्थान ही जाने जाते हक्त। अत: शुक्लध्यान एव अपूर्वकरण गुण श्रेणी प्रार भ करने पर इस गुणस्थान की प्राप्ति होती है।

मोहनीय कर्म की जो भी प्रकृति सातवें गुणस्थान तक क्षयोपशम में होती है, वह यहाँ परिवर्तित हो जाती है अर्थात् इस गुणस्थान में मोहकर्म की प्रकृतियों का क्षय या उपशम ही रहता है कि तु क्षयोपशम नहीं रहता । इसलिये इस गुणस्थान में और आगे के गुणस्थानों में क्षयोपशम समकित नहीं होती है । उपशम और क्षायिक दो समकित ही होती है ।

अत: यहाँ से चारित्रमोह कर्म की अपेक्षा दो श्रेणियाँ होती है- १. उपशम श्रेणी २. क्षपक श्रेणी । उपशम श्रेणी करने वाला यथायोग्य प्रकृतियों का उपशम करता हुआ ग्यारहवें गुणस्थान तक बढता है और क्षपक श्रेणी करने वाला यथायोग्य प्रकृतियों का पूर्ण क्षय करता हुआ क्रमश: आगे बढता है किन्तु केवल ग्यारहवाँ गुणस्थान छोडकर सीधा बारहवें गुणस्थान में बढ जाता है ।

इस गुणस्थान में धर्मध्यान ही आगे बढते हुए शुक्लध्यान में बदल जाता है अर्थात् इसी गुणस्थान से शुक्लध्यान प्रार भ होता है। इस गुणस्थान में रहे जीव के हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा इन छ: मोहनीय कर्म की प्रकृतियों का यथाक्रम से क्षय अथवा उपशम होता है।

क्षपकश्रेणी प्रार भ करने वाला उसी भव में मुक्त होता है और उपशम श्रेणी करने वाला उस भव में मुक्त नहीं होता है किन्तु श्रेणी से गिर जाता है । सातवें आदि किसी भी गुणस्थान में पहुँचकर वहाँ की गति को प्राप्त करता है । इस गुणस्थान में और आगे के गुणस्थानों में आयुब ध नहीं होता है, मृत्यु हो सकती है । इस गुणस्थान में मरने वाला पाँच अणुत्तर विमान में ही जाता है । इस गुणस्थान में काल करने वाला जघन्य तीसरे भव में उत्कृष्ट १५ वें भव में मोक्ष जाता है। इस गुणस्थान में काल नहीं करके कोई जीव नीचे के गुणस्थानों में चला जाय तो उत्कृष्ट देशोन अर्द्ध पुद्गल परावर्तन जितना अन तकाल स सार में रह सकता है । यह गुणस्थान एक भव में उत्कृष्ट चार बार और तीन भवों में उत्कृष्ट नौ बार आ सकता है।

इस गुणस्थान वाला श्रेणी चढते समय तो नववें गुणस्थान में ही जाता है पुन: गिरते समय वापिस आने पर सातवें में जा सकता है । अन्य किसी गुणस्थानों में सीधा जाता आता नहीं है । कभी भी काल करे तो उस समय सीधा चौथे गुणस्थान में जा सकता है ।

इस आठवें गुणस्थान का यह स्वरूप तो स्पष्ट समझ में आने जैसा

है किन्तु इस गुणस्थान का और नौवें गुणस्थान का, इनके नामों से मतलब समझने लगें तो कई उलझने और समाधान खडे होते हक्त । अत: उस सूक्ष्मता में सामान्य पाठक को जाने की आवश्यकता नहीं है । वास्तव में इन दोनों के नाम सही पर परागत है या नहीं है ? कभी लिपि प्रमाद से इधर-उधर तो नहीं हुए है ? इत्यादि निर्णय नहीं किया जा सकता । अत: नाम के विवाद में नहीं पडना चाहिये । इस गुणस्थान के प्रार भ में क्षयोपशम समकित समाप्त हो जाती है और समकित मोहनीय का उदय भी रुक जाता है । फिर यथाक्रम से हास्यादि ६ प्रकृतियों का उदय रुकने पर जीव आगे बढता है।

(९) अनिवृत्ति बादर गुणस्थान– हास्यादि ६ प्रकृतियों के पूर्ण क्षय या उपशम हो जाने पर जीव इस गुणस्थान में प्रवेश करता है और यहाँ रहा हुआ जीव तीनों वेद एव स ज्वलन के क्रोध मान माया के उदय को यथाक्रम से रोकता है अर्थात् उनका क्षय अथवा उपशम करता है। अ त में स ज्वलन माया का उदय रुकने पर इस गुणस्थान वाला जीव दसवें गुणस्थान में प्रवेश करता है । शेष इस गुणस्थान का वर्णन आठवें गुणस्थान के वर्णन अनुसार समझ लेना चाहिये ।

(१०) सूक्ष्म स पराय गुणस्थान– स पराय का अर्थ है कषाय । यहाँ स ज्वलन लोभ मात्र अवशेष रहता है, शेष स ज्वलन क्रोध मान माया का उदय समाप्त होने पर जीव नौवें गुणस्थान से दसवें गुणस्थान में प्रवेश करता है । दसवें गुणस्थान के अ तिम समय तक लोभ का उदय रहता है।उसके बाद उपशम श्रेणी वाला उसका उपशम करके ग्यारहवें गुणस्थान में प्रवेश करता है और क्षपक श्रेणी वाला उसका पूर्णतया क्षय करके बारहवें गुणस्थान में प्रवेश करता है । इस गुणस्थान की स्थिति, गति आदि सभी वर्णन आठवें गुणस्थान के समान है, विशेष यह है कि इस गुणस्थान वाला उपर दो गुणस्थान में जा सकता है, ग्यारहवें और बारहवें में । नीचे केवल नौवें में जा सकता है और काल कर जाय तो चौथे गुणस्थान में जाता है ।

यह गुणस्थान जीव को उत्कृष्ट तीन भवों में आ सकता है।एक भव में उत्कृष्ट चार बार और तीन भवों में उत्कृष्ट नौ बार आ सकता है । जिस भव में मोक्ष जाना होता है उस भव में तो एक बार ही आता है। आठवें, नौवें, दसवें गुणस्थान में परिणाम हायमान और वर्धमान दोनों तरह के होते हक्त। श्रेणी से गिरने वालों की अपेक्षा हायमान और श्रेणी चढने वालों की

अपेक्षा वर्धमान परिणाम होते हैं । इस गुणस्थान वाले में ४ ज्ञान, ३ दर्शन= ७ उपयोग हो सकते है किन्तु उपयोग केवल ज्ञानोपयोग अर्थात् साकारोपयोग ही होता है ।

(११) उपशा त मोह गुणस्थान– स ज्वलन लोभ के उपशम होने पर स पूर्ण मोहकर्म का उदय समाप्त हो जाता है । तब उपशम श्रेणी वाला दसवें गुणस्थानवर्ती जीव ग्यारहवें गुणस्थान में प्रवेश करता है । अ तर्मुहूर्त मात्र समय के लिये ही लोभ कषाय का उपशम किया जाता है अत: इस गुणस्थान वाला लोभ कषाय का उपशम समाप्त होने पर अर्थात् उपशम की स्थिति पूर्ण होने पर पुन: उदयाभिमुखी होने से दसवें गुणस्थान में प्रवेश करता है । इस गुणस्थान वाला आगे बारहवें गुणस्थान में नहीं जाता है । इस गुणस्थान वाले में मोह, रागद्वेष आदि नहीं होने से उसे वीतराग कहा जाता है । जिससे उसका पूर्ण नाम उपशा तमोहवीतराग गुणस्थान है।

यह गुणस्थान एक भव में दो बार और उत्कृष्ट दो भव में चार बार आ सकता है । इस गुणस्थान में उपशम समकित और क्षायिक समकित दोनों हो सकती है । इस गुणस्थान के चारित्र को यथाख्यात चारित्र कहा गया है। शेष वर्णन पूर्व के गुणस्थानों के समान है । यहाँ ग्यारह गुणस्थानों में मोहकर्म की अपेक्षा विचार किया गया है अन्य कर्मों का भी यथायोग्य उदय विचार अन्यत्र से जान लेना चाहिये ।

इस ग्यारहवें गुणस्थान में केवल साता वेदनीय कर्म के अतिरिक्त सभी कर्म का ब ध होना रुक जाता है । शाता वेदनीय कर्म भी केवल दो समय की स्थिति वाला ब धता है, जो ब ध नाम मात्र का ही है । इस गुणस्थान में केवल अवस्थित परिणाम ही रहते है । इस गुणस्थान की समय मर्यादा समाप्त होने के बाद हायमान परिणाम होते हक्त उस वक्त दसवाँ गुणस्थान प्रार भ हो जाता है ।

(१२) क्षीण मोह गुणस्थान– दसवें गुणस्थान में रहे हुए क्षपकश्रेणी वाले जीव, लोभ मोह के क्षय होने से मोहनीय कर्म की समस्त प्रकृति क्षय हो जाने पर इस बारहवें गुणस्थान में प्रवेश करते हक्त इसलीये इसे क्षीणमोह गुणस्थान कहा गया है । इस गुणस्थान के अ तिम समय में जीव ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अ तराय कर्म इन तीन अवशिष्ट घातीकर्मों को क्षय करता है ।

इस गुणस्थान की जघन्य उत्कृष्ट अ तर्मुहूर्त की स्थिति होती है; एक समय की स्थिति नहीं होती है । इस गुणस्थान में कोई भी जीव मरता नहीं है । यहाँ केवल वर्धमान परिणाम ही होते हैं । हायमान एव अवस्थित परिणाम नहीं होते हक्त। स्थिति पूर्ण होने पर इस गुणस्थान वाला तेरहवें गुणस्थान में जाता है ।

(१३) सयोगी केवली गुणस्थान- बारहवें गुणस्थान के अ तिम समय में तीन कर्म के क्षय होने पर केवलज्ञान केवलदर्शन प्रकट होते है तब जीव को यह तेरहवा गुणस्थान प्राप्त होता है । इस गुणस्थान वाला सर्वज्ञ-सर्वदर्शी कहा जाता है । इसकी स्थिति जघन्य अ तर्मुहूर्त उत्कृष्ट देशोन क्रोडपूर्व की होती है । इसमें अपेक्षित मन वचन काया का योग प्रवर्तित होता है, अत: इसे सयोगी केवली गुणस्थान कहा गया है । इस गुणस्थान में सामान्य केवली और तीर्थंकर केवली दोनों होते है । ल बी उम्र वाले केवलज्ञान पर्याय में विचरण करते हक्त। मुहूर्त मात्र आयु शेष रहने पर केवली के आयोजीकरण होता है जिसमें मुक्त होने के पूर्व की प्रक्रियाएँ प्रार भ होती है । यथा- जिम्मेदारी के कर्तव्य पूर्ण करना, दूसरों की जिम्मेदारी के कार्य उसके सुपुर्द करना, आवश्यक हो तो केवली समुद्घात करना, पाट आदि प्रत्यर्पणीय चीजें पुन: यथास्थान लौटाना, फिर योग निरोध करना, जिसमें क्रमश: मन वचन काया के योगों का निरोध करना, शैलेषी अवस्था प्राप्त करना ।ये सारी प्रक्रियाएँ इसी गुणस्थान में होती है । योग निरोध जब पूर्ण होता है और शैलेशी अवस्था प्राप्त होती है तब जीव के १३ वें गुणस्थान का समय पूर्ण हो जाता है । इस गुणस्थान में प्राय: अवस्थित परिणाम ही रहते हक्त किन्तु अ तिम समयों के अ तर्मुहूर्त में वर्धमान परिणाम होते हक्त, जिनमें योग निरोध होता है ।

(१४) अयोगी केवली गुणस्थान- तेरहवें गुणस्थान के अ तिम समयों में की जाने वाली प्रक्रियाओं में से योग निरोध क्रिया पूर्ण होकर शैलेषी अवस्था की प्राप्ति होने पर जीव १४ वें गुणस्थान में प्रवेश करता है । इस गुणस्थान में प्रार भ से ही शरीर के दो तिहाई भाग में आत्मप्रदेश अवस्थित हो जाते हक्त, शरीर में उनका क पन भी ब द हो जाता है, श्वासोश्वास क्रिया भी ब ध हो जाती है । इस गुणस्थान में केवल वर्धमान परिणाम होते हक्त । इसकी अ, इ, उ, ऋ, लृ ये पाँच लघु अक्षर उच्चारण जितने समय की स्थिति होती है,

इस स्थिति के पूर्ण होने पर अ तिम समय में चार अघातिकर्मों का क्षय करके, जीव स पूर्णकर्मरहित, निर जन, निराकार, परमात्म स्वरुप को प्राप्त करता है ।

मुक्त होते हुए जीव, चार कर्मों की निर्जरा करते हुए, तीनों शरीरों को छोडते हुए, ऋजुश्रेणि से, अस्पर्शद् गति से साकारोपयोग में वर्तते हुए सिद्ध होता है, तब जीव १४ वें गुणस्थान को भी छोडकर आत्मस्वरूपी सिद्ध अवस्था में सदा के लिये सादि अन त स्थिति में लोकाग्र में अवस्थित हो जाता है । वहाँ सिद्धों के आत्मप्रदेश अ तिम शरीर के अनुसार दो तृतीयाँश भाग की अवगाहना में शरीर स स्थान के घन रूप में अवस्थित रहतेहक्त।

निबंध-८८

पात्र-प्रतिलेखन दो बार

जिन शासन आगमों के आधार पर ही सुरक्षित चल रहा है । हमारे लिए भी आज आगम ही सर्वोपरी प्रमाण भूत है। अपने आपको विद्वान समझने वाले कई लोग अपने मान्य धारणा प्रवृत्ति के मोह-दुराग्रह में आगम प्रमाणों की उपेक्षा करके धारणा, परम्परा और प्रवृत्ति को इतना आधिक महत्त्व दे देते हैं कि उनसे स्वत: आगमों की घोर आशातना हो जाती है एव सिद्धा तों के विपरीत प्ररूपणा का महापाप करते हुए भी वे अपने परम्परा और खोटी पकड़ के मोह दुराग्रह में सामान्य सा सरल विषय को भी समझ ही नहीं पाते हैं। यह भी जीव की अपनी मान कषाय के कारण होने वाली एक दुर्दशा ही है।

प्रतिलेखन साधु समाचारी का एक प्रमुख आचार है। जिसके लिए मौलिक आगम और उनकी व्याख्याओं में स्पष्ट रूप से सुबह शाम दो बार करने का विधान है। भिक्षु को अपने सभी भ ड़ोपकरणों की सुबह शाम दोनों समय प्रतिलेखना करना आवश्यक होता है।

तदनुसार पात्र भी भिक्षु के आवश्यक उपकरण है । उनकी भी दोनों समय प्रतिलेखना करनी चाहिए, इसमें कोई विवाद को स्थान ही नहीं है। साथ ही साधु को जो भी उपकरण अपनी निश्राय में(पास में) रखना हो, वह उसका भण्ड़ोपकरण ही कलाएगा ओर जो भी भण्ड़ोपकरण साधु रखता है, वह शरीर स यम के उपयोग के लिए ही रखता है, उसकी

प्रतिलेखना भी उसे दोनों समय करना आवश्यक समझना चाहिए क्यों कि किसी भी आगम में या उसकी व्याख्या में 'एक बार प्रतिलेखना करना' ऐसा विधान नहीं किया गया है।

कई आगम विपरीत प्रवृतिएँ तो शिथिलाचार एव प्रमाद से प्रार भ हो जाती है और कई अपवाद रूप परिस्थिति से प्रार भ होकर फिर काला तर से पर परा बन जाती है। जिसे कभी भेड़ चाल की वृति वाले दुराग्रह में ड़ालकर सिद्धा त बना देते हैं।

फिर भी न्याय का स्थान रूप हमारे प्रमाण भूत आगम मौजूद है। अतः कभी अव्यवस्था एव उतावल से छूटी हुई शाम की पात्र प्रतिलेखना के लिए प्रमाण दिये जा रहे हैं। तटस्थ विद्वान इन प्रमाणों से सही मूल्या कन करेंगे।

प्रमाणोल्लेख :-

(१) आवश्यक सूत्र- श्रमण सूत्र की तीसरी पाटी और उसकी टीका में पात्र का उल्लेख दो बार प्रतिलेखन में है।

मूलपाठ- 'उभओकाल भ ड़ोवगरणस्स अपड़िलेहणाए.....।'

टीका- तथा उभय काल =प्रथम पश्चिम पोरिषी लक्षण , भण्ड़ोपकरणस्य = पात्र-वस्त्रादे अप्रत्युप्रेक्षणया दुप्रत्युप्रेक्षणया। तत्र अप्रत्युप्रेक्षणया = मूलत एव चक्षुसा अनिरक्षणीया.... इत्यादि।

यहाँ सभी भण्ड़ोपकरणों की दो बार प्रतिलेखना करना, यह विधान किया गया है इसमें पात्र भी है और उनके वस्त्रादि भी है। अतः वस्त्र और पात्र की विधि समान समझना।

आवश्यकसूत्र उभयकाल साधुओं को छः आवश्यक सहित करना आवश्यक होता है। उसके चौथे अध्याय के उक्त मूलपाठ में दो बार प्रतिलेखन का स्पष्ट कथन है और इसकी व्याख्या में आचार्य मलयगिरि ने प्रमुख उपकरणों में वस्त्र-पात्र स्पष्ट कहे हैं। अतः पात्र की प्रतिलेखना भी दोनों समय करना यहाँ स्पष्ट है। इसके लिए विवाद को तनिक भी स्थान हीं है। ***-आव.टीका आचार्य मलयगिरी ।***

(२) व्यवहार सूत्र उद्देशा-८ में अधिक पात्र दूर क्षेत्र से लाने का विधान है। उसके भाष्य में एव टीका में उन पात्रों को भी दो बार प्रतिलेखन करने का कहा है। भाष्य गाथा-

ओम थणमादीण , गहणे उवहिं तहिं पउ ज ति ।
गहिए व पगास मुहे, करेंति पड़िलेह दो काले ॥२४४॥

टीका-अवम थन = अधोमुख कृत्वा प्राणादीन, खोटनेन भूमौ यतनया पातयति। अमु विधि तत्र ग्रहणे प्रयु जति। गृहिते च तानि पात्राणि प्रकाश मुखानि करोति तथा द्वौ कालौ-प्रातः अपरान्हे च प्रत्युप्रेक्षति। अ तिम वाक्य में स्पष्ट कहा कि उन पात्रों को दोनों काल सुबह शाम प्रतिलेखन करते हैं। ***-राजेन्द्र कोष 'पत्त' ४१३५ ।***

यह विधान मर्यादा से अधिक पात्र के लिये है जो काम में नहीं आ रहे हैं, केवल पड़े रहते हैं। इनकी भी दोनों समय प्रतिलेखन करने का स्पष्ट कथन है। एक बार करने का लेश मात्र भी स केत नहीं है। तो उपयोग में आने वाले पात्र के लिए एक बार की प्रतिलेखना का आग्रह और प्ररूपणा मनगढ़ त और शिथिलाचार मूलक है, इसमें कोई स देह नहीं है।

(३) निशीथ सूत्र- उद्देशा-१४ सूत्र-५ की भाष्य गाथा और चूर्णी टीका में भी स्पष्ट लिखा है कि अधिक ग्रहण किये पात्र भिक्षु रास्ते में ले जा रहा हो, उस समय काम में नहीं लेते हुए जाता है फिर भी दो बार प्रतिलेखन करे। ***-गाथा ४५५७ व चूर्णी ।*** इसमें यह कहा गया है कि जिस तरह अपने उपकरणों का दो बार प्रतिलेखन किया जाता है उसी तरह दूसरों के लिये ले जाये जाने वाले इन बाँध कर रखे हुए पात्रों की भी दो बार प्रतिलेखन करे।- ***निशीथ चूर्णी पृ. ४५५ ।***

इतने स्पष्ट १००० वर्ष प्राचीन प्रमाण के आगे अपने काम में आने वाले पात्र की भी एक बार प्रतिलेखन की प्रवृत्ति किसी प्रकार उचित नहीं हो सकती।

(४) निशीथ सूत्र- उद्देशा २ सूत्र ५९ भाष्य गाथा १४२६ के विवेचन में पात्र प्रतिलेखन के काल का वर्णन करते हुए बताया है कि- ***''चरम पोरिसीए सु ओगाह तीए चेव पड़िलेहेउ निक्खिव ति। ततो सेसोवकरण , ततो सज्झाय पट्ठवेंति।*** आगे गाथा १४३६ के विवेचन में ***'जम्हा एते दोषा तम्हा सव्वोवही दुस झ पड़िलेहियव्वो।''***

भावार्थ- चौथी पोरिषी लगते ही पात्रों का प्रतिलेखन करके बा ध कर रखना। फिर शेष उपकरणों की प्रतिलेखन करना। फिर सज्झाय करना।

आगे गाथा १४३६ के विवेचन में कहा है कि जब इतने दोष स भव रहते हैं तो अवश्य ही सभी उपधि की दोनों वक्त प्रतिलेखना करनी चाहिए

॥निशीथ चूर्णि॥

(५) उत्तराध्ययन सूत्र- अध्ययन-२६ गाथा-३७ : चउत्थीए पोरिसीए णिक्खिवित्ताण भायण ।

टीका- चतुर्थ्यां पोरूष्या निक्षिप्य = प्रत्युप्रेक्षणा पूर्वक बध्वा, भाजन = पात्र , तत: स्वाध्याय कुर्यात्।

भावार्थ- चौथी पौरिषी लगने पर भाजनों को पात्रों को प्रतिलेखन करके बाँध कर रखे फिर स्वाध्याय करे।

नोट- ये पाँचों प्रमाण लोकाशाह से भी सेकड़ों वर्षो पूर्व के हैं।

(६) आत्मारामजी म. सा. ने भी उत्तराध्ययन सूत्र अ०२६ गा०३७ में चौथे प्रहर में पात्र प्रतिलेखन करने का लिखा है।

(७) घासीलालजी म. सा. ने भी उत्तराध्ययन सूत्र में शाम को पात्र प्रतिलेखन करने का लिखा है।

(८) कवि अमरचन्दजी म. सा. ने भी श्रमण सूत्र (विवेचन) में पृ. ९५, ९७, १०३ पर तीन जगह पात्र प्रतिलेखन दो बार करने का लिखा है।

(९) ज्ञान गच्छ के आदिकर्ता पूज्य ज्ञानचन्दजी म० सा० की समाचारी न . ३६ में पात्र प्रतिलेखन दो बार करने का लिखा है।

(१०) उन्हीं की निश्रागत पूज्यनीया श्री न दकु वर जी म. सा. की समाचारी धारणा और रिवाज प्राय: दो बार पात्र प्रतिलेखन का है।

(११) हस्तीमलजी म०सा० के स तो की धारणा दो बार पात्र प्रतिलेखन की है।

(१२) श्रमण स घ- के ''सादड़ी सम्मेलन का विधान'' - प्रस्ताव १६ में पात्र प्रतिलेखन दो बार करने का लिखा है। यह छपी हुई पुस्तक में है। पूना सम्मेलन में भी यही निर्णय हुआ है।

(१३) समर्थ स स्मरण (पृ. २८९) - पूज्य बहुश्रुत समर्थमल जी म. सा. ने सादड़ी सम्मेलन के प्रस्ताव न . १६ पर टिप्पणी लिखी वह घीसूलालजी ने समर्थ स स्मरण पृ. २८९ में छपाई है वह इस प्रकार है - प्रस्ताव १६ ''वस्त्र पात्र की दो वक्त प्रतिलेखन करना'' इस प्रस्ताव में सिर्फ वस्त्र-पात्र की प्रतिलेखना करना बताया परन्तु अन्य वस्तुओं की नहीं।

अन्य वस्तुओं की प्रतिलेखना नहीं करना शास्त्र विरुद्ध है। अत: वस्त्र-पात्र के साथ ''पाट बाजोट'' शब्द और जुड़ना चाहिए था तथा दो वक्त के आगे ''पुस्तक पानों की व स्थड़िल भूमि की एक वक्त'' यह होना जरूरी था। इस समीक्षा में बहुश्रुत जी म०सा० ने वस्त्र पात्र, पाट-बाजोट की दो वक्त प्रतिलेखन करने की अपनी मान्यता स्पष्ट की है। अत: उनके नाम से पात्रों की एक वक्त प्रतिलेखन करना कदापि उचित नहीं हो सकता। साथ ही आगम में भ ड़ोपकरण की प्रतिलेखना दो बार करने का ही विधान है एक बार का कोई उल्लेख है ही नहीं। अत: साधु को अपने सभी उपकरणों की दो वक्त ही प्रतिलेखना करनी चाहिए। एक बार प्रतिलेखना को शिथिलाचार एव उत्सूत्र प्ररुपणा समझना चाहिए।

(१४) श्वे० मूर्ति पूजक एव श्वे० तेराप थी साधु समाज भी पात्र प्रतिलेखन दो बार करने के सिद्धा त को मान्य करता है।

इस प्रकार एक बार पात्र प्रतिलेखन करने का वास्तव में कोई सिद्धा त नहीं है, प्रमाण भी नहीं है। अत: यह व्यक्तिगत शिथिलाचार का आग्रह मात्र हैं।

श का समाधान- पात्र रात में काम नहीं आते हैं अत: शाम को प्रतिलेखन नहीं करना चाहिए?

उत्तर- किसी भी शास्त्र में, टीका में, भाष्य में चूर्णी में, विवेचन में, किसी भी आचार्य ने ऐसा लिखा नहीं है कि शाम को पात्र प्रतिलेखन नहीं करना किन्तु पूवाचार्यं तो प्रमाण न .२ व ३ में इसके विपरीत ही लिख रहे हैं कि बिल्कुल काम नहीं आने वाले पात्रों को भी दो वक्त प्रतिलेखन करते हुए ले जाना चाहिए और प्रमाण न .४ निशीथ में बताया कि चौथा प्रहर लगने पर पहले पात्रों की प्रतिलेखना करना, फिर शेष उपकरणों की प्रतिलेखना करके सज्झाय करना। इस तरह के ठोस प्रमाणों के समक्ष ऐसे तर्क का कोई महत्व नहीं है।

प्रवृत्ति की दृष्टि से भी यह तर्क स गत नहीं लगता है- कई साधु अनेक वस्त्र रात को काम में नहीं लेते, बाँध कर रख देते हैं। क बल भी करीब आठ महीना २४ ही घण्टे बाँधकर रखी जाती है। कई स्थिरवास स्थविरों के या बीमार साधुओं के रजोहरण पूँजणी आदि कुछ काम में नहीं आते। 'जमीन-पोंछना' रात को काम नहीं आता। इन सब के दो बार

प्रतिलेखन की प्रवृत्ति और प्ररूपणा चालू है। मु हपति रात में प्रायः एक ही काम आती है शेष २-३ आदि अलग रख दी जाती है तो भी इन सबका एक बार प्रतिलेखन नहीं किया जाता है।

टिप्पण- श्री अ.भा. सुधर्म श्रावक समिति के माननीय अध्यक्ष बम्बई निवासी श्री जशव तभाइ शाह दो बार प्रतिलेखन के प्रमाणों को उचित कहते हैं।

सार- साधु को अपने सभी भ ड़ोपकरणों की सुबह शाम दो बार प्रतिलेखना करनी चाहिए। नहीं करने पर या एक बार करने पर सूत्रोक्त प्रायश्चित्त आता है। परठने की भूमि में तो दिन को देख कर ही परठा जाता है और रात्रि में परठने के लिए शाम को स ध्या समय प्रतिलेखन करने का विधान है। शयन स्थान आदि के उपयोग में आने वाले उपाश्रय के विभाग का दोनों समय प्रमार्जन प्रतिलेखन करना चाहिए।

पुनश्च- (१) शाम को चतुर्थ प्रहर में पात्र प्रतिलेखन करना और (२) पात्र की दो वक्त प्रतिलेखन करना ऐसा अनेक जगह का लिखित प्रमाण है। किन्तु पात्र प्रतिलेखन एक बार करना या शाम को पात्र प्रतिलेखन नहीं करना अथवा अविधि से स क्षेप में ही शाम को पात्र प्रतिलेखन करना, ऐसा कहीं भी नहीं लिखा है अर्थात् इसका कोई लिखित प्रमाण नहीं है।

अतः भूल सुधार कर सही निर्णय करना चाहिए। शाम को पात्र प्रतिलेखन नहीं करने को और अविधि से करने को भगवदाज्ञा का उल्ल घन समझ कर प्रायश्चित्त लेना चाहिए। तथा ऐसी प्ररूपणा करने को आगम विपरीत प्ररूपण का महादोष मानना चाहिए।

प्रतिलेखन सम्बन्धी ज्ञातव्य बार्ते- (१) सूर्योदय होने पर प्रतिलेखन प्रार भ करना ।(२) सर्वप्रथम मुखवस्त्रिका प्रमार्जनिका(गोच्छग) की प्रतिलेखना करना फिर शेष सभी उपधि की प्रतिलेखना करना, (३) पात्र की प्रतिलेखना पौन पोरिषी आने के बाद करना। किन्तु नवकारसी में गोचरी जाना हो तो सुबह ही करना। (४) चौथा प्रहर लगते ही पात्र प्रतिलेखन कर बाँध देना। किन्तु शाम को खाना पीना हो तो उसकी व्यवस्था से करना। (५) सुबह शाम अपने खाने के स्थान की प्रतिलेखना प्रमार्जना करना। (६) शाम को सूर्यास्त के पूर्व परठने की भूमि की प्रतिलेखना करना। (७) प्रतिलेखना मौन पूर्वक एकाग्रचित से करना। शा ति से शास्त्रोक्त विधिपूर्वक ही प्रतिलेखन करना।

निबंध-८९

सूई आदि के उत्तरकरण के सूत्रों का मर्म

(उद्दे.-१, सूत्र : १५ से १८) यद्यपि साधु के लिए अत्यल्प उपधि रखने का विधान है, फिर भी क्षेत्र काल के अनुसार या परिवर्तित शारीरिक स्थितियों के अनुसार कब, कहाँ, किन उपकरणों की आवश्यकता हो जाय और उस समय कदाचित् वहाँ वे उपकरण न मिलें, इस आशय से का टा निकालने के उपकरण या द तशोधनक आदि अन्य उपकरण वर्तमान में भी साथ में रखे जाते हैं।

निशीथ भाष्य गाथा-१४१३-१४१६ तथा बृहत्कल्पभाष्य गा.-४०९६-४०९९ तक आपवादिक परिस्थिति में रखे जाने वाले अनेक औपग्रहिक उपकरण सूचित किये हैं वे गाथाएँ अर्थ सहित उद्देशक १६ सूत्र ३९ के विवेचन में हैं। उन उपकरणों में सूई, कतरणी आदि भी है, चर्म-छत्र द ड़ भी है एव पुस्तकें आदि भी कही गई है। जो आपवादिक परिस्थिति में रखे जा सकते हैं।

ये उत्तरकरण के सूत्र भी परिस्थिति से साथ में रखे हुए औपग्रहिक उपकरण रूप सूई आदि से ही सम्बन्धित है क्यों कि एक दिन के लिये प्रत्यर्पणीय उपकरण तो देखकर और उपयोगी होने पर ही लाया जाता है। कदाचित् भूल हो भी जाय तो उसे लौटाकर अन्य भी लाया जा सकता है। इस प्रकार की प्रत्यर्पणीय सूई, कैंची आदि की नोंक या धार गृहस्थ से करवाना और गुरूमासिक प्रायश्चित्त का पात्र बनाना, ऐसी प्रवृत्ति किसी भी भिक्षु के द्वारा करने की स भावना ही नहीं की जा सकती।

जो उपकरण सदा पास में रहते हैं, वे काम लेते-लेते जब खराब हो जाते हैं, तब उनका ही परिष्कार या सुधार स्वय करना अथवा कभी अन्य से करवाना, आवश्यक हो जाता है, उस समय ही सूत्रोक्त गृहस्थ से उत्तरकरण करवाने रूप परिस्थिति की सम्भावना उत्पन्न होती है। अतः सूत्रनिर्दिष्ट, 'उत्तरकरण' क्षेत्र-काल आदि की अपेक्षा से पास में रखे गये सूई, कैंची, नखछेदनक एव कर्णशोधनक सम्बन्धी ही समझने चाहिए।

आगमों में केवल पात्र के प्रस ग में ही तीन जाति के सिवाय अन्य अनेक जाति के पात्र ग्रहण करने का निषेध है। उसमें केवल धातु के ही निषेध का वर्णन नहीं है किन्तु पत्थर, का च, दा त, सींग, चर्म, वस्त्र, श ख

आदि अनेक जाति का निषेध है, जो केवल पात्र के लिए समझना ही उपर्युक्त है। सभी उपकणों के लिए यह विधान उपर्युक्त नहीं हो सकता। अन्यथा वर्तमान में रखे जाने वाले का च, दाँत, आदि के अनेक उपकरणों का निषेध हो जाएगा।

अतः कभी शरीरोपयोगी औपग्रहिक उपधि या अध्ययन में सहायक सामग्री पेन आदि धातु(लोहे आदि) की भी रखी जा सकती है। यह इन उत्तरकरण सूत्रों और अन्य आगम स्थलों की विचारणा से स्पष्ट होता है। इस विषय को अत्य त स्पष्ट समझने के लिय एक स वाद प्रस्तुत किया जाता है।

निबंध-९०

धातु के उपकरण ग्रहण-धारण स वाद

प्रश्न-१ : क्या साधु को धातु की वस्तु ग्रहण करना कल्पता है ?

उत्तर- हाँ पाट पुस्तक आदि कई चीजों में धातु रहती है और सूई, कैंची भी साधु ले सकता है।

प्रश्न-२ : क्या धातु की चीज रात में रख सकते है ? उत्तर- हाँ पुस्तकें, पाट, अलमारी, लोहे के बाजोट आदि रात में भी रखे जाते हैं।

प्रश्न-३ : क्या गोदरेज की अलमारी साधु उपयोग में लेते हैं ?

उत्तर- हाँ अच्छी तरह से प्रतिलेखन हो सके तो उपयोग में ले सकते हैं। ज्ञान गच्छ के बहुश्रुत समर्थमलजी म॰ सा॰ के इन्दौर चातुर्मास में साधुओं ने भी दो गोदरेज की बड़ी अलमारियाँ रखी थी।

प्रश्न-४ : धातु की चीज रात में रखना परिग्रह है ? विहार में रखना परिग्रह है ?

उत्तर- कोई भी धातु की चीज दिन में रखे तो परिग्रह नहीं और रात में रखे तो परिग्रह है, ऐसा सिद्धा त नहीं बन सकता तथा गाँव में रखे तो परिग्रह नहीं और विहार में रखे तो परिग्रह है ऐसा भी सिद्धा त नहीं बनता क्यों कि ऐसा हो तो फिर सोने-चाँदी के उपकरण आदि भी दिन में और गाँव में रखना सिद्ध होगा जिसका कि उपरोक्त सूत्र पाठों में रखना स्पष्ट निषिद्ध है।

प्रश्न-५ : धातु की चीजे रखेगा तो साधु परिग्रही हो जायेगा ?

उत्तर- कितनी ही धातु की वस्तु वर्तमान में रखी जाना उपर बताया जा चुका है अतः बिना ममत्व मूर्च्छा भाव के शरीर एव स यमोपयोगी अत्यावश्यक उपकरण रखना परिग्रह नहीं हैं। वे उपकरण आवश्यक होने पर ही लिए जाते हैं आवश्यक होने पर ही दिन को, रात को या विहार में रखे जाते हैं बिना आवश्यकता के ममत्व मूर्छा से रखने पर वे उपकरण परिग्रह कहलाएंगे और तभी वह साधु परिग्रही कहलाएगा।

प्रश्न-६ : निशीथ उद्दे॰ ११ में धातु रखने का प्रायश्चित्त है न ?

उत्तर- नहीं। वहाँ धातु या बिना धातु के अनेक तरह के पात्र रखने का प्रायश्चित्त कहा है। पात्र साधु की औधिक उपधि है उसके लिए अनेक शास्त्रों में तीन जाति का होना स्पष्ट कर दिया गया है। अतः तीन के सिवाय धातु या बिना धातु किसी भी तरह का पात्र साधु को नहीं कल्पता है, ऐसा आचारा ग सूत्र में बताया है, उसी का यहाँ प्रायश्चित्त कहा है। यहाँ पर का च, दा त, सींग, श ख, पत्थर, चमड़ा आदि अनेक जाति का निषेध है इसे केवल पात्र के लिए ही समझा जाता है। इसीलिए हाथीदा त, प्लास्टिक, का च, रबर, कागज आदि की अन्य वस्तुएँ रखी जाती है।

प्रश्न-७ : निशीथ उद्दे॰ ७ एव १७ में भी धातु का स ग्रह का निषेध है न ?

उत्तर- वहाँ पर भी कुतुहल और मैथुन भाव के निषेध है जिसमें धातु, अधातु, वस्त्र आदि अनेक चीजों का निषेध है। फिर भी वे चीजें तो रखी ही जाती है। जैसे वहाँ मैथुन प्रस ग से लेख लिखने का प्रायश्चित्त है तो अन्य कार्यो के लिए लिखना ब द नहीं होगा। जैसे विभूषा के लिए वस्त्र रखना या धोना प्रायश्चित्त कहा है तो क्या सर्वथा वस्त्र रखना, धोना निषिद्ध माना जायेगा? नहीं। अर्थात् जितना जिस विषय का निषेध है उतना ही मानना चाहिए।

प्रश्न-८ : निशीथ उद्दे॰ १ में सुई कैंची पड़िहारी कही है ?

उत्तर- साधु के उपकरण दो तरह के होते हैं (१) औधिक और (२) औपग्रहिक। सूई कैंची आदि उसके औपग्रहिक उपकरण में कहे गये हैं, ये आवश्यक होने पर ही लिये जाते हैं और आवश्यकता समाप्त होने पर लौटा दिए जाते हैं। आवश्यकता क्षणिक है तो पड़िहारे लिए जाते हैं और आवश्यकता दीर्घकालीन है तो अपड़िहारे लिए जाते हैं। ऐसे

अपड़िहारे लिए गये उपकरणों का ही उत्तरकरण होता है। पड़िहारे २-४ घण्टों के लिए लाए गये उपकरणों का उत्तरकरण गृस्हथ से कराना नहीं होता है। अतः यहाँ पड़िहारे अपड़िहारे दोनों तरह के सूत्रों के सूत्र चतुष्क दिये गये हैं। इसी कारण यहाँ कहे गये दो उपकरण साधु रखते भी है। (१) दा त शोधनक (२) कान शोधनक। तथा का टे चिंपिए भी रखते हैं। इसलिए सूई, कैंची, कान शोधनक और दा त शोधनक पड़िहारे ही होते हैं ऐसा एका त नहीं हैं। धातु-अधातु का समाधान तो ऊपर किया जा चुका है। निशीथ उद्दे० ५ में पादप्रोंछन एव द ड़ के पड़िहारा विशेषण लगाया हैं तो भी द ड़, लाठी आदि को एव पादप्रोंछन को साधु अपने पास रखते भी है।

प्रश्न-९ : साधु तो अल्प परिग्रही होता है उसे धातु की चीजें रखने का प्रश्न ही क्यों ?

उत्तर- साधु का अनावश्यक तो वस्त्र पात्र आदि रखना भी परिग्रह है और शरीर, स यम व ज्ञान के उपयोगी आवश्यक उपकरण वह औघिक और औपग्रहिक दोनों तरह के रख सकता है। वे उपकरण ममत्व मूर्छा न रखते हुए धातु-अधातु किसी के भी हो बिना मूर्छाभाव के रख सकता हैं क्यों कि शास्त्र में समस्त धातु के उपकरण लेने रखने का निषेध नहीं है अपितु विधान किए गये हैं जिनका ऊपर वर्णन कर दिया गया है और प्रवृत्ति में रखे भी जाते हैं। हाँ सोना-चा दी और सिक्के साधु के लिए पूर्ण रूप से निषिद्ध है।

प्रश्न-१० : धातु की वस्तु तो श्रावक के भी ९ प्रकार के परिग्रह में बताई गई है ?

उत्तर- श्रावक के नव प्रकार के परिग्रह में तो स सार की समस्त वस्तुओं का समावेश कर दिया है फिर भी साधु उनसे मकान, पाट, वस्त्र, पात्र, आहार, शिष्य आदि की याचना कर ग्रहण करता ही है । साधु के लिए तो आवश्यकता और अमूर्छाभाव की शर्त है उसका पालन हो तो परिग्रह नहीं होगा।

प्रश्न-११ : तो फिर साधु धातु की क्या-क्या चीजे रख सकेगा ?

उत्तर- जिनका रखना शरीर स यम एव ज्ञान वृद्धि के लिए आवश्यक हो जाय तो वे ही चीजें अमूर्च्छा भाव से साधु रख सकता है और आवश्यकता समाप्त हो जाने पर उनका त्याग कर देना चाहिए। उसका अन्तिम लक्ष्य तो यही होना चाहिए कि अल्प उपधि वाला और अल्प आवश्यकता 'इच्छा' वाला बनूँ। वह अकारण औपग्रहिक उपकरण बढ़ावे ही नहीं। कारण से

रखे उपकरणों को भी भार भूत प्रमाद रूप समझे एव अपनी शक्ति का विकास कर उपधि पच्चक्खाण और उपधि उणोदरी की श्रेष्ठ साधना को स्वीकार करे।

प्रश्न-१२ : धातु की एक मेख रखे तो भी साधुपणा नहीं रहता है ?

उत्तर- ऊपर बताए अनुसार गोदरेज की अलमारी महीनों और ठाणापति की अपेक्षा वर्षो ही रख ले तो साधुपणा रह सकता है तो एक मेख की बात हो हास्यास्पद ही है। इसमें भी समझना यह है कि अनावश्यक और मूर्च्छा से एक मेख भी रखना परिग्रह हो सकता है और परिग्रह है तो साधुपणा नहीं है। आलमारी आदि वस्तुएँ सामाजिक होती है, साधु उसका उपयोग मात्र करता है ।

प्रश्न-१३ : तो फिर बिना धातु के चश्में आधाकर्मी, क्रीत, अभिहड़, स्थापना आदि दोषों के क्यों लिए जाते है और लिखने की सामग्री के लिए होल्ड़र, स्याही, दवात, पेंसिलें आदि अनेक उपकरण क्यों रखे जाते हैं और पेन के निब आदि चीजें लाना-देना, स्याही बनाना-सुखाना आदि रोज का इतना प्रमाद क्यों बढ़ाया जाता है ? सीधे ही जो बाजार में धातु के चश्मे मिले वे बिना दोष के जांच लेने चाहिए और सीधे ही ए क दो पेन लेकर रख लेने चाहिए। निरर्थक के अनेक दोष, क्रियाएँ और प्रमाद क्यों बढ़ाना चाहिए ?

उत्तर- यह तो समय-समय की उपलब्धि, रिवाज और व्यक्तिगत विवेक पर निर्भर है। हाँ साधक को आगम आज्ञा और हानि-लाभ मिलाकर ही प्रत्येक प्रवृत्ति क्षेत्रकाल अनुसार करनी चाहिए। क्यों कि किसी समय कोई प्रवृत्ति स यम के लिए लाभकारी होती है और काला तर में वही अधिक नुकसान वाली हो जाती है, जबकि दूसरी प्रवृत्ति कम दोष और कम प्रमाद वाली बन जाती है। अतः समय-समय पर हानि-लाभ की विवेक बुद्धि का उपयोग तो रखना ही चाहिए। हाँ इस विवेक निर्णय में आगम आज्ञाओं का पूर्ण समन्वय करना आवश्यक समझना चाहिए अर्थात् परम्परा प्रवृतिएं परिवर्तन की जा सकती है किन्तु आगम विधान विपरीत कुछ भी परिवर्तन नहीं किया जा सकता है। आगम विधान के विपरीत आचरण क्षणिक और परिस्थितिक आपवादिक हो तो उसका प्रायश्चित्त किया जाता है किन्तु उसे परम्परा नहीं बनाई जा सकती। अपेक्षाकृत ज्यादा नुकसान वाली प्रवृत्ति चलाना या जो

परिस्थितिक प्रवृत्ति हो उसका रिवाज चलाना ये दोनों ही अविवेक जन्य अपराध है और उसका आग्रह या प्ररूपण करना महा अपराध है। जैसे कि भण्ड़ोप- करणों के दो बार के प्रतिलेखन के विधान में पात्र के लिए एक बार की परम्परा चलाना और फिर काला तर से एक बार ही करना ऐसी प्ररूपणा करना यह भी महा अपराध है।

सार- **(१)** पड़िहारे कहे गये द त शोधनक, कर्ण शोधनक भी साधु अपने पास रखते हैं। **(२)** बाजोट, अलमारी आदि भी धातु की रखते हैं। **(३)** उत्तरकरण (सुधार कार्य) अपने पास में रखे जाने वाले उपकरणों का ही होता है। क्षणिक लाए उपकरण का सुधार करवाने गृहस्थ के पास नहीं जाना पड़ता है और उसके लिए गुरुमासिक प्रायश्चित्त नहीं किया जाता हैं क्यों कि इतना करे जब तक तो नई सूई आदि जाँच कर लाई जा सकती है। **(४)** साधु को अल्प उपधि वाला होना चाहिए आवश्यक होने पर ही विवेक पूर्वक उपकरण लेने एव रखने चाहिए। **(५)** अनावश्यक उपकरण रखना नहीं और किसी भी उपकरण में ममत्व मूर्छा भाव रखना नहीं। **(६)** कोई भी प्रवृत्ति करने में आगम के मौलिक आधार का एव हानि-लाभ का विवेक अवश्य रखना चाहिए। **(७)** स यम में सादगी की प्रमुखता होने से लकड़ी आदि के उपकरण सामान्य रूप से रखे जा सकते हैं और धातु, दा त, का च आदि के उपकरण तो विशेष परिस्थिति में ही रखे जा सकते हैं। एका त निषेध का आग्रह नहीं समझना चाहिए। **(८)** यों तो सभी औपग्रहिक उपकरण लाना एव रखना भी अपवाद मार्ग रूप ही है। ध्रुव और उत्सर्ग मार्ग से तो औघिक उपधि ही रखनी चाहिए और उसमें भी उणोदरी करते हुए सर्वथा त्यागने की शक्ति का विकास करना चाहिए।

निबंध-९१

नियाग पिंड : कल्पित संवाद

(नित्य गोचरी की चर्चा)

ज्ञान मुनि और सुन्दर मुनि एवं पंडित न्यायचन्द्रजी एक दिन स्थानक में तत्व चर्चा करते हैं । उस चर्चा का विषय है **नियाग पिंड अनाचार का अर्थ निर्णय** ।

ज्ञान मुनि- भंते ! नियाग पिंड नामक तीसरे अनाचार का क्या अर्थ है?

सुन्दर मुनि- महाभाग ! निमंत्रण पूर्वक निश्चय करके किसी घर में नित्य भिक्षार्थ जाकर विशिष्ट पदार्थ ग्रहण करना नियागपिंड **नित्य अग्र पिंड** दोष है ।

ज्ञान मुनि- भंते ! यदि निश्चय किए बिना नित्य जावे तो ?

सुन्दर मुनि- महाभाग ! यदि स्वाभाविक ही स्वेच्छा से साधु किसी के घर किसी भी समय किसी भी दिन भिक्षार्थ चले जाय तो **नियाग** दोष नहीं होता है ।

ज्ञान मुनि- भंते ! क्या आज गोचरी किए घर से कल गोचरी की जा सकती है ?

सुन्दर मुनि- महाभाग ! भिक्षु अनियत चारी एवं अतिथि है अत: उसके कहीं भी किसी के घर में भिक्षार्थ जाने या न जाने का समय नियत नहीं होता है वह सुबह दुपहर, शाम, कल, परसों कभी भी कहीं भी निर्दोष भिक्षा ग्रहण कर सकता है ।

ज्ञान मुनि- भंते ! ऐसा करने पर क्या नित्य पिंड दोष नहीं लगता है ?

सुन्दर मुनि- महाभाग ! एषणा के ४२ दोष में ऐसा कोई दोष ही नहीं बताया गया है ।

ज्ञान मुनि- भंते ! आचारांग सूत्र और निशीथ सूत्र में नित्य पिंड दोष का कथन है एवं प्रायश्चित भी कहा है ।

सुन्दर मुनि- महाभाग! इन दोनों सूत्रो में प्रयुक्त नित्य पिंड तो एक **दान पिंड** रूप दोष है जो वहाँ के मूल पाठ से एवं उसकी व्याख्याओं से स्पष्ट है । वहाँ ऐसे नित्य नियत दान देने वाले कुलों में गोचरी जाने का निषेध है ।

ज्ञान मुनि- भंते ! मुझे तो यही ज्ञात है कि आज गोचरी किए घर में कल गोचरी जाना अनाचार है ।

सुन्दर मुनि- पंडितजी ! आप इस सम्बन्ध में कुछ स्पष्टीकरण करेंगे ?

न्यायचंद्रजी- भंते ! अनाचार अध्ययन में एवं अन्य आगमो में ऐसा कोई अनाचार नहीं कहा गया है और जो **नियाग** नामक अनाचार आया है उसका अर्थ पूर्वाचार्यों ने इस प्रकार किया है ।

(१) दशवैकालिक चूर्णि(अगस्त्यसिंह सूरी) = निमंत्रण पूर्वक नियत करके प्रतिदिन भिक्षा ग्रहण करना **नियाग दोष** है किन्तु स्वाभाविक ही

कभी कहीं प्रतिदिन गोचरी चले जाय तो वह **नियाग** दोष नहीं है । -**चूर्णि**

(२) दशवैकालिक चूर्णि (जिनदास गणि) = नियाग का अर्थ है- नियत करना । जो आदरपूर्वक आमंत्रित करने पर होता है । यथा-भंते ! आप अमुक समय अमुक वस्तु के लिए मेरे घर प्रतिदिन लाभ देना, ऐसा कहने पर उसके घर यथासमय सदा जाना यह **नियाग पिंड** दोष है । किन्तु बिना निमंत्रण स्वाभाविक कहीं प्रतिदिन गोचरी चले जावे तो वह नियाग दोष अनाचार नहीं है । -**चूर्णि** ।

(३) टीकाकार हरिभद्र सूरि ने भी इसी प्रकार का अर्थ किया है ।

(४) दीपिका एवं (५) अवचूरि नामक व्याख्या में भी इसी भाव से सम्मत अर्थ किया गया है । **इस प्रकार सभी प्राचीन आचार्य इसके अर्थ में एक मत है ।**

ज्ञान मुनि- दशवैकालिक सूत्र के छठे अध्ययन में भी 'नियाग' दोष कहा है, उसका क्या तात्पर्य है ?

न्यायचंद्रजी- हाँ भंते ! वहाँ पर नियाग पिंड को ग्रहण करने से उसमें होने वाली हिंसा का अनुमोदन करना बताया है । उससे यह स्पष्ट होता है कि यह दोष आज गोचरी किए घर में कल गोचरी कर लेने मात्र से नहीं लगता है किन्तु नियत निमंत्रण पूर्वक जाने से लगने वाले अनेक दोषों से सम्बन्धित है । तभी सूत्रोक्त हिंसा के अनुमोदन लगने का कथन संगत हो सकता है ।

ज्ञान मुनि- भगवती सूत्र श. ६ उ.१ एवं प्रश्नव्याकरण सूत्र में 'अणाहूय' दोष कहा गया है, उसका क्या अर्थ है ?

न्यायचंद्रजी- हाँ भंते ! वहाँ भी उसकी व्याख्या में बताया गया है कि आमंत्रण पूर्वक किसी के घर में नित्य गोचरी जाना **आहूत दोष** है, इस दोष से रहित आहार ग्रहण करना **अणाहूत** कहा गया है ।

सुन्दर मुनि- यह परम्परा कैसे हो गई कि आज के फरसे घर पर कल आहार पानी नहीं लेना और सुबह के फरसे घर में शाम को भी नहीं जाना?

न्यायचंद्रजी- भंते ! समय समय पर किसी द्रष्टि की प्रमुखता से कई परंपराएँ चल जाती है किन्तु भगवती सूत्र, ठाणांग सूत्र और व्यवहार सूत्र में बताया गया है कि धारणा परंपरा की अपेक्षा आगम प्रमाण को सदा

प्राथमिकता देनी चाहिए । सभी व्याख्याकारों ने एक मत से जो नियाग का अर्थ किया है उससे उक्त परम्परा निराधार ही प्रतीत होती है । प्राचीन काल में ऐसे अर्थ की एवं प्रवृति की परम्परा नहीं थी यह स्पष्ट है । सैकड़ों हजारों श्रमण श्रमणियों का एक साथ विचरण एवं उसके अलग-अलग गोचरी जाने के आगम वर्णनों से भी यही स्पष्टता होती है कि उस समय ऐसी नित्य पिंड दोष मानने की कोई परम्परा नहीं थी ।

अनिकसेन आदि छः मुनि का तीन सिंघाड़ों से देवकी राणी के घर में प्रविष्ट होना भी इसी बात को पुष्ट करता है ।

अर्जुनमाली, धर्मरुचि अणगार आदि के वर्णनों से तथा अनेक अभिग्रह एवं पडिमा धारण पूर्वक गोचरी जाने के विभिन्न श्रमणों के वर्णनों से भी यह स्पष्ट होता है कि ऐसा कोई नियम उस समय नहीं था। फिर भी यदि ऐसे नियम की कल्पना की जाय तो उस समय के विचरण वर्णनों एवं गोचरी के आगम वर्णनों की संगति नहीं हो सकेगी ।

अतः यह स्पष्ट होता है कि बिना निमंत्रण के सहज स्वाभाविक रूप से कभी भी किसी के घर गोचरी जाना कोई स्वतन्त्र दोष नहीं है। न वह अनाचार है और न वह ४२ दोष में है ।

ज्ञान मुनि- भंते ! इस प्रकार हमेशा किसी के घर गोचरी जाने से अनेक दोष लगेंगे और लोगों की भावना ही घट जाएगी ।

सुन्दर मुनि- महाभाग ! लोगों की भावना घटना या बढना तो गोचरी जाने वाले के भाषा, व्यवहार, विवेक आदि पर निर्भर रहता है ।

अनेक एषणा दोषों के लगने में भी गोचरी जाने वाले में विचक्षणता, गवेषणा रूचि एवं अनुभव की कमी का कारण ही प्रमुख होता है । अयोग्य गवेषक के दो दिन से या तीन चार दिन से गोचरी जाने पर भी उसे अनेक दोष लग जाते है । वह सुबह और शाम के घरों को नियत कर देता है । अविवेक और आशक्ति से वस्तुएँ लेता है । इस प्रकार दोषों के लगने का मुख्य कारण है गोचरी जाने वाले की अयोग्यता ।

अतः आगमोक्त गुणों से सम्पन्न योग्य को ही गोचरी का कार्य दिया जाना चाहिए ।

वास्तव में देखा जाय तो योग्य या अयोग्य हर किसी को गोचरी भेजने की जो परम्परा है उसका ही सुधार करना आवश्यक है। उसे

सुधारे बिना आगम से अतिरिक्त अनेकों सैकड़ों नियम भी कर दिए जाय तो भी दोषों से नहीं बचा जा सकता है ।

ज्ञान मुनि- पंडितजी ! कहिए अब क्या समझना चाहिए ?

न्यायचंद्रजी- भंते ! परम्पराएँ कई शुद्ध और कई अशुद्ध चलती ही रहती है और कालांतर से वे अनुपयुक्त भी हो सकती है। यथा-मुहपति हाथ में रखना, डंडा रखना, मूर्ति की प्ररुपणा करना आदि आदि ।

संयम और गवेषणा के आगमिक नियम ही इतने अधिक है कि साधक के लिए उनका भी शुद्ध पालन करना कठिन होता है । फिर अन्य और अनेक अतिरिक्त नये नियम घड़ कर साधक के साधना मय जीवन को और भी क्लिष्ट कर देना उचित नहीं कहा जा सकता। उसकी अपेक्षा तो गोचरी की गवेषणा में ही साधु साध्वी को पूर्ण योग्य बनाने का परिश्रम करना और उसे इतना कुशल कर देना कि आगमोक्त स्पष्ट नियमों और ४२ दोषों के अतिरिक्त कोई भी नियम नहीं घड़ना पड़े । जैसे कि.....

१. आज गये घर में कल नहीं जाना २. सुबह गये घर में शाम को नहीं जाना ३. दर्शनार्थी के घर नहीं जाना ४. बात बात में घर को ही असूजता कर देना ५. अमुक खाद्य पदार्थ नहीं लेना ६. कई पदार्थों को अभक्ष्य कह देना आदि आदि ।

उचित तो यही है कि कब कहाँ किसके घर गोचरी जाना या न जाना और कब कहाँ क्या वस्तु लेना या न लेना यह गवेषक की बुद्धि के निर्णय पर निर्भर होना चाहिए । इतना जिसका विक्कास हो उसे ही गोचरी सुपुर्द करना चाहिए ।

ज्ञान मुनि- भंते ! आचारांग सूत्र में आए नित्यपिंड़ के पाठ का अर्थ दान पिंड कैसे होता है ?

सुन्दर मुनि- महाभाग ! उस सूत्र का अर्थ इस प्रकार है - "साधु अथवा साध्वी जिन घरों के विषय में जाने कि इन घरों में- नित्य भोजन बनाकर सम्पूर्ण दान दिया जाता है, नित्य बनाए गये भोजन का आधा भाग दान दिया जाता है, तीसरा भाग या चौथा अथवा छठा भाग दान दिया जाता है ऐसे नित्य दान के लिए जो प्रसिद्ध हैं उन घरों में भिक्षु गोचरी के लिए न जावे ।"

इस सूत्र से आज के फरसे घर में कल गोचरी नहीं जाने के अर्थ की कल्पना को कोई भी प्रबुद्ध पाठक सत्य नहीं मान सकता ।

इसी प्रकार निशीथ सूत्र में भी इन्हीं दान पिंडों को ग्रहण करने का प्रायश्चित्त कहा गया है ।

इन दोनों सूत्रों में दान पिंड और दान कुल की अपेक्षा ही नित्य पिंड शब्द का प्रयोग है इनसे अन्य मनमाना अर्थ निकालना सर्वथा अनुचित है । इसके अलावा ३२ सूत्र में नित्य पिंड का अन्य कोई कथन है ही नहीं एवं दशवैकालिक सूत्र में प्रयुक्त "नियाग" अनाचार का अर्थ पूर्वाचार्यों की व्याख्याओं से पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है कि- किसी के द्वारा निमंत्रण पूर्वक, आदर पूर्वक, नियत करके, नित्य दिया जाने वाला विशिष्ट भोजन या विशिष्ट पदार्थ **नियाग दोष** युक्त है । स्वाभाविक ही भिक्षु कहीं नित्य चला जाय उसकी कोई निमंत्रणा या नियतता नहीं है तो वह नियाग दोष नहीं है।

ज्ञान मुनि- पूर्वाचार्य भी कितने विद्वान हो गये वे भी तो समझते थे। अब किसी परंपरा को मनमाने परिवर्तन कर देना कैसे उचित होगा ?

न्यायचन्द्रजी- भंते ! किसी भी परम्परा को आगम अनुप्रेक्षण से अथवा आगमाधार को लेकर परिवर्तित करना अनुचित नहीं समझना चाहिए । उसमें किसी का अपमान नहीं होता अपितु आगमों का सन्मान और बहुमान ही होता है । ऐसा समझने पर ही मूर्तिपूजक से अमूर्तिपूजक बनना एवं अन्य अनेक परम्पराओं को छोड़ना उचित कहलाएगा और ऐसा न मानने पर सदा **लोह वाणिया** के समान ही बना रहना हास्यास्पद होगा । अत: आगम एवं उनकी व्याख्याओं के प्रमाण पूर्वक किये गये स्पष्टीकरण के सामने ऐसा तर्क देना केवल भेडचाल का पोषण करने की बुद्धि का सूचक है ।इसलिए ऐसा तर्क प्रबुद्ध आगम प्रेमी को कभी भी नहीं देना चाहिए ।

निबंध-९२

आवश्यक सूत्र संबंधी विशेष संग्रहणीय पाठ

(१) तप एवं उसके अतिचार का पाठ :-

१. नवकारसी, २. पोरषी, ३. दो पोरषी, ४. अभिग्रह, ५. एकासन,

६. एकलठाणा, ७. निवी, ८. आयंबिल, ९. एक उपवास यावत् छ:मासी तप १०. दिवस चरिम प्रत्याख्यान । अपने कर्मों की निर्जरा के लिए इनमें से यथा शक्ति तप करना । तथा मरण समय में आजीवन अनशन- १. भक्त प्रत्याख्यान (चारों आहार और १८ पाप का त्याग) २. इंगिनी संथारा (अन्य के द्वारा सेवा परिचर्या कराने का त्याग) ३. पादपोपगमन संथारा (शरीर की सम्पूर्ण सेवा परिचर्या का एवं ममत्व का त्याग) इन तीनों प्रकार के संथारे में से कोई एक अनशन संथारा धारण करना ।

इन अल्पकालीन एवं आजीवन तपों के मुख्य पाँच अतिचार जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नहीं है । वे इस प्रकार है- १. तपस्या करके इस भव के मान सम्मान सुख समृद्धि की चाहना की हो २. पर भव के मान सम्मान सुख समृद्धि की चाहना की हो ३. अधिक जीने की या यश की चाहना की हो ४. दु:ख से घबराकर जल्दी मरने की चाहना की हो ५. तपस्या के समय में काम भोगों की या इन्द्रिय विषयों की चाहना की हो तथा शक्ति होते हुए भी प्रतिदिन कुछ तप नहीं किया हो एवं अष्टमी चतुदर्शी आदि पर्व दिनों में भी कोई तप न किया हो ।

इन अतिचारों में से मुझे दिवस सम्बन्धी कोई अतिचार लगा हो, तो उसका मैं चिंतन अवलोकन करता हूँ, (तो वह मेरा पाप निष्फल हो, तस्स मिच्छामि दुक्कडं)।

(२) ज्ञान व उसके अतिचार का पाठ(आगमे तिविहे) :-

बारह अंग सूत्र और अन्य अनेक सूत्र रूप श्रुतज्ञान होता है जिसमें वर्तमान में ३२ आगम उपलब्ध माने गये हैं उसके अर्थ रूप में अनेक सूत्रों की व्याख्याएँ- निर्युक्तियाँ भाष्य चूर्णी टीका अनुवाद उपलब्ध है । ३२ आगमों के नाम इस प्रकार है :-

११ अंग सूत्र- १. आचारांग सूत्र २. सूत्रकृतांग सूत्र ३. ठाणांग सूत्र ४. समवायांग सूत्र ५. भगवती सूत्र ६. ज्ञाता धर्म कथा सूत्र ७. उपासक दशा सूत्र ८. अंतकृत दशा सूत्र ९. अणुत्तरोपपातिक सूत्र १०. प्रश्न व्याकरण सूत्र ११. विपाक सूत्र ।

१२. उपांग सूत्र- १. औपपातिक सूत्र २. राजप्रश्नीयसूत्र ३. जीवाभिगम सूत्र ४. प्रज्ञापना सूत्र, ५. जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र ६-७ ज्योतिषगणराज प्रज्ञप्ति सूत्र (सूर्य प्रज्ञप्ति सूत्र, चन्द्र प्रज्ञप्ति सूत्र) ८-१२. उपांग सूत्र

(निरयावलिका कप्पिया, कप्पवडंसिया, पुप्फिया, पुप्फ चूलिया, वाण्हिदसा)

चार छेद सूत्र- १. निशीथ सूत्र २. दशाश्रुत स्कंध सूत्र ३. वृहत्कल्प सूत्र ४. व्यवहार सूत्र ।

चार मूल सूत्र- १. उत्तराध्ययन सूत्र २. दशवैकालिक सूत्र ३. नंदी सूत्र ४. अनुयोग द्वार सूत्र, बत्तीसवाँ आवश्यक सूत्र । इनके मूलपाठ की स्वाध्याय के विषय में मुख्य १४ अतिचार जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नहीं है, वे इस प्रकार है-

१. सूत्र के अक्षर या पद आगे पीछे बोले हो **२.** एक सूत्र पाठ को दूसरे सूत्र में बोला हो **३.** अक्षर कम बोले हो **४.** अक्षर अधिक बोले हों **५.** शब्द कम बोले हो **६.** विनय रहित पढा हो **७.** संयुक्त अक्षर शुद्ध न पढे हो **८.** उच्चारण स्पष्ट न किया हो **९.** अयोग्य को पढाया हो **१०.** अयोग्य रीति से अविनय से ज्ञान ग्रहण किया हो **११.** शास्त्र असमय में पढा हो **१२.** समय पर शास्त्र न पढा हो **१३.** चौतीस अस्वाध्याय में शास्त्र पढा हो **१४.** अस्वाध्याय न हो तो भी प्रमाद वश शास्त्र न पढा हो । इन अतिचारों में से मुझे कोई भी अतिचार लगा हो उससे सम्बन्धी मेरा वह दुष्कृत निष्फल हो (मिच्छामि दुक्कडं)

(३) दर्शन-सम्यक्त्व एवं उसके अतिचार का पाठ(अरिहंतो महदेवो) :-

केवलज्ञान केवलदर्शन से युक्त राग द्वेष रहित वीतराग अरिहंत-तीर्थंकर प्रभू मेरे आराध्य देव है ।

पाँच महाव्रत पाँच आचार, पाँच समिति, तीन गुप्ति, नव वाड सहित ब्रह्मचर्य, पाँच ईन्द्रिय विजय, चार कषाय मुक्ति इन गुणों को धारण करने वाले सभी श्रमण श्रमणी मेरे आराध्य गुरु है।

संवर निर्जरा रूप धर्म अर्थात् सामायिक पौषध एवं त्याग नियम श्रावक व्रत, संयम तप आदि मय धर्म ही मेरा आराध्य धर्म है।

जिनेश्वर भाषित एवं गणधर या पूर्वधर श्रमणों द्वारा रचित आगम ही मेरे श्रद्धा केन्द्र शास्त्र हैं । ऐसी सम्यकत्व की प्रतिज्ञा को मै जीवन भर के लिए धारण करता हूँ ।

मैं जिन भाषित जीवादि तत्वों का ज्ञान बढाऊँगा, ऐसे ही ज्ञानी जनों की संगति करूँगा । अन्य दर्शनियों की-मतावलंबियों की संगति

नहीं करूँगा एवं सम्यकत्व को धारण कर पुन: उसका वमन करके जो मिथ्याद्रष्टि बन गये है, उनकी संगति भी नहीं करूँगा।

इस प्रकार की समकित के पाँच प्रमुख अतिचार जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नहीं है । ये इस प्रकार है- १. भगवान के वचनों में (सूक्ष्म तत्त्वों में) संदेह किया हो २. परमत की प्रभावना चमत्कार देखकर मन आकर्षित हुआ हो ३. धर्म करणी के फल में संदेह हुआ हो ४. परमत की प्रसंसा की हो ५. परमत के सन्यासी का उनके शास्त्र का परिचय सम्पर्क किया हो । इन अतिचारों में से मुझे कोई अतिचार लगा हो तो वह मेरा दुष्कृत निष्फल हो (मिच्छामि दुक्कडं)

(४) तप चिंतन विधि :-

(पाँचवे आवश्यक में - रात्रि प्रतिक्रमण में)

कि तवं पडिवज्जामि, एवं तत्थ विचिंतए ।- *उत्तरा.* २६

छम्मासी तप करना ?..... शक्ति नहीं /अभ्यास नहीं ।

पाँच, चार, तीन, दो मासी तप करना ? शक्ति है किन्तु अवसर नहीं ।

१५,८,७,६,५,४,३, बेला करना ? शक्ति है किन्तु अवसर नहीं ।

उपवास, आयंबिल, निवी करना ? शक्ति है किन्तु अवसर नहीं ।

एकाशन, परिमुढ पोरिषी करना ? शक्ति है किन्तु अवसर नहीं ।

नवकारसी करना? शक्ति है, अवसर है । भाव है ।

ज्ञातव्य- जो तप जीवन में कभी न किया हो उसके लिए कहना कि 'शक्ति नहीं' । जो तप पहले किया है किन्तु आज नहीं करना, उसके लिए कहना कि शक्ति है पण अवसर नहीं और जो तप करना हो उसके उत्तर में कहना कि शक्ति है, अवसर है, भाव है । उसके बाद ही कायोत्सर्ग पूर्ण करना अर्थात् फिर उसके आगे प्रश्न करने की और उत्तर चिंतन करने की आवश्यकता नहीं होती है।

इसके बाद 'णमो अरिहंताणं' के उच्चारण के साथ कायोत्सर्ग खोलना । फिर कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ, चौबीस जिन स्तुति पाठ, उत्कृष्ट गुरु वंदन पाठ.

फिर गुरु रत्नाधिक श्रमण से अथवा स्वयं खड़े होकर विनय सहित प्रत्याख्यान करना ।

निबंध-९३

तीन मथोरथ का विस्तार

(सदा चिंतन मनन वांचन करने के लिये)

आरम्भ परिग्रह तज करी, पंच महाव्रत धार ।
अंतसमय आलोयणा, करूँ संथारो सार । ।१।

१. पहला मनोरथ- मैंने जो द्रव्यादि की मर्यादा रखी है, वह आरम्भ और परिग्रह भी मेरी आत्मा के लिए कर्म बन्ध कराने वाला है । किंतु मैं ऐसी ही परिस्थिति मे फँस गया हूँ । सम्पूर्ण आरम्भ परिग्रह का त्याग नहीं कर पा रहा हूँ इसलिये यह मर्यादा करके संतोष करता हूँ । परन्तु वास्तव में तो मेरा वह दिन धन्य होगा, जिस दिन मैं सम्पूर्ण आरम्भ परिग्रह का त्याग कर निवृत्ति धारण करुँगा । अपना भार **आनन्द** आदि श्रावक के समान पुत्र आदि को संभला कर संपूर्ण समय धर्म साधन में लगा दूंगा, वह दिन मेरे लिए परम मंगलमय एवं धन्य होगा ।

जीवन में वह दिन मुझे जल्दी ही प्राप्त होवे, जिस दिन मैं चौदह प्रकार का आभ्यंतर परिग्रह (क्रोध मान, माया, लोभ, राग, द्वेष, हास्य, भय, रति, अरति, शोक, दुगंछा, वेद, मिथ्यात्व) व नव प्रकार का ब्राह्य परिग्रह (खेत, वत्थु, हिरण्य, सुवर्ण धन, धान्य, द्विपद, चौपद, कुविय आदि) के निमित्त से होने वाले आरम्भ एवं परिग्रह से बिलकुल निवृत्त होउंगा, वह दिन मेरा धन्य होगा ।

यह आरम्भ-परिग्रह सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यग् चारित्र आदि सद्गुणों का ह्रास करने वाला है, राग-द्वेष का वर्द्धक है, विषय कषाय का जनक है, अठारह पापों को बढाने वाला है, दुर्गति का दाता है, अन्तर संसार को बढाने वाला है, अशरण रुप है, अतरण रुप है, निर्ग्रन्थ के लिये निन्दनीय है, चार गति, चौबीस दंडक, चौरासी लाख जीव योनि में परिभ्रमण करा कर दु:ख देने वाला है ।

इस अपवित्र आरभ्म-परिग्रह का मै सर्वथा प्रकार से त्याग करूँगा, छोडूँगा, इससे ममत्व उतारुँगा, इससे अपने को पूर्णत:

अलग करूँगा, वह दिन मेरा धन्य होगा । हे प्रभु ! मुझमें ऐसी आत्म शक्ति प्रकट होवे कि मैं इस आरम्भ और परिग्रह को सर्वथा प्रकार से छोड़ने में सफल हो सकूँ ।

२. दूसरा मनोरथ- जब मैं आरम्भ-परिग्रह से पूर्णत: निवृत्त होकर अठारह ही पापों का तीन करण व तीन योग से जीवन भर के लिये त्याग कर महाव्रत धारण कर संयम अंगीकार करूँगा और सम्पूर्ण आश्रवों को रोक कर तप आदि के द्वारा पूर्वोपार्जित कर्मो को क्षय करने में लगूँगा, वह दिन मेरा धन्य होगा । मेरा मनुष्य भव प्राप्त करना भी पूर्ण सार्थक होगा ।

जिन महात्माओ ने संयम धारण किया है अथवा करने वाले है, वे कोटि-कोटि धन्य है । मैं सयम लेने वालों के कभी बाधक नहीं बनूँगा। हे प्रभु ! मेरी भी संयम लेने की भावना दिनों-दिन बढ़ती जावे, और मेरे परिवार वालों को भी ऐसी सुबुद्धि होवे कि मेरी भावना दृढ़ होते ही एवं आज्ञा मांगते ही शीघ्र-से-शीघ्र आज्ञा दे दें अथवा मेरा इतना दृढ मनोबल हो जावे कि मेरे मार्ग की बाधाएँ स्वत: दूर हो जावे । ऐसी मेरी मनोकामना सफल होवे ।

जिस दिन मैं पाँच महाव्रत, पाँच समिति, तीन गुप्ति, दस यति धर्म, सतरह प्रकार के संयम का यथावत् पालन कर भगवन्त की आज्ञा में विचरण करुँगा, कषायों को कृश करुँगा, परमशांत बनूँगा, वह दिन मेरा परम कल्याणकारी होगा । हे प्रभु ! वह दिन, वह शुभघड़ी मुझे जल्दी से जल्दी प्राप्त होवे कि जब मैं मुनि बनूँ !

३. तीसरा मनोरथ- जो प्राणी जन्मा है सो अवश्य मरेगा । मुझे भी मरना अवश्य है-मौत कब व किस तरह आयेगी इसका कुछ भी पता नहीं है । अत: मेरा वह दिन धन्य होगा कि जब मैं मृत्यु समय को नजदीक आया जानकर संलेखना संथारा के लिए तत्पर होऊंगा । उस समय पूर्ण होश रहते हुए मैं सम्पूर्ण कुटुम्ब परिवार से मोह ममत्व छोड़ कर आत्म भाव में लीन बनूँगा । दूसरे अनेक जगत प्रपंच व जगत व्यवहार की बातों को भूलकर मात्र अपनी आराधना के विचारों में रहूँगा ।

(क) स्वयं सावधानी पूर्वक सम्पूर्ण पापों का त्याग करूँगा । (ख) लिये हुए व्रत पच्चक्खाणों में लगे हुए दोषों की शुद्धि करूँगा । (ग)

सब जीवों से खमत खामणा करूँगा अर्थात् किसी के साथ वैर-विरोध नहीं रखता हुआ सब जीवों को मेरी तरफ से क्षमा कर दूँगा । किसी के प्रति नाराजी भाव को नहीं रखूँगा । पहले की कोई भी नाराजी होगी उसे भी याद करके निकाल दूँगा । इस तरह आत्मा में क्षमा, शान्ति आदि गुणों को धारण करता हुआ धर्म चिन्तन में लीन रहूँगा । अपने पूर्व के लगे पापों की आलोचना, प्रायश्चित्त कर के, आत्म शुद्धि कर, समाधि पूर्वक पंडित मरण को प्राप्त करूँगा । भगवान की आज्ञा का आराधक होऊँगा, वह दिन मेरा धन्य होगा ।

हे प्रभु ! जब मेरा मृत्यु समय नजदीक आ जाय तब मुझे आभास हो जाय कि अब थोड़ी सी अंतिम उमर ही बाकी रही है । अब मुझे पंडित मरण के लिए तैयार हो जाना चाहिए और ऐसा जानकर मैं आजीवन अनशन स्वीकार कर लूँ ।

अंत में हे भगवान ! मेरी यह हार्दिक भावना है कि वह भव, वह दिन, वह समय, मेरी आत्मा को जल्दी प्राप्त होवे, जब मैं आठ कर्म क्षय करके सिद्ध, मु हो जाऊँ । वह समय मेरी आत्मा के लिए परम कल्याणकारी होगा ।

तीन मनोरथ ये कह्या, जो ध्यावे नित मन ।
शिसार वरते सही, पावे शिव सुख धन ॥१॥
पतित उद्धारन नाथ जी, अपनो विरुद्ध विचार ।
भूलचूक सब माहरी, खमजो बारम्बार ॥२॥
छूटूँ पिछला पाप से, नवा न बांधू कोय ।
श्री गुरु देव प्रसाद से, सफल मनोरथ होय ॥३॥
अहो समदृष्टि जीवड़ा, करे कुटुम्ब प्रतिपाल ।
अन्तर्गत न्यारो रहे, ज्यूं धाय खिलावे बाल ॥४॥
धिक् धिक् मेरी आत्मा, सेवे विषय कषाय ।
हे जिनवर तारो मुझे, विनती बारम्बार ॥५॥
आरम्भ परिग्रह कब तजूं, कब लूं महाव्रत धार ।
संथारो धारण करूँ, ये तीन मनोरथ सार ॥६॥

निबंध-९४

चौदह नियम (२५ नियम) का सरल ज्ञान

प्रयोजन -

श्रमणोपासक द्वारा ग्रहण किये हुए व्रत एवं मर्यादाओं को प्रतिदिन अपने दैनिक जीवन का ध्यान रखकर संकुचित करना ही इसका मुख्य प्रयोजन है । आरम्भ-समारम्भ एवं उपभोग-परिभोग के वस्तुओं की जो मर्यादायें आजीवन के व्रतों में की गयी है, उन सभी का प्रतिदिन कार्य में अथवा उपभोग में आना सम्भव नहीं है। अत: उनमें कमी करने का श्रावक का लक्ष्य होना चाहिए । इनसे आत्मा में संतोषवृत्ति आती है एवं पापाश्रव कम हो जाता है । जिससे आत्मा के कर्म बन्धन के अनेक द्वार बंद हो जाते हैं । अगर कल्पना से यह कह दिया जाय कि मेरु पर्वत जितना व्यर्थ का पाप टल जाता है और केवल राई जितना पाप खुला रहता है, तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

प्रतिदिन व्रत पच्चक्खाण की स्मृति होने रहने से एवं आत्मा में त्याग के प्रति रुचि बढ़ते रहने से अशुभ कर्मो की अत्यन्त निर्जरा होती है । अत: श्रावक उपयोगपूर्वक, रूचि एवं शुद्ध समझ पूर्वक इन नियमों को आगे के चौबीस घंटों के लिए अथवा सूर्योदय तक के लिये प्रतिदिन धारण करे । इस प्रकार त्याग के रूप में वृद्धि करते रहने से व्रतों की आराधना एवं अन्तिम समय में पंडित मरण प्राप्त होना बहुत सरल हो जाता है और वह साधक आराधक होकर शीघ्र ही 'मोक्ष' प्राप्त करता है ।

विवेक ज्ञान :- प्रात: काल (सामायिक में अथवा ऐसे ही) नमस्कार मन्त्र, तीन मनोरथ आदि के चिंतन पूर्वक शुभ ध्यान करके इन नियमों को ग्रहण कर लेना चाहिए । नियमों को धारण करते समय यह विवेक रखना आवश्यक है कि 'अमुक-अमुक पाँच सचित्त खाऊँगा', ऐसा नहीं बोल कर यह कहना चाहिये कि पाँच सचित्त उपरांत त्याग अथवा इन पाँच सचित्त के सिवाय खाने का त्याग । इसी तरह सभी नियमों में वाक्य प्रयोग का ध्यान रखना चाहिए ।

धारण किये हुए व्रतों में भूल से या असावधानी से दोष लग जाय

तो उसका 'मिच्छामि दुक्कडं' देना चाहिए । अगर जान-बूझ कर दोष लगाया हो तो गुरु एवं त्यागी महात्माओं के समक्ष आलोचना करके प्रायश्चित लेना चाहिए । श्रेष्ठ तो यही है कि लिये हुए व्रतों का दृढ़ता पूर्वक एवं दोष रहित पालन हो ।

सचित्त दव्व विग्गई, पण्णी तांबूल वत्थ कुसुमेसु ।
वाहण सयण विलेवण, बंभ दिसि ण्हाण भत्तेसु ॥

(१) सचित्त- सचित्त वस्तुएँ जो भी खाने-पीने में आवे उसकी जाति की मर्यादा करना । जैसे हरी-तरकारी, फल, फूल, सौंप, इलायची, मेवे, नमक, जीरा, राई, मेथी, अजवायन, कच्चा पानी इत्यादि ।

सचित्त वस्तु अग्नि से अथवा अन्य किसी से शस्त्र परिणत हो जाने के बाद अचित्त हो जाती है । अगर पूर्ण रूप से शस्त्र परिणत न हुई हो तो उसे भी सचित्त में ही गिनना । मिश्रण की हुई चीज जैसे-पान आदि में जितनी सचित्त वस्तुएं हो ये सब अलग-अलग गिनती करना ।

ध्यान में लेने योग्य विशेष बातें -

१. बीज निकाले बिना सभी फलों के पणे सचित्त में गिनना । बीज भी कभी कच्चे और पक्के दो तरह के होते हैं उनका पूर्ण ध्यान रखना चाहिये ।

२. धूंगारी हुई वनस्पतियाँ तथा सेके हुए भुट्टे (अधूरे पकने से) सचित्त गिनना ।

३. पके फलों का रस निकाल कर व छान कर रखा हो तो कुछ समय बाद अचित्त गिनना ।

४. साफ किये हए चावल को छोड़ कर प्राय: सभी अनाज सचित्त । वे पीसने या अग्नि पर सीजने से अचित्त होवे, परन्तु भीजने से नहीं ।

५. काला नमक को छोड़कर सभी नमक सचित्त । उबाल कर बनाये हो या गर्म किए हों तो अचित्त । पीसने पर तो सचित्त ही रहता है।

६. धाणा के दो टुकड़े हो जाय तो भी सचित्त । पीसे हो तो अचित्त।

७. किसी गीली चीज में नमक जीरा आदि ऊपर से डाले हों तो आधे घन्टे तक सचित्त गिनना और सूखी चीज पर डाले हो तो सचित्त ही रहते हैं ।

नोट : अन्य भी कोई धारणा का स्पष्टीकरण निश्चित किया जा सकता है।

(२) द्रव्य - जितनी चीजें दिन भर में खाने-पीने में आवे उसकी जाति की मर्यादा करना । अर्थात् तैयार चीज की एक जाति गिन लेना फिर उसके किसी तरह खाने की प्रवृत्ति हो । अथवा दूसरा तरीका यह भी है कि जितने तरह से स्वाद पलट कर संयोग मिलाकर खाया जाय उसको ध्यान में रखकर गिनना । चीज गिनने का तरीका सरल है । दवा, पानी को आगार में रख सकते हैं । अन्य भी कोई आगार या धारणा कायम की जा सकती है ।

(३) विगय - महाविगय(मक्खन, शहद) का त्याग करना एवं पाँच विगयों(दूध, दही, घी, तेल, मीठा=शकर-गुड) में से कम से कम एक का त्याग करना । एक का भी त्याग न हो सके तो सब की मर्यादा कर लेना ।

चाय, रसगुल्ला, मावे की चक्की में दो विगय गिनना । गुलाब जामुन में तीन विगय गिनना । दही में से मक्खन नहीं निकाला हो तब तक दही को विगय गिनना । जैसे-राइता, मट्ठा आदि । तेल की कोई भी चीज बनी हो तो उसमें तेल का विगय गिनना, जैसे-साग, अचार, तली चीजें । शक्कर, गुड और इससे बनी चीजें एवं गन्ने का रस ये मीठा के विगय में गिनना । परन्तु जो चीजें शक्कर, गुड के बिना स्वाभाविक मीठी हों तो विगय में नहीं गिनना जैसे-फल, मेवे, खजूर आदि । दही से बने साग कड्डी आदि में दही की विगय नहीं गिनी जाती है ।

(४) पन्नी - पांव में पहनने के जूते, चप्पल आदि की जाति चमड़े, रबड़ आदि की मर्यादा करना तथा जोड़ी नग की मर्यादा करना । स्पर्श आदि का या भूल आदि का आगार । गुम हो जाने से दूसरी जोडी पहननी पड़े तो आगार रखा जा सकता है । घर की सभी के उपरांत भी त्याग किया जा सकता है । मोजे, वस्त्र में गिने जाते हैं।

(५) ताम्बूल- मुखवास की चीजें-सुपारी, इलायची, सौंफ, पान, चूर्ण इत्यादि की जाति की मर्यादा करना । मिश्र वस्तु जैसे-पान आदि में ए क जाति भी गिन सकते हैं और अलग-अलग भी, इच्छानुसार गिने ।

(६) वस्त्र- पहनने के वस्त्र और काम में लेने के वस्त्रों की गिनती करना। जैसे-कमीज, पेंट, रूमाल, टुवाल, मुँहपत्ति, दुपट्टा, टोपी, पगडी मोजा आदि ।

(७) कुसुम- शौक से सूंघने के पदार्थों की मर्यादा करना जाति में । जैसे-तेल इत्र आदि । किसी चीज की परीक्षा हेतु सूंघा जाये जैसे- घी, फल आदि उसका आगार । भूल या दवा का आगार ।

(८) वाहन- सभी प्रकार की सवारी की मर्यादा करना । जाति तथा नग की मर्यादा करना । यथा-साईकल, तांगा, स्कूटर रिक्शा, मोटर, रेल आदि । विशेष परिस्थिति में पाँच नवकार मंत्र के आगार से जाति और नग की मर्यादा करना । हवाई जहाज का त्याग करना ।

(९) शयन- बिछाने तथा ओढ़ने के गादी, तकीये, चद्दर, रजाई, पलंग, कुर्सी आदि फर्नीचर की मर्यादा नग में करना । इसमें स्पर्श में या चलने में पाँव के नीचे आ जाय उसका आगार तथा जिनकी गिनती सम्भव नहीं हो सके ऐसे प्रसंगों का भी आगार । एक जगह बैठने का एक शयन गिनने का कायदा भी किया जा सकता है । जैसे-गलीचा, गादी, चद्दर, दरी आदि एक साथ में हो तो उस पर बैठने का एक गिनना । जैसी भी सुविधा एवं सरलता हो, उसके अनुसार सदा के लिए अपना कायदा बनाकर मर्यादा धारण करना । रोजाना काम आने वालों का आगार रख कर नये की मर्यादा कर सकते हैं ।

(१०) विलेपन- जितनी भी लेप व श्रृंगार की चीजें शरीर पर लगाई जावे उनकी जाति की मर्यादा करना यथा - तेल, पीठी, साबुन, चन्दन आदि का लेप, इत्र, वेसलीन, पाउडर, क्रीम, कुंकुम, हींगलू मेंहदी आदि। भोजन के बाद चिकने हाथ या अन्य समय में किसी लेप्य चीज से हाथ भर जाए, उसे शरीर पर फेरने की आदत हो तो उसका भी आगार रखा जा सकता है । भूल एवं दवा का आगार ।

(११) ब्रह्मचर्य- सम्पूर्ण दिन-रात के लिए कुशील का त्याग या मर्यादा करना । सात प्रहर या छः प्रहर या दिन भर का त्याग करना अथवा घड़ी के समय से भी भर्यादा कर सकते हैं ।

(१२) दिशि- अपने स्थान से चारों दिशा में स्वाभाविक कितने किलो मीटर(या मील) से आगे आवागमन नहीं करना उसकी मर्यादा करना । ऊँची दिशा में पहाड़ पर अथवा तीन-चार मंजिल के मकान पर जाना हो तो उसकी मर्यादा करना । नीची दिशा-भोंयरे आदि में जाना हो तो उसकी मर्यादा मीटर अथवा फुट में अलग कर लेना चाहिए ।

विशेष परिस्थिति में पाँच नवकार मंत्र के आगार से मर्यादा करना मील या प्रांत में । स्वाभाविक बस्ती की जमीन ऊँची-नीची हो उसका आगार। तार, चिट्ठी, टेलीफोन स्वयं करने की मर्यादा करना- कि.मी. में या पूरे भारत वर्ष में या अमुक-अमुक देश अथवा प्रांत में । संख्या में भी मर्यादा कर सकते हैं ।

(१३) स्नान- पूरे शरीर पर पानी डालकर स्नान करना "बडी स्नान" है। पूरे शरीर को गीले कपड़े से पूंछना "मध्यम स्नान" है और हाथ, पांव मुंह धोना "छोटी स्नान" है । इसकी मर्यादा करना। तथा स्नान के कुल पानी की मर्यादा करना, कि. ग्रा. अथवा बाल्टी में । तालाब, नल, वर्षा या बिना माप के पानी का त्याग । रास्ते चलते नदी, वर्षा आ जाय तो चलने का आगार अर्थात् जान-बुझ कर नहाने का त्याग । लोकाचार का आगार ।

(१४) भत्त- दिन में कुल कितनी बार खाना, उसकी मर्यादा करना । अर्थात् भोजन, दूध, चाय, नाश्ता, सुपारी, फल-फ्रुट आदि के लिए जितनी बार मुँह चालू करे उसकी गिनती करना । कोई व्यसन हो तो छोड़ देना चाहिए या गिन सके तो गिनना अथवा आगार कर सकते हैं । अन्य कोई आगार या धारणा कायम की जा सकती है ।

उपरोक्त चौदह नियमों के अतिरिक्त नियम परम्परा से निम्न सम्मिलित किये गये हैं । मूल पाठ में द्रव्यादि शब्द होने से और संख्या का निर्देश नहीं होने से एवं इन निम्न बोलो की मर्यादा करना भी दिनचर्या में आवश्यक होने से ये बोल उपयुक्त ही है ।

(१५) पृथ्वीकाय- मिट्टी, मुरड, खड़ी, गेरु, हिंगलू, हड़ताल आदि हाथ से आरम्भ करने की मर्यादा जाति या वजन में करना। अथवा सम्पूर्ण त्याग करना । खाने में उपर से नमक लेने का त्याग या मर्यादा करना । अपने हाथ से नमक का आरम्भ करने की मर्यादा वजन में करना।

(१६) अपकाय- (१) पानी पीना, स्नान करना, कपड़े धोना, घर-कार्य आदि में अपने हाथ से वापरना, आरम्भ करना, उसकी कुल मर्यादा करना । स्पर्श का, इधर-उधर रखने का, डालने का, दूसरों को देने व पिलाने का आगार । (२) परिंडे-कितनी जगह का पानी पीना, उसकी भी मर्यादा गिनती में करना ।

(१७) तेऊकाय- १. अपने हाथ मे अग्नि जलाना कितनी बार, उसकी मर्यादा करना । २. बिजली के बटन चालू-बंद करने की गिनती नग में करना । ३. चूल्हे-चौके- कितनी जगह के उपरांत की बनी चीज का तयाग अर्थात् चूल्हे की गिनती करना । घर की बनी चीज का एक चूल्हा-चौका गिन सकते है । चाहे कितने ही चूल्हे-सिगड़ी, स्टोव आदि पर बनी हो । बाहर की मोल खरीदी चीज का ठीक से मालूम नहीं पड़ने से प्रत्येक चीज का एक चूल्हा गिन सकते है । अर्थात् जितनी चीज मोल की खायें उसका उतना चूल्हा की गिनी करना । दूसरों के घर जहाँ भोजन आदि करे तो उसके घर की चीजों का एक चूल्हा गिनना और मोल की चीजें ध्यान में आ जाय तो उसका-अलग प्रत्येक चीज के हिसाब से चूल्हा गिनना ।

(१८) वायुकाय- अपने हाथ से हवा करने के साधनों की गिनती नग में करना । बिजली के बटन, पंखे, पुट्ठे, कापी, कपड़ा आदि किसी से भी हवा करने का प्रसंग आ जाय उसे गिनना । खुद करावे उसे भी गिनना, सीधे आ जाय तो उसका आगार । झूला, पालना आदि खुद करे उसे भी गिनना । एक बटन आदि को अनेक बार करना पड़े तो नग में एक ही गिना जा सकता है । कूलर, एअर कंडीसन का त्याग या मर्यादा करना ।

(१९) वनस्पतिकाय- हरी लीलोती साग-भाजी फ्रुट (फल फूल) आदि का त्याग या मर्यादा करना- खाने की एवं आरंभ करने की । स्पर्श आदि का आगार करना । सुविधा हो तो हरी के नाम एवं वजन का स्पष्टीकरण भी कर सकते हैं ।

(२०) रात्रि-भोजन- चौविहार या तिविहार का त्याग करना अथवा रात्रि भोजन की मर्यादा करना- रात्रि में खाना कितनी बार, पीना कितनी बार, व कितने बजे के बाद खाने का त्याग, व पीने का त्याग। सुबह सूर्योदय तक या नवकारसी या पोरषी तक का त्याग ।

(२१) असि- अपने हाथ से जितने शस्त्र औजार आदि काम में लेवे उनकी मर्यादा नग में करना यथा- सुई, कैंची, पत्ती, चाकू, छुरी आदि। हजामत के साधनों को पूरा एक भी गिन सकते है और नाई करे तो उसकी गिनती नहीं रख पाने के कारण आगार रख सकते है। बड़े शस्त्र तलवार,

बन्दूक, भाला, बरछी पावड़ा, कुदाला आदि का त्याग करना अथवा मर्यादा करना ।

(२२) मसी- पेन, पेंन्सिल, होल्डर की मर्यादा करना ।

(२३) कृषि-वाणिज्य- खेती हो तो उसके सम्बन्ध में इतने बीघा उपरांत का त्याग अथवा संपूर्ण त्याग। अन्य व्यापारो की मर्यादा जाति मे करना । नौकरी हो तो उसके अतिरिक्त सभी व्यापार का त्याग करना । घर खर्च की मर्यादा करना ।

(२४) उपकरण- घड़ी, चश्मा, काच, कंघा, थाली, कटोरी, गिलास, लोटा, लेदर-बेग, बोक्स, आलमारी, बाजोट, डेक्स, रेडियो आदि मर्यादा करना अपने उपयोग के लिये । रोजाना काम आवे उसका आगार करके नये की मर्यादा कर शकते है ।

(२५) आभूषण : शरीर पर पहनने के सोने-चांदी के गहने-आभूषण की मर्यादा जाति या नग में करना ।अथवा नये पहनने की मर्यादा या त्याग करना ।

पचक्खाण लेने का पाठ- इस प्रकार जो मैंने मर्यादा व आगार रखे हैं उसके उपरांत अपनी समझ व धारणा अनुसार दवाई व कारण का आगार रखते हुए उपयोग सहित त्याग एगविहं तिविहेणं न करेमि मणसा वयसा कायसा तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ।

पचक्खाण पारने का पाठ- जो मे देसावकासियं पचक्खाणं कयं (जो मैंने अहोरात्र के लिए द्रव्यादि की मर्यादा करके शेष का पचक्खाण किया) तं सम्मं काएणं न फासियं, न पालियं, न तीरियं, न किट्टियं, न सोहियं, न आराहियं, आणाए अणुपालियं न भवइ तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

अथवा :- कल धारण किए नियमों में कोई अतिचार दोष लगा हो तो तस्स मिच्छामि दुक्कडं ।

नोट :- इन नियमों के आतिरिक्त सामायिक, मौन, क्रोध त्याग, झूठ त्याग, कलह त्याग, नवकारसी, पोरिषी, स्वाध्याय, प्रतिज्ञा, ध्यान आदि दैनिक नियम भी रोजना यथाशक्ति कर लेने चाहिये ।

०००००

चौदह (२३-२५) नियम भरने का तरीका-तालिका

	विषय ज्ञान	बोलने का तरीका	लिखने का
१.	सचित्त पदार्थ	५ उपरांत त्याग	५
२.	द्रव्य (खाने के)	२५ उपरांत त्याग	२५
३.	विगय पाँच	४ उपरांत त्याग	४
	१. महाविगय दो	त्याग	X
	२. दूध-चाय	२ बार उपरांत त्याग	२ बार
	३. दही	१ बार उपरांत त्याग	१ बार
	४. घी (उपर से)	त्याग	X
	५. तले पदार्थ	५ जाति उपरांत त्याग	५
	६. शक्कर के पदार्थ	५ जाति उपरांत त्याग	५
	७. गुड के पदार्थ	त्याग	X
४.	पन्नी (जूते आदि)	३ जोड़ी उपरांत त्याग	३
५.	तम्बोल (मुखवास)	४ जाति उपरांत त्याग	४
६.	वस्त्र (पहनने के एवं रुमाल आदि)	२५ नग उपरांत त्याग	२५
७.	कुसुम (सूंघने के)	त्याग	X
८.	वाहन-जाति	३ उपरांत त्याग	३
	नग	७ उपरांत त्याग	७
	विशेष परिस्थिति में	जाति ५ उपरांत त्याग	५
	(पाँच नवकार से)	नग ११ उपरांत त्याग	११
९.	सयन (बिछोने)	२५ उपरांत त्याग	२५
१०.	विलेपन (तेलादि)	७ उपरांत त्याग	७
११.	अब्रह्मचर्य-कुशील	त्याग अथवा रात्रि का	X
	का त्याग या मर्यादा	दूसरा प्रहर उपरांत त्याग	९
१२.	दिशा-चारो दिशा	५ मील उपरांत त्याग	५
	विशेष परिस्थिति में	५०० मील उपरांत त्याग	५००
	(पाँच नवकार से)		
	उपर	४ मंजिल उपरांत त्याग	४
	नीचे	२० फुट उपरांत त्याग	२०
१३.	स्नान-छोटी	३ उपरांत त्याग	३
	बड़ी	१ उपरांत त्याग	१
	मध्यम	X	X
१४.	भोजन-छोटा	१० उपरांत त्याग	१०
	बड़ा	२ उपरांत त्याग	२
१५.	सचित्त मिट्टी आदि का आरंभ	त्याग	X
	उपर से नमक	त्याग	X

१६.	पानी का उपयोग	५ बाल्टी उपरांत त्याग	५
	परींडा	१० उपरांत त्याग	१०
१७.	अग्नि जलाना	५ उपरांत त्याग	५
	बिजली के बटन नग	१० उपरांत त्याग	१०
	चौका	१० उपरांत त्याग	१०
१८.	पंखा-पुट्ठा आदि	५ उपरांत त्याग	५
१९.	हरी-सब्जी, फल	१० उपरांत त्याग	१०
	दूसरो के लिये	५ उपरांत त्याग	X
२०.	रात्रि-भोजन	त्याग अथवा	X
	१. टाइम से	१० बजे बाद त्याग	१० बजे
	२. संख्या से	२ बार उपरांत त्याग	२ बार
२१.	असि-सूई आदि एवं	५ उपरांत त्याग	५
	तलवारादि शस्त्र	त्याग	X
२२.	मसि-पेन आदि साधन	१० उपरांत त्याग	१०
२३.	कृषि-१. खेती बीघा	त्याग	X
	२. व्यापार जाति	२ उपरांत त्याग	२
	३. परिग्रह घरु उपयोग	५ हजार उपरांत त्याग	५ हजार
२४.	उपकरण (शेषसभी उपयोगी वस्तुएँ)	३५ उपरांत त्याग	३५
२५.	नये आभूषण जाति या नग	५ उपरांत त्याग	५

प्रश्न- ये नियम तो २५ है फिर भी इन्हें चौदह नियम क्यों कहा गया है ?

उत्तर- श्रावक के दसवें व्रत के पाठ में **द्रव्य आदि** कहा है। १४ आदि संख्या नहीं कही है । परम्परा में १४ संख्या रुढ हो गई है इसलिये ये चौदह नियम के नाम से प्रसिद्ध हो गये है । अत: यहाँ भी प्रसिद्ध नाम ही दिया गया है किंतु दिनचर्या के आवश्यक नियमों को जोड कर २५ बोल कर दिये हैं । जिसके अंतरगत बोलों के कुल ५० कॉलम बन गये हैं ।

निबंध-९५

बारह व्रतों को धारण करने की स्पष्ट एवं सरल विधि

सम्यकत्व- देव गुरु धर्म की शुद्ध समझ रखूँगा और सुदेव सुगुरु का भक्ति पूर्वक विनय वंदन करूँगा । कुदेव कुगुरु के विनय या वंदन की प्रवृत्ति समाज-व्यवहार से, लिहाज की प्रकृति से तथा परिस्थिति से करना पड़ेगा तो उसका आगार ।

प्रतिक्रमण में उपलब्ध अणुव्रत के पाठों के आधार से व्रतों का स्पष्टीकरण इस प्रकार है-

१. पहला व्रत-स्थूल प्राणातिपात विरमण (स्थूल हिंसा का त्याग)

निरपराधी त्रस जीव को मारने की भावना से मारने का पच्चक्खाण जीवन पर्यन्त, दो करण तीन योग से । अतिचारों को बनते कोशीश टालने का ध्यान रखूँगा ।

अतिचार- (१) गुस्से में आकर निर्दयता पूर्वक गाढ़ बंधन से किसी को बांधना (२) गुस्से में आकर निर्दयतापूर्वक मारपीट करना (३) गुस्से में आकर निर्दयतापूर्वक कान नाक हाथ पांव आदि अवयव काट लेना (४) गुस्से में आक निर्दयतापूर्वक आहार पानी बंद कर देना (५) स्वाथवश शक्ति उपरांत किसी भी प्राणी पर अधिक भार डालना जिससे उसको अतयन्त परिताप पहुंचे या प्राण संकट में पड़ जाय । ये पाँच अतिचार है ।

आगार- अपने या अपने आश्रित जीवो के उपचार कराने में कोई त्रस जीवों की हिंसा नहीं रुक सके एवं सांसारिक कार्य या व्यापारिक कार्य करते हुए तथा वाहन प्रयोग करते हुए त्रस जीवों की हिंसा हो जाय उसका आगार । जीवोत्पति के पहेले या पीछे उसके निवारण का कोई तरीका अपनाना पड़े उसका आगार । जहां तक बन सकेगा अहिंसा का तरीका करने का ध्यान रखंगा । अविवेक और भूल का आगार । आदत नहीं सुधरने से कोइ प्रवृत्ति हो जाय उसका आगार । आदत सुधरने का ध्यान रखूंगा ।

२. दूसरा व्रत-स्थूल मृषावाद विरमण(बड़े झूठ का त्याग)

पाँच प्रकार का मोटका झूठ बोलने का अपनी समझ व

धारणानुसार उपयोग सहित दो करण तीन योग से जीवन पर्यन्त त्याग । अतिचारो को बनने कोशीश टालने का ध्यान रखूंगा ।

पाँच प्रकार- (१) कन्या वर (अर्थात् मनुष्य) सम्बन्धी (२) जानवर सम्बन्धी (३) भूमि सम्बन्धी (संपत्ति सम्बन्धी) (४) धरोहर सम्बन्धी (५) खोटी साख (व्यापार व परिवार सम्बन्धी आगार ।)

मोटका (स्थूल) झूठ की परिभाषा- राज दंडे लोक भंडे, दूसरो के साथ धोखा होवे, विश्वास घात होवे, बिना कसूर के किसी को भारी नुकशान भूगतना पडे, इज्जत व धर्म को ठेस लगे, जीवन कलंकित होवे, ऐसा झूठ बड़ा होता है वह श्रावक के लिए त्याज्य है ।

आगार- व्यापार सम्बन्धी प्रवृत्ति का आधार । अविवेक या भूल का आगार । कोई आदत नहीं सुधर सके तब तक उसका आगार । बनते कोशीश आदत सुधारने का ध्यान रखूंगा । स्व पर प्राण रक्षा का, संघ की परिस्थितियोका आगार । सरकारी कायदं नहीं पलने से कोई झूठ बोलना पड़े उसका आगार ।

अतिचार- (१) बिना विचारे आक्षेप लगाना (२) एकान्त में बातचीत करने व्यक्तिओ पर आरोप लगाना (३) अपनी स्त्री (या पुरुष) के मर्म प्रकट करना (४) अहितकारी खोटी सलाह देना (५) विश्वासघात करके खोटा लेख (खत) लिखना । ये पाँच अतिचार है ।

३. तीसरा स्थूल अदत्तादान विरमण(मोटकी चोरी का त्याग)

पाँच प्रकार की मोटकी चोरी का दो करण तीन योग से त्याग जीवन पर्यन्त । पाँचों अतिचारों को बनते कोशीश टालने का ध्यान रखूँगा।

पाँच प्रकार (१) भींत दरवाजे आदि मे छिद्र करके या तोड़कर (२) वस्त्र, सूत, सोना आदि की गांठ पेटियां खोलकर चोरी करना या जेब काटना आदि (३) ताले तोड़कर या चाबी लगाकर चोरी करना (४) मार्ग में चलते को लूटकर (५) किसी के मालिकी की कीमती वस्तु चोरा की भावना से लेना ।

आगार- तीसरे अतिचार का पूर्ण रुप से टाला (वर्जन) नहीं कर सता हूं उसका आगार । ओर भी जो प्रवृत्ति फस व्रत के अतिचार की मेरे प्रकृति व प्रवृति में नहीं छूट सकेगी उसका आगार।

अतिचार- (१) जानकर पाँच प्रकार की चोरी की वस्तु लेना। (२) पाँच प्रकार की चोरी करनेवाले को सहायता देना । (३) राज्य नियमोंके विपरीत आचरण करना । (४) जानकर खोटा तोल, खोटा माप करना। (५) चीज दिखाने व तय करने के बाद अदल-बदल करके या मिश्रण करके दे देना । ये पाँच अतिचार है ।

४. चौथा व्रत-स्वदार संतोष परदार विवर्जन(स्व स्त्री की मर्यादा, पर स्त्री का त्याग)-

(१) सम्पूर्ण कुशील सेवन का त्याग या महिने में ( ) दिन कुशील सेवन का त्याग । (२) पर स्त्री या वेश्या का त्याग ।(३) ( )वर्षके बाद शादी करने का त्याग (४) दिन में कुशील सेवन त्याग। एक करण एक योग से एवं सूई डोरा के न्याय से, जीवन पर्यन्त । पाँचों अतिचारो को बनते कोशिश टालने का ध्यान रखूंगा।

अतिचार- (१) छोटी उम्र की अपनी स्त्री के साथ कुशील सेवन करना (२) सगाईकी हुई कन्या के साथ कुशील सेवन करना। (३) अशुद्ध तरीको से कुशील सेवन करना । (४) पराये का विवाह करना। (५) औषधि आदि से विकार भाव बढ़ाना ।

५. पाँचवा व्रत-परिग्रह परिमाण-

(१) खेती घरु बोघा ( ) व्यापार समबन्धी बीघा ( ), (२) मकान दुकान कुल नंग ( ), (३) जानवर की जाति ( ), (४) शेष कुल परिग्रह (रु.) जिसका सोना ( ) किलो प्रमाण। चांदी ( ) किलो प्रणाम मेरा उत्कृष्ट परिग्रह हुआ । इसके उपरांत परिग्रह रखने का एक कारण तीन योग से त्याग । नया मकान बताना ( ) उपरांत त्याग ।

स्पष्टीकरण- दूसरों की उधार पूंजी जो व्यापार में लगेगी उसे मेरी नहीं गिनूँगा । जिस चीज की मालिकी वास्तव में घर के किसी सदस्य की अलग कर दी है उसे मेरे परिग्रह में नहीं गिनूँगा । सरकार में नाम अलग-अलग हो और घर में एकमेक हो उसे अपने परिग्रह मे गिनूँगा। भागीदारी के व्यापार में दूसरोंकी पूंजी को अपनी नहीं गिनूँगा । पुत्र वधु के निजी सामान को मेरे परिग्रह में नहीं गिनूँगा । खुद की पत्नि का सामान अपने परिग्रह में गिनूँगा । मकान, जमीन, जानवर और वाहन

की कीमत नहीं करके संख्या में ही परिग्रह का माप रखूँगा । मेरा बस नही चलते लड़के आदि कुछ भी करले उसका आगार।

अतिचार- परिग्रह की जो-जो मर्यादा रखी है उसका अविवेक से अनजान से एवं जोखा नहीं मिलाने से उल्लंघन हूआ हो तो वे सब अतिचार समजना और जानकर लोभ संज्ञा से उल्लंघन हो, उसे अनाचार समजना ।

६. छठा व्रत-दिशा परिमाण-

अपने निजी स्थान से चारों दिशा में ( ) मील उपरांत जाने का त्याग । या हिन्दुस्तान उपरांत जाने का त्याग ( ) या विदेश संख्या ( ) उपरांत त्याग । विदेश नाम ( ) उपर की दिशा में मील ( ) नीचे की दिशा में फुट ( ) उपरांत जाने का त्याग, एक करण तीन योग से, जीवन पर्यन्त । तार चिट्ठी फोन आदि स्वयं करना जिसकी मर्यादा ( ) देश के उपरांत त्याग ।

आगार- स्वाभाविक जमीन ऊंची नीची हो उसका आगार जो वाहन खूले रखें वे जितने ऊँचे नीचे जावे उसका आगार । आये हुए तार चिट्ठी फोन रेडियो टी.वी. आदि का आगार । नौकरी या शारीरिक कारण आदि विशेष परिस्थिति का आगार । राज्य-सम्बन्धी, देव-सम्बन्धी स्थिति का आगार । बच्चे आदि मर्यादित क्षेत्र से बाहर चले जाय तो उसके सम्बन्धी विशेष परिस्थिति का आगार । यथाशक्य सभी परिस्थितियों से बचने का ध्यान रखूँगा ।

अतिचार- (१-३) बेपरवाही अनजान और मर्यादा के भूल जाने से उलंघन हुआ हो । (४) एक दिशा के परिमाण को घटाकर दूसरी दिशा में बढ़ाया हो । दोनों दिशाओ का योग वही रहता इसलिए अतिचार है। (५) स्मृति नहीं रहे फिर अदाज से जितनी मर्यादा ध्यान आवे उसका उलंघन करे, फिर मालूम पड़े कि वास्तव में मर्यादा का उल्लंघन नहीं हुआ तो यह भी अतिचार है ।

७. सातवां व्रत-उपभोग परिभोग परिमाण व्रत-

नोट-२६ बोलो की मर्यादा को १५ बोलो में संक्षिप्त किया गया है।

(१) दांतोन- सचित्त ( ), अचित्त ( ), प्रतिदिन ( )

(४) स्नान- प्रतिदिन ( ) मास में ( ) वर्ष में ( )।

एक बार स्नान में पानी ( ) किलो । बिना माप के पानी से स्नान का त्याग या मर्यादा ( ) लोकाचार का आगार। महिने में स्नान का त्यार ( ) दिन ।

(५) वस्त्र- १. सूती, ऊनी आदि जाति ( ) जाव जीव । २.वस्त्र जोड़ी या नग ( ) उपरांत एक साथ रखने का त्याग । रेशम सम्पूर्ण त्याग ।

(६) सयन- बैठने सोने के नग प्रतिदिन ( )।

(७) कुसुम- सूंघने के फूल जाति ( ) इत्रादि ( )। माला जाति ( ) भूल, दवा, परीक्षा का आगार ।

(८) आभूषण- घड़ी आदि एक साथ शरीर पर पहिनने की जाति( ) नग ( ), सभाल कर रखने के लिये व परीक्षा निमित का आगार।

(९) धूप- जाति ( ) अगरबती, लोबान, कपूर, घी, तेल आदि। अगरबती की जाति ( ) ।

(१०) हरेशाक- फल आदि ( ) जमीकंद ( ) जाति उपरांत त्गाग ।

(११) सूखामेवा- जाति ( ) उपरांत त्याग का अमुक चीज का त्याग ( )।

(१२) सवारी- हवाई जहाज का त्यांग या मर्यादा जीवन में ( ) बार । समुद्र की जहाज का त्याग या मर्यादा ( )। जानवर की सवारी का उसकी पीठ पर बैठने की अपेक्षा त्याग या मर्यादा जाति ( )। बल की सवारी अमुक ( ) का त्याग ।

(१३) पन्नी(जूता)- रबर चमड़ा आदि जाति ( ) बूंट सेंडल आदि जाति ( ) जाव जीव । एक साथ रखना कुल जोड़ी ( ) उपरांत त्याग ।

(१४) सचित्त- खाने की जाति ( ) जाव जीव । प्रतिदिन जाति ( ) उपरांत त्याग ।

(१५) द्रव्य- प्रतिदिन जाति ( ) जाव जीव की जाति ( ) उपरांत त्याग ।

द्रव्य- १. हरे साग, २. सुखे संग, ३. दालें, ४. मुखवास, ५. मिठाई, ६. पेय पदार्थ, ७. सूखे मेवे, ८. विगय, ९. भोजन, रोटी, खीचड़ी आदि,

१०. तरल पदार्थ, ११. अन्य । व्यापार जाति ( ) उपरांत त्याग । कर्मादान संख्या ( ) का त्याग ।

आगार- उपरोक्त नियमों में भूल, दवा का आगार, दूसरा करदे उसका आगार । नौकरी सम्बन्धी आगार घर के लिये लाई वस्तु में से कुछ बेचने का प्रसंग आ जाय तो आगार । भड़के आदि बिना आज्ञा या बिना सलाह के कुछ करले तो यथाप्रकृति आगार । शेअर लेने या दस्तक करने का आगार । उपरोक्त रखी मर्यादा के उपरांत एक कारण तीन योग से त्याग।

अतिचार पाँच- (१) त्याग किए हुए सचित्त को अचित्त समझ कर या भूलकर खाना । अथवा कोई भी सचित्त वस्तु खाना यह भी अतिचार है। (२) सचित्त गुटली आदि से लगे गिर को खाकर गुटली थूकना या तत्काल गुटली आदि निकाल कर खाना । (३) पक्व संभलकर अपकव सचित्त खाना । (४) अचित्त संभलकर अधूरे पके या सेके पदार्थ को खाना । (५) जिसमें ज्यादा सचित्त खाने का हो ओर थोडा ही अचित्त भाग खाने का हो या जिसमें ज्यादा फेंकना हो अथवा जिसमें पाप किया ज्यादा भले और लाभ कम हो ऐसी तुच्छ वस्तुएं खाना पीना, यथा-कंदमूल, बीड़ी सिगरेट तम्बाकु, भांग सीताफल, गन्ना आदि ।

टिप्पण १. जिस प्रकार कर्मादान का, मारने पीटने आदि का, चोरी की वस्तु लेने आदि का, त्याग नहीं होते हुए भी उन उन व्रतों मे अतिचार कहा गया है । उसी प्रकार सचित्त आदि पदार्थो का खाना भी इस व्रत में अतिचार कहा है । इसी प्रकार अन्य व्रतों में भी प्रसंगानुसार सभल लेना चाहिए ।

पन्द्रह कर्मादान स्वरूप -

(जिसका त्याग हो उससे आगे x करे । जिसको रखना हो उसके आगे ✓ करें ।

(१) इंगाल कम्मे- अग्नि के आरम्भ वाले धंधे-धुलाई, रंगाई, गलाई, हलवाई, भड़भुंजा, सुनार, लुहार आदि के धंधे ।

(२) वएकम्मे- वनस्पति के आरम्भ के व्यापार या कर्म । खेती, हरी सब्जी उबालना, सुखाना बेचने का धंधा ।

(३) साडी कम्म- वाहन बनाकर बेचना ।

(४) भाड़ी कम्मे- वाहन चलाकर भाड़ा कमाना, व्यापार रूप में ।

(५) फोड़ी कम्मे- खेती के लिए हल चलाना, खान खोदना उससे निकले पदार्थ को बेचकर आजीविका चलाना कुआ वावड़ी, तालाब, सड़क, मकान आदि बनाने का ठेका लेना ।

(६) दन्त वाणिज्य- त्रस जीवो के शरीर के अवयव का व्यापार । हाथीदांत, रेशम, कस्तूरी, शंख, केश, नख, चम, ऊन । सीधे खरीदना या आर्डर देना ।

(७) भक्ख वाणिज्य- जिन वस्तुओ को तैयार करने में त्रस जीवों की हिंसा हो या सडाना पडे ऐसा कैमिकल्स का व्यापार या लाख चिपड़ी आदि बेचना । नील, सोडा, साबुन, नमक, सब्जीखार, रंग आदि का व्यापार

(८) रस वाणिज्य - शराब का धंधा तथा घी, तेल, गड, शक्कर आदि रस पदार्थ का धंधा करना । दुध दही बेंचना ।

(९) केश वाणिज्य- केश वाले जानवर या दास दासी बेचने खरीदने का व्यापार ।

(१०) विष वाणिज्य- जिनका उपयोग जीवोंको मारने का हो ऐसा पदार्थ व शस्त्र का व्यापार । यथा-बन्दूक, तलवार डी.डी.टी. पावडर आदि ।

(११) यंत्र पीडन कर्म- तेल या रस निकालना तथा चरखे मील, प्रेस, चक्की आदि चलाना । बिजली से चलने वाली फेक्ट्री ।

(१२) निलंछण कर्म- नपुंसक बनाने धंधा करना, अंगोपाँग छेदन करना, डाम देना ।

(१३) दवग्गिदावणया- जंगल, खेत, गांव आदि में आग लगाना ।

(१४) सर दहतलाय सोसणिया- खेती आदि करने के लिय झील, नदी, तालाब आदिका पानी सुखाना ।

(१५) असई जण पोषणया- शौक, शिकार या आजीविका निमित्त हिंसक जानवर, दुश्चरित्र स्त्रियों का पोषण करना[1] ।

आठवां व्रत-अनर्थ दंड वेरमण-

चार प्रकार के अनर्थ दंड का अपनी समझ अनुसार विवेक अनुसार टालने का ध्यान रखूंगा । बनते कोशीश ज्ञान और विवेक बढ़ाऊगा ।

टिम्पण-१ यह व्रत एक करण से लिया जाता है अत: दस्तक करने या शेअर खरीदने पर वह व्यापार नहीं गिना जायेगा ।

निम्न त्याग करना- १. होली खेलना २. फटाके छोड़ना ३. तास खेलना ४. सिनेमा ५. पान ६. साल व्यसन ७. धूम्रपान ८. तम्बाकू खाना सूंघना ९. बिना माप के पानी से स्नान करना यथा-कुआ, वावड़ी, तालाब, नदी, वर्षा में या नल के नीचे । इनका त्याग करना या मर्यादा ( ) बार वर्ष में । लोकाचार का आगार, १० बिना छाणा पानी पीने का त्याग या काम में लेने का त्याग ( ) ।

चार प्रचार का अनर्थ दंड-

१. अवज्झाणाचरिये- खोटा खोटा चितन करना । यथा दूसरों के मरने का, नुकसान का, रोग आने का, आग लगने का, किसी तरत दुखी होने का इत्यादि सोचना या ये कार्य खूद करने का सोचना । और भी अनेक आतं रौद्र ध्यान करना । यथा-पर दोष देखे, निंदा करे, अन्य की लक्ष्मी वाछे, संयोग-वियोग के संकल्प विकल्प करे, दूसरों के दुख में खुश होवे, कूडा आल देवे, झूठी अफवाहें फैलावे, मिश्र भाषा बोलकर किसी के प्रति भ्रम फैलावे इत्यादि ये सभी प्रथम अनर्थ दंड की प्रवृतियाँ है ।

२. पमायाचरिये - प्रमाद पूर्वक प्रवृत्ति करना । विवेक नहीं रखने हुए आलस लापरवाही आदि कारण से तरल पदार्थ पानी, दूघ, घी आदि के बर्तन उघाड़े रख देना । मीठे पदार्थो को बिना विवेक के रख देना । तथा किस वस्तु को कहां कैसे रखना इसका विवेक नहीं करना । बिना विवेक के कुछ भी बोल जाना, बिना विवेक के चलना बैठना । बिना प्रयोजन पृथ्वी खोदना, पानी ढोलना, अग्नि जलाना, हवा करना हाथ पाँव वस्तु हिलाना । पंखे बिजली खुले छोड़कर चले जाना । नल आदि खुले छोड़ देना विवक नहीं रखना। हरी वनस्पति घास तोड़ना उस पर बैठना चलना । बिना माप का पानी उपयोग में लेना या पानी में तैरना । अनेक मनोरंजन की प्रवृतियां भी अनर्थ दंड में गिनी जाती है । दीपक चूल्हा उघाडा रख देना सम्मुच्छिम खार, फूलण आदि का ध्यान रखे बिना चले । वृक्ष पर झुला बांधे । ये सब दूसरे अनर्थ दंड की प्रवृत्तियाँ है ।

३. हिंसप्पयाणे- हिंसाकारी शस्त्र हर किसी को अर्थात अविवेकी को देना तथा ऐसे साधनों आ अधिक संग्रह करना । शस्त्र, तलवार, बंदूक,

कुदाला, पावड़ा आदि । हिंसक जानवरों का पोषण,डी.डी.टी. पावडर आदि का संग्रह या उपयोग आदि वह तीसरा अनर्थ दंड है।

४. पावकम्मोवएसे- बिना प्रयोजन या जबाबदारी के ही दूसरों को पाप कार्यो की प्रेरणा करना यथा-स्नान, शादी, मकान बनाना, व्यापार, मोटर काम खरीदना, कुआ, खेती, जानवर संग्रह करना, वनस्पति काटना उगलना आदि की प्रेरणा करना अथवा ऐसे संकल्प विकल्प करना । किसी भी चीजों को या स्थानों को देखने जाना एवं किसी भी वस्तु की सराहना करना झूठा शास्त्र रचना एवं वैसी प्ररूपणा करना इत्यादि यह सब चौना अनर्थ दंड है ।

आगार - जो आदत जब तक पूर्ण न सूघरे तब तक उसका आगार । यथाशीघ्र आदत सुधारने का ध्यान रखूंगा । लय रखकर विवेक ज्ञान बेढाऊंगा ।

अतिचार- १. काम विकार जगाने वाली कथा करना, २. भाँडो की तरह दूसकों को हँसाने के लिए काया की कुचेष्टा करना अङ्गोपांग को विकृत करना, ३. ढीठतापूर्वक निरर्थक, बोलना, असत्य और उटपटांग व हास्यकारी बोलना, ४. उखल-मूसल आदि उपकरणों को एक साथ रखना, जिससे सहज विराधना होवे अथवा शस्त्रों का अधिक संग्रह करना, ५. उपभोग परिभोग की वस्तुओं का अधिक संग्रह करना । ये अतिचार है ।

९. सामायिक व्रत-

प्रति दिन( ) प्रतिमास( ) प्रति वर्ष( ) सामायिक करुंगा। विशेष परिस्थिति का आगार । ३२ दोषों को यथाशक्य टालने का ध्यान रखूँगा । उन दोषों को कंठस्थ करना या साल में १२ वार पढ़ना । भूल, कारण का आगार ।

अतिचार- (१-३) मर्यादा के बाहर मन वचन काया की प्रवृत्ति करना। (४) मेरे सामायिक है, यह याद नहीं रहना । फिर गलती करते अचानक याद आना । (५) सामायिक अव्यवस्थित ढंग से अविवेक से करना, जैसे-तैसे अनादर से अस्थिरता से करना या समय पूर्ण हुए रहने सामायिक पार लेना । तीन अतिचार अनुपयोग से और दो अतिचार प्रमाद से लगते हैं ।

१०. देशावकासित व्रत –

तेवीस नियम (चौदह नियम) राज धारण करूँगा और तीन मनोरथ का चिंतन करूँगा । मूल शारीरिक परिस्थिति का आगार । अभ्यास न जमे तब तक आगार । विशेष परिस्थिति में कोई भी संक्षिप्त तरीके से करने का आगार ।

अतिचार– मर्यादाओं का अनजान से या अविवेक से उल्लंघन करने पर अतिचार लगता है ।

नोट- चौदह नियम का विशेष स्पष्टीकरण अलग पुस्तक में देखें ।

११. पौषध व्रत- (संख्या भरें)

दया या पौषध मिला कर कुल ( ) प्रति वर्ष करूँगा। अथवा प्रतिपूर्ण पौषध ( ) अपूर्ण पौषध ( ) दया ( ) चार खंध ( ) चौविहार ( ) तिविहार ( ) उपवास ( ) आयंबिल ( ) निवी ( ) एकासण ( ) पोरसी ( ) नवकारसी ( ) प्रतिक्रमण ( ) मास में भूल व अवस्था या कारण का आगार । निवृत्ति व्यापार से ( ) वर्ष बाद ।

अतिचार– १ सोने के मकान शय्या आसन का प्रतिलेखन न करना या अच्छी तरह न करना । २. पूंजने के प्रसंग पर प्रमार्जन न करना या अच्छी तरह न करना । ३-४ इसी तरह उच्चार-पासवण भूमि के दो अतिचार समझ लेना । ५. पौषध के १८ दोष न टाले हो तथा चलना, बैठना, सोना, बोलना, पूंजना, थूंकना, खाना, पीना, परठना आदि अविवेक से करना । ये सब अतिचार है ।

१२. अतिथि संविभाग व्रत....

साधु-साध्वीका योग मिलने पर निर्दोष वस्तुओं को भक्तिभावसे निष्काम बुद्धि से केवल आत्म-कल्याण के लिए बहराऊँगा और भोजन करते समय तीन नवकार गिन कर दिन में कम से कम एक बार दान देने की भावना भाऊँगा ।

शिक्षाएँ– निर्दोष लेने वालों को झूठ-कपट कर सदोष आहार, पानी, मकान, वस्त्र पात्र पुठे दवा आदि नहीं बहराना । घर में सचित्त और अचित्त चीजोंको एक साथ एक आलमारी या एक कागज पर नहीं रखने का सदा ध्यान रखना और घर के सदस्यों को भी समझाना। घर में

अचित्त पानी बनता हो उसे तत्काल नहीं फेंकने का ध्यान रखना एवं दूसरों को ध्यान दिलाना । जो अचित्त पानी नहीं बनता हो तो उसे बनाकर रखने का रिवाज नहीं करना । और इसके लिये सही ज्ञान करके अन्य को भी सही मार्गदर्शन देते रहना । ४२ दोष आदि का ज्ञान करना। संत-सतियों के सामने झुठ नहीं बोलना। घर में या भोजन गृह में सचित्त पदार्थो को बिखेर कर नहीं रखना या बीच में नही रखना ।

अतिचार– १. अविवेक से घर में सचित्त वस्तु संघटे में रखी हो या भोजन करते समय पानी आदि संघटे से रखा हो, २. अविवेक भूल से अचित्त धोवण आदि पर सचित्त पानी आदि रखा हो, ३. भिक्षा के असमय में भावना भाई हो या भिक्षा के समय घर का दरवाजा बंध रखा हो । रास्ता, पानी बीज आदि से युक्त रखा हो, ४. विवेक या उमंग की कमी से प्रसंग आने पर खुद नहीं बहरावे और दूसरों को निर्देश करता रहे । मैं खुद बहराऊं, ऐसा याद नहीं आव, ५. सरल शुद्ध भाव और शुद्ध काया-वचन के विवेक से न बहरा कर, अनेक प्रकार के अशुद्धभाव, कलुषता, ईर्ष्या, बराबरी, दिखावा आग्रह, जिद्द, अविनय, अविवेक के शब्द, उपालभ, ताना-कसी आदि काया और वचन के अविनय, अभक्ति, अविवेक से बहराया हो । ये अतिचार है ।

विशेष नोट– सभी व्रतों मे प्रतिक्रमण के अनुसार करण योग समझना सभी व्रत समझ अनुसार, धारणा अनुसार धारण करता हूँ। सभी में भूल का आगार । इसमें जो कोई नई शंका उत्पन्न होंगी जिसके विषय में सभी सोचा समझा नहीं है उसे उस समय की समझ शक्ति अनुसार करूँगा । इस लिखे नियमों को फेरबदल करने का आगार ( ) वर्ष तक । तब तक प्रति मास में एक बार अवश्य पढूँगा । भूल का आगार । प्रतिक्रमण अर्थ सहित वर्ष में एक बार अवश्य पढूँगा । जल्दी से जल्दी जाति नाम खोलना-लीलोत्री, जमीकंद, सचित्त, साबुन, विलोन, दांतौन, वस्त्र, फूल, अगरबती, व्यापार, द्रव्य ।

अध्ययन– १. यह बारह व्रत त्याग की अपनी पुस्तक महिने में ( ) बार पढना । २. उपासकदशा सूत्र का सारांश वर्ष में ( ) बार पढना । ३. बतीस भागों का सारांश ( ) वर्ष में पढना । ४. मोक्षमार्ग, सम्यकत्व विमर्श, उत्तराध्ययन सूत्र, दशवैकालिक सूत्र ।

समर्थ समाधान- भाग १, २, ३, आत्म-शुद्धि का मूल तत्व त्रयी, जैन तत्व प्रकाश, बोल संग्रह भाग १ से ७ बीकानेर के । इसको एक-बार अवश्य पढ़ना ( ) वर्ष में । ५ व्यावर से प्रकाशित चार छेद सूत्रों का विवेचन ( ) वर्ष में पढ़ूँगा ।

कंठस्थ करना कम से कम शुद्ध सामायिक सूत्र ३२ दोष युक्त। प्रतिक्रमण अर्थ सहित व पच्चीस बोल ।

अन्तिम शिक्षा -

(१)सभी जैन श्रमणों का आदर सत्कार सन्मान विनय-भक्ति शिष्टाचार आदि अवश्य करना, समय निकाल कर ज्ञान प्राप्त करना, यथा शक्ति सेवा सहयोग करना, सुपात्रदान देकर शाता पहुँचाना।

(२)अन्य मतावलम्बी जैनेत्तर सन्यासी आदि से अति परिचय आदि न करना, किन्तु स्वत: संयोग मिल जाय तो अशिष्टता असभ्यता नहीं करना ।

(३)कुल परम्परा से देव-देवी पूजन आदि करना पड़े तो उसे धर्म नही समझ कर सांसारिक कार्य समझना ।

(४)हिंसा मे, आडम्बर में, धर्म नहीं समझना और हिंसा आडम्बर को धर्म बतावे उसे खोटा समझना । पाप के आचरण को कभी भी धर्म नहीं मानना ।

(५)किसी भी व्यक्ति समुदाय विशेष की निंदा, अवहेलना, घृणा नहीं करना । मध्यस्थ भाव, स्वभाव, अनुकम्पाभाव रखना ।

(६)जिनाज्ञा का उल्लंघन करने वाले श्रमणों को सदा यथावसर विनय-विवेकयुक्त शब्दो में सूचित करते रहना । किन्तु निंदा न करना।

(७)संसार में किसी भी प्राणी के प्रति अपने मन में राग अथवा द्वेष अर्थात् नाराजी, रंज, चिड़, एलर्जी भाव नहीं रखना । चाहे वह पापी हो, दुष्ट हो, अथवा अहित करने वाला हो, पागल या मूर्ख हो या शिथिलाचारी हो, अन्य सम्प्रदाय या अन्य धर्म का अनुयायी हो। सभी के प्रति अपना चित्त साफ (स्वस्थ) और प्रसन्न रखना चाहिए । सबके पुण्य और उदय कर्म अलग-अगल होते है, ऐसा चिंतन करके समभाव रखना चाहिए । यह समकित का प्रथम लक्षण 'सम' है ।

(८) परमत परपाखंड, अन्यदर्शनी, मिथ्या दृष्टि आदि की संगति पचिय

प्रशंसा सन्मान आदिका सम्यक्त्व शुद्धि की अपेक्षा आगमों में निषेध है। किन्तु स्वदर्शनी जिन-मतानुयायी तीर्थंकरों का अनुरागी आदि जो जैन श्रमण निर्ग्रन्थ है उनसे नफरत करना, अनादर करना अयोग्य आचरण है। राग-द्वेष-वर्धक आचरण है । संकीर्ण वृत्ति का परिचायक है एवं आगम सम्मत भी नहीं है अपितु जिन शासन की अवहेलना कराने वाला एक निम्न कर्त्तव्य है । अत: समस्त जैन श्रमणो का सन्मान रखना चाहिए । तथा अनादर तिरस्कार तो किसी का भी नहीं करना चाहिए ।

निबंध- ९६

व्रत धारण की सरल संक्षिप्त विधि

नोट- कोई भी विशेष स्पष्टीकरण जानना हो तो पूर्व प्रकरण में विस्तृत कथन है वहाँ देखे । साथ ही उपासक दशासूत्र का सारांश भी अवश्य पढ़ें ।

सम्यक्त्व- देव गुरु धर्म की शुद्ध समझ रखूँगा और सुदेव सुगुरु का भ+ि पूर्वक विनय वंदन करूँगा । कुदेव कुगुरु के विनय वंदन की प्रवृत्ति समाज-अव्यवहार से. लिहाज की प्रकृति से तथा परिस्थिति से करनी पड़ेगी तो उसका आगार ।

1.पहला व्रत- जानकर के मारने की भावना से, निरपराधी त्रस जीव को मारने का पच्चक्खाण, अपनी समझ और धारणानुसार, आगार सहित, दो करण तीन योग से, जीवन पर्यन्त । अतिचारों को टालने का ध्यान रखूँगा ।

2.दूसरा व्रत- 5 प्रकार का मोटका झूठ बोलने का पच्चच्खाण, अपनी समझ एवं धारणानुसार, आगार सहित, दो करण तीन योग से, जीवन पर्यन्त । अतिचार टालने का ध्यान रखूँगा ।

3.तीसरा व्रत- 5 प्रकार की मोटकी चोरी का समझ धारणानुसार, आगार सहित, पच्चक्खाण, दो करण तीन योग से, जीवन पर्यन्त । धारणानुसार अतिचार टालने का ध्यान रखूँगा ।

4. चौथा व्रत- 1. संपूर्ण कुशील सेवन का त्याग अथवा मर्यादा( ) । परस्त्री का त्याग। दिन का त्याग । नई शादी( ) वर्ष के बाद त्याग । धारणानुसार अतिचार टालने का ध्यान रखूँगा ।

5. पाँचवाँ व्रत– खेती ( ) । कुल मकान दुकान ( ) शेष परिगंह रूपयों में ( ) अथवा सोना में ( ) इस मर्यादा उपरांत समझ धारणा अनुसार त्याग । एक करण तीन योग से । अतिचार टालने का ध्यान रखूँगा ।

6. छट्ठा व्रत– हिन्दुस्तान उपरांत त्याग । या देश ( ) उपरांत त्याग । ऊंचे (मील) नीचे (फुट) उपरांत त्याग । एक करण तीन योग से, समझ अनुसार । अतिचार टालने का ध्यान रखूंगा ।

7. सातवाँ व्रत– (1) मंजन( ) । (2) साबुन नहाने का( ), (3) तेल ( ) अन्य विलेपन( ) (4) स्नान महिने में( ) दिन त्याग । (5) वस्त्र जाति ( ), रेशम का त्याग, (6) फूल( ) इत्र( ) फूल माला( ), (7) आभूषण( ), (8) धप जाति( ), अगरबत्ती की जाति( ), (9) हरी ( ) जमीकंद( ), (10) मेवा( ), (11) वाहन- हवाई जहाज( ) समुद्री जहाज( ) जानवर की सवारी( ) (12) जूता जाति( ) जोड़ी ( ), (13) सयण( ) प्रतिदिन, (14) सचित्त प्रतिदिन( ), (15) द्रव्य ( ) प्रतिदिन ।

व्यापार कुल( ) कर्मादान( ) । इस उपरो+ मर्यादा के उपरांत त्याग, समझ धारणानुसार, आगार सहित, एक करण तीन योग से । अतिचारों को टालने का ध्यान रखूंगा । भूल, दवा का आगार । दूसरा करदे उसका आगार ।

8. आठवाँ व्रत– चार प्रकार के अनर्थदण्ड का अपनी समझ व विवेक अनुसार टालने का ध्यान रखूँगा दो करण तेनी योग से, जीवन पर्यन्त, बनते कोशीश ज्ञान और विवेक बढ़ाऊँगा ।

त्याग करे– होली खेलना ( ) फटाका छोडना ( ) तास खेलना ( ) सात व्यसन ( ) धूम्रपान ( ) तम्बाकू खाना, सूंघना ( ) बिना माप के पानी से स्नान ( ) अणछाणा पानी पीना ( ), रात्रि स्नान आदि कार्य ( ) । कोई भी आरम्भ-समारंभ की वस्तु की अति प्रशंसा नहीं करने का ध्यान रखूँगा ।

9. नवमाँ व्रत– महिने में सामायिक ( ) करूँगा, आगार सहित । 32 दोष का ज्ञान करके वर्जन करने का ध्यान रखूंगा ।

10. दसवाँ व्रत– नित्य 23 नियम(14 नियम) धारण करूँगा, चितारूँगा।

और तीन मनोरथ चिंतन करूंगा । अभ्यास की कमी, भूल और अस्वस्थता का आगार ।

11. ग्यारहवाँ व्रत– कुल दया पौषध वर्ष में ( ) समझ धारणानुसार, आचार सहित ।

12. बारहवाँ व्रत– प्रतिदिन एक बर भोजन करते समय 3 नवकार गिनकर सुपात्रदान देने की भावना भाना । संत सतियों के सामने झूठ बोलने का त्याग ।

अन्य पच्चक्खाण - निवृत्ति व्यापार से ( ) चार खंद ( ) रात्रि भोजन ( ) नवकारसी ( ) प्रतिक्रमण ( ) मास में । अन्य जो भी पच्चक्खाण हो या करना हो उन्हें नोट कर लें ।

नोट – सभी व्रत समझ अनुसार धारणानुसार धारण करता हूं । भूल ए वं शारीरिक परिस्थिति तथा परवश का आगार । इन लिखे नियमों की प्रतिमास दो बार अवश्य पढ़ूँगा ।

इसमें कभी भी जो नयी शंका उतपन्न होगी जिसके विषय में सभी कुछ भी सोचा समझा नहीं है उसे समय की समझ, शक्ति, भावनानुसार करूँगा । समझ, धारणा, आगार, अतिचार आदि के विस्तार को पढ़कर समझ लेना ।

वांचन करना– 1. सम्यक्त्व विमर्श, मोक्ष मार्ग, नव तत्व साथे । समर्थ समाधान भाग 1-2-3 । उत्तराध्ययन सूत्र हिन्दी, दशवैकालिक हिन्दी । जैन तत्व प्रकाश ( ) वर्ष में पढूँगा ।

2. उपासक दशा सूत्र का सारांश वर्ष में ( ) बार पढूँगा ।

3. बारह व्रतों का विस्तृत वर्णन इस पुस्तक से महिने में ( ) बार पढूँगा।

4. बत्तीस आगमों के हिन्दी सारांश की बत्तीस पुस्तकें ( ) वर्ष में पढूँगा।

5. चार छेद सूत्र विवेचन यु+ ब्यावर से प्रकाशित ( ) वर्ष में पढ़ लूंगा

एच्छिक वांचन– सद्धर्म मंडन, समकित सार, सृष्टिवाद और ईश्वर, गणधरवाद, जिनागम विरूद्ध मूर्तिपूजा, लोकाशाह मत समर्थन स्थानकवासी जैन धर्म की सत्यता । जैन सिद्धान्त बोल संग्रह भाग एक से सात तक, मुखवस्त्रिका निर्णय, सम्यक्त्व शल्योद्धार इत्यादि निबंध चर्चा के साहित्य पढ़ना ।

शास्त्र वांचन (लेखक संपादक)- धासीलालजी म. सा., मधुकरजी म. सा., अमोलक ऋषिजी म. सा., आत्मारामजी म. सा., सैलाना, बीकानेर, जोधपुर एवं आगम नवनीत प्रकाशन समिति सिरोही आदि से प्रकाशित आगम साहित्य का अध्ययन करना ।

हरे शाक फल आदि के नाम :- (जिस वस्तु को रखना हो उस पर निशान कर देना चाहिए)

हरे शाक के नाम :-

1. ककड़ी
2. करेला
3. भिणडी
4. तुरई
5. चवले की फली
6. गवार की फली
7. मूंग की फली
8. सेम की फली
9. मटर की फली
10. तुवर की फली
11. मोठ की फली
12. हरे चने (बूठ, छोला)
13. लौकी (जाल, चिया)
14. खर
15. काचरा (काचर)
16. काचरी (छोटा काचर)
17. तरबूच (मतीग)
18. घिया तोरई
19. मोगरी
20. चालोर की फली
21. डींडसी
22. टिंडोरा
23. करौंदा
24. खीरा
25. परवल
26. भुट्टा (मकई)
27. हरी मिर्च
28. आँवला
29. लिसोड़ा (बड़गुन्दा)
30. कंटोला
31. दक्खिनी बटरा की फली
32. सरगवा की सींग
33. हरी जुवार
34. हरा बाजरा (सिट्ट)
35. खेजड़े की फली (सांगरी, खोखा)
36. वैर बैर
37. टमाटर
38. पपीता (एरण ककडी
39. गांठ गोची एवं पत्तेवाली गोबी
40. मेथी
41. पालक
42. बथुवा
43. चौलाई (चन्दलिया)
44. धनिया
45. सुवा
46. सरसों के पत्ते

47. कुल्का
48. मूली के पत्ते
49. पोदीना
50. लोनी
51. परवल के पत्ते
52. मीठे नीम के पत्ते
53. ढाक के पत्ते
54. अजवाइन के पत्ते
55. तुलसी के पत्ते
56. पोई के पत्ते
57. नागरवेल के पान
58. चेल की भाजी
59. अफीम की डोडे
60. ककरेला (कंकोड़ा)
61. तरककड़ी
62. कुन्दरू
63. गुलाब के फूल
64. फूल गोबी

फूलों के नाम

1. गुलाब
2. मौगरा
3. चमेली
4. चम्पा
5. केवड़ा
6. बेला
7. गेंदा
8. मोरसिरी
9. जूही
10. मरुवा
11. कनेर

फलों के नाम

1. आम
2. बरबूजा
3. मीठा नींबू (मोसंबी)
4. केला
5. अमरूद
6. नारंगी
7. सेव
8. अनार (दाड़िम)
9. अंगूर (द्राक्ष)
10. सीताफल (सरीफा)
11. चकोतरा (पपनूस बिजोरा)
12. नासपति
13. नारियलकच्चा (डाभ)
14. अनानास
15. कमरख
16. पौंडा, ईख (सांठा)
17. पपीता (एरण ककड़ी)
18. बेर या बोर
19. फालसा
20. खिरनी (रायण)
21. गोंदा (गुन्दी)
22. सफरजन्द
23. जामुन काला
24. जामुन सफेद

25.	गुलाब जामुन	39.	सहतूत
26.	कमलगट्टा	40.	हरी खारक (खजूर)
27.	तरबूज (मतीरा)	41.	हरी सुपारी
28.	सिंघाड़े (सींघोड़ा)	42.	हरी इमली
29.	नींबू छोटे (कागजी नींबू)	43.	हरी सौंफ
30.	हरी बादाम	44.	कपित्थ (कैत-कबीट)
31.	हाडी (कच्ची खुरमानी)	45.	टींबरू (तेंदू)
32.	आड़ू	46.	कसेरू
33.	बिही (अमरूद)	47.	सफेदा
34.	लखवठ	48.	पीलु
35.	बेल फल	49.	जाल वृक्ष का फल(जालोटिया)
36.	राम फल	50.	सरदा
37.	लीची (लीचू)	51.	प्रतापी नींबू (महताची नींबू)
38.	मोरसिरी		

दतौन (दांतन)

1.	बंबूल की दत्तौन	5.	कपास के झाड़ की दत्तौन
2.	नीम की दत्तौन	6.	बड़ की दत्तौन
3.	बोरड़ी की दत्तौन	7.	जामुन की दत्तौन

कंदमूल

1.	आलू	7.	गाजर
2.	रतालू	8.	प्याज
3.	अरबी	9.	ल्हसुण
4.	सूरणकंद	10.	अदरक
5.	सफरकंद	11.	हल्दी
6.	मूला	12.	अनंत काय

नोट – मर्यादा किये गये पदार्थो के नाम जाति नोट करना । यथा-विलेपन, साबुन, सचित्त, वस्त्र, फूल, इत्र, अगरबत्ती, धूप, व्यापार, मेवा, वाहन आदि। अन्य भी व्रत प्रत्याख्यान संबंधी कोई भी संकलन अलग से कर लेना ।

निबंध-९७

विविध प्रश्नोत्तरों का सार संकलन

पंच परमेष्टी एवं वंदना संबंधी परिज्ञान :-

नमस्कार मंत्र में आये पंच मरमेष्ठी पदों का गुणों की अपेक्षा मूल दो पदों में समावेश किया जा सकता है यथा - १. सिद्ध २. साधु। शास्त्रों में इन दो पदों के गुणों का स्पष्ट संख्या के साथ कथन हुआ है। अन्य तीन पदों के गुणों का वर्णन शास्त्रों में अलग-अलग आया है किन्तु कोई भी प्रचलित संख्या का कथन आगम में नहीं है।

शास्त्रों में सिद्धों के ३१ गुण और साधुओं के २७ गुण की संख्या कही गई है । अरिहंत आचार्य उपाध्याय भी श्रमण तो है ही । उनमें भी साधु के २७ गुण तो होना आवश्यक है ।

सिद्धों के गुण ८ या ३१ :- समवायांग सूत्र और आवश्यक सूत्र में सिद्धों के गुण की संख्या ३१ कही है । उसी को संक्षिप्त करने से आठ हो जाते है। अरिहंत के १२ आचार्य के ३६ उपाध्याय के २५ गुण की संख्याएँ परंपरा से चल रही है आगम में ये संख्याएँ नहीं है ।

वंदना तीन बार :- तिक्खुत्तो के पाठ से वंदन करने का वर्णन अनेक शास्त्रों में है । वहां तीन बार आवर्तन करने का पाठ है । तीन बार उठ बैठ करने का नहीं ।

ज्ञान दर्शन चारित्र तीन गुणों की अपेक्षा से तीन बार वंदन करना ऐसी कथन परंपरा चल रही है । सिद्धों में ज्ञान दर्शन दो ही है और गुण ३१ है तो भी तीन बार ही वंदन किया जाता है अत: विनयभाव के पूर्ण प्रकटीकरण के लिये तीन बार वंदन किया जाता है । लौकिक व्यवहार में भी किसी बोली को निश्चित करने के लिये तीन बार कही जाती है।

आगम रायप्पसेणीय सूत्र में सूर्याभ देव का वर्णन है । उसने जब अपने विमान में रहे हुए तीर्थंकर प्रभू को मस्तक लगाने का कथन है । किन्तु तीन बार उठ बैठ करने की परम्परा आगम पाठों से नहीं निकलती है । फिर भी तीन की संख्या का महत्व आगम में और लौकिक में दोनों में होने से विनय के पूर्ण प्रकटीकरण के लिये तीन बार उठ बैठ कर वंदन करने की परंपरा को अनुचित या व्यर्थ नही कहा जा सकता । किन्तु

उससे आगे बढ़कर जो तीन की संख्या का उल्लंघन कर १०८ या १००८ या अन्यान्य संख्या में वंदन करने की कायिक प्रवृत्ति बढाई जाती है वह प्रवृत्ति अवश्य विचारणीय है ।

सीमंधर स्वामी की आज्ञा :- अपनी अपनी परंपरा के अनुसार किसी की भी आज्ञा ले ली तो उसमें विरोध करने या खंडन करने जैसी कोई बात नहीं है । किन्तु चिंतन दृष्टि से अपने शासनपति की आज्ञा ले लेना उपयुक्त है ।

एक महाविदेह क्षेत्र में चार तीर्थंकर है । उनमें में से किसका नाम लिया जाय और कौन भरत क्षेत्र से संबंधित है ? यह प्रश्न होगा जब कि शास्त्रों में वर्णित परोक्ष वंदन में दूसरा णमोत्थुणं अपने शासनपति तीर्थंकर मौजूद है तो उनको दिया जाता है और वे निर्वाण प्राप्त हो चूके हो तो दूसरा णमोत्थुणं अपने धर्माचार्य को दे दिया जाता है किंतु महाविदेह के विहरमान तीर्थंकर को कहीं भी णमोत्थुणं नहीं दिया जाता है । इससे भी यह स्पष्ट होता है कि शासन पति की आज्ञा लेना विशेष उपयुक्त है ।

व्यवहार से वंदनीय अवंदनीय :- साधु के लिये स्वगच्छ के पर्याय ज्येष्ठ सभी साधु वंदनीय होते है, तथा गच्छ गुरु की आज्ञा से सभी शुद्ध व्यवहार वाले अर्थात् जिनशासन की प्रभावना करने वाले यश फैलाने वाले अनिंदित आचार वाले अन्य भी पर्याय ज्येष्ठ साधु वंदनीय होते है।

जो साधु स्वच्छंदाचारी और स्वच्छंद प्ररुपणा करने वाले निर्ग्रंथ प्रवचन की श्रद्धा से च्युत, निंदित और अयोग्य आचरण वाले है वे साधु अवंदनीय होते है ।

श्रावक के लिये गृहस्थ जीवन होने से उसका कोई गच्छ नहीं होता। कुल गण संघ ये साधु की अपेक्षा शास्त्र में कहे हैं । अत: श्रावक के लिये सभी गच्छ के हीनाधिक आचार वाले साधु-साध्वी सभी वंदनीय होते है ।

निर्ग्रंथ प्रवचन के विपरीत प्ररुपण करने वाले दर्शन (श्रद्धा) से पतित हो ऐसे साधु-साध्वी की संगति से दूर रहना समकित की सुरक्षा के लिये उपयुक्त है ।

निंदा तिरस्कार अपमान आदि दुर्व्यवहार किसी के साथ भी नहीं करना चाहिये ।

वंदन की विधि और पाठ :- आगमों में आये वर्णनों के अनुसार प्रत्यक्ष वंदन तिक्खुत्तो के पाठ से किया जाता है । इसमें तीन आवर्तन करके मस्तक भूमि पर लगाकर पंचांग वंदन किया जाता है ।

प्रतिक्रमण के समय तीन बार वंदन **उत्कृष्ट वंदन के पाठ से** किया जाता है जिसमें १२ आवर्तन करना ४ बार मस्तक भूमि पर लगाना आदि विधि समवायांग सूत्र में बताई है ।

परोक्ष वंदन का प्रसंग आने पर णमोत्थुणं के पाठ से वंदन किया जाता है यथा-प्रदेशीराजा, धर्म रुचि अणगार, अंबड जी के शिष्यों ने संथारा करते समय और कोणिक राजा, चित्त सारथी ने संदेशावाहक द्वारा सूचना मिलने पर अपने घर पर से परोक्ष वंदन णमोत्थुणं के पाठ से किया ।

इस परोक्ष वंदन में बांया घुटना ऊंचा करके दाहिना घुटना भूमि पर दबाते हुए रखा जाता है । तीन बार मस्तक भूमि पर लगाया जाता है फिर सिद्धों को णमोत्थुणं देकर फिर गुरु आदि जिनका प्रसंग है उनको दूसरा णमोत्थुणं दिया जाता है । यह परोक्ष वंदन विधि उववाई, रायप्पसेणी, ज्ञाताधर्मकथा आदि सूत्रों में है ।

प्रतिक्रमण संबंधी परिज्ञान :-

दो समय प्रतिक्रमण किया जाता है । रात्रि प्रतिक्रमण का समय सूर्योदय के पूर्व का करीब एक मुहूर्त समय है जो लाल दिशा के कारण असज्झाय का समय होता है । सूर्यास्त के बाद जो करीब मुहूर्त भर लाल दिशा का समय होता है वह दैवसिक प्रतिक्रमण का समय है । उत्तराध्ययन सूत्र अध्ययन २६ के वर्णन से यह समय स्पष्ट होता है । इसमें शंका-कुशंका-तर्क को स्थान नहीं है ।

रात्रि के अंधकार के समय और असज्झाय के समय का सदुपयोग हो जाने से यह समय बुद्धिगम्य भी होता है ।

प्रतिक्रमण करने में समय कितना लगना :- आगम में ऐसा कोई स्पष्ट सिद्धान्त नहीं बताया गया है । क्षेत्र काल के परिवर्तनों में कहीं प्रतिक्रमण का स्वरूप छोटा है कहीं बड़ा है । कोई नवदीक्षित होता है कोई बहुत अभ्यस्त होते है । अत: हीनाधिक समय लगे तो कोई आग्रह रखने जैसी बात नहीं है ।

आगमिक अपेक्षा से लाल दिशा के असज्झाय का समय ३० मिनिट से लेकर ६०-७० मिनट भी कभी हो जाता है । अत: प्रतिक्रमण का समय भी ३० मिनिट से लेकर ६०-७० मिनिट का माना जा सकता है । सामूहिक व्यवस्था की दृष्टि से ४८ मिनिट में प्रतिक्रमण पूर्ण हो जाना चाहिये ।

श्रावक प्रतिक्रमण :- अनुयोग द्वार सूत्र में श्रावक को प्रतिक्रमण करना कहा है और उसके पाठ और विधि आवश्यक सूत्र की चूलिका रूप परिशिष्ट में है । जिसका स्पष्टीकरण आवश्यक सूत्र की निर्युक्ति टीका में उपलब्ध है ।

प्रतिक्रमण से अतिचारों की शुद्धि या अनाचारों की अथवा पापों की :- प्रतिक्रमण करने से व्रतों में लगे अतिचारों की शुद्धि होती है । व्रत के अनाचारों की शुद्धि प्रायश्चित्त ग्रहण करने से होती है और पापों की शुद्धि प्रायश्चित्त करने और उनके त्याग का मनोरथ रखने से कुछ शुद्धि हो सकती है अर्थात् प्रतिक्रमण कर लेने मात्र से अनाचार व पापों की शुद्धि नहीं होती है ।

प्रतिक्रमण व्रतधारी श्रावक को :- बारह व्रतधारी श्रावक को सुबह शाम दोनों समय या पक्खी का प्रतिक्रमण आवश्यक रूप से करना चाहिये । जिसने १२ व्रत धारण नहीं किये है वह भी अपने सीखे हुए प्रतिक्रमण का पुनरावर्तन और श्रवण कर सकता है । प्रत्येक श्रावक को कुछ न कुछ व्रत अवश्य होते ही है और व्रत न हो तो भी प्रतिक्रमण करने सुनने के निमित्त से भी कभी व्रत धारण करने की प्रेरणा पैदा हो सकती है । व्याख्या में प्रतिक्रमण को तीसरे प्रकार के वैद्य की औषध की उपमा देकर समझाया गया है ।

प्रथम वैद्य की दवा रोग हो तो ठीक कर दे और रोग न हो तो नया रोग करदे । दूसरे वैद्य की दवा रोग हो तो ठीक कर दे और रोग न हो तो कुछ भी नही करे । तीसरे वैद्य की दवा रोग हो तो ठीक करे और रोग न हो तो शरीर में पुष्टि करे । इसी तीसरी औषध के समान प्रतिक्रमण है । जो व्रत में दोष लगे हों तो शुद्धि कर दे न हो तो भगवद वाणी श्रवण परिवर्तना रूप स्वाध्याय, आत्म दोष चिंतन रूप ध्यान और सामायिक रूप सावद्य योग त्याग होने से, यह आत्मा के गुणों को पुष्ट ही करता

है । अत: व्रतधारी के साथ अन्य श्रावक भी प्रतिक्रमण कर सकते है और उन्हें भी शीघ्र व्रतधारी बनने की प्रेरणा लेनी चाहिये । आलस, प्रमाद और भयसंज्ञा, उपेक्षा वृत्ति को हटा कर व्रतधारी बनना चाहिये ।

सेल की घड़ी में अग्नि के जीव :-

वैज्ञानिक साधनों के प्रति उतावल बुद्धि से निर्णय किया गया ए क व्यापक भ्रम है कि सेल की घड़ी सचित है ।

शांत मानस से अग्नि के जीवों के लिंग को पहचान कर और स्वभाव स्वरूप का चिंतन करने से समझ में आ सकता है कि यह वैज्ञानिक साधन रूप सेल, घड़ी के कांटों को गति देने का काम करता है । इसमें अग्निकाय के जीवों के उत्पन्न होने योग्य शरीर पुद्गलों की वहां उत्पत्ति निष्पत्ति नहीं होती है और बादर अग्नि के जलने का वहां कोई लिंग याने पहिचान रुप चमक या गर्मी या धुआँ आदि कुछ भी नहीं होता है ।

जिस तरह बेटरी में पड़े सेल अचित होते है और उस बैटरी में जब बल्ब जलकर अग्नि की चमक दिखती है तभी अग्निकाय के जीवों की उत्पत्ति मानी जाती है । बिना बल्ब वाले सेल युक्त बेटरी में खटका (बटन) ऊंचा नीचा कर भी दे तो अग्नि जले बिना अग्नि नहीं मानी जाती है । उसी तरह घड़ी में रहे सेल के निमित से बल्ब जले तो अग्नि के जीव माने जा सकते है किंतु अग्नि न जले, प्रकाश नहीं दिखे, केवल कांटों के गति करने से अग्नि के जीव मान लेना अविचारकता है क्योंकि बादर अग्नि के जीव कहां और कैसे रूप में उत्पन्न हुए । इत्यादि कोई चिंतन किये बिना बाबा वाक्यं प्रमाणं की उक्ति से माना गया यह उक्त व्यापक भ्रम मात्र है ।

अत: वास्तव में सेल की घड़ी को सचित या अग्नि युक्त मानकर अनेक साधना नियमों में बाधक मानना पुनर्विचारणीय है । विचारणा किये बिना या विचारणा को स्थान भी न रख कर उतावल से निर्णय कर चलाये गये प्रवाह में बहते हुए सचित कहते रहना योग्य नहीं है तथा तत्संबंधी कायदे बनाकर स्थानक में पोस्टर लगाकर श्रावकों के लिये अति प्रवृत्ति बढाना अविवेक तथा पूर्वाग्रह, हठाग्रह मात्र है ।

सारांश लिखना तीर्थंकरों गणधरों की आशातना :-

समय की आवश्यकता के अनुसार आगमों का विवेचन लिखा जाता है। हिंदी संस्कृत भाषा में अर्थ या विस्तार किया जाता है । सूत्रों को अंग्रेजी भाषा में भी छपाया जाता है । उसी प्रकार समय की मांग होती है कि स्वाध्याय अस्वाध्याय का नियम न लगे और छोटे रूप में अल्प समय में शास्त्रों के विषयों का परिचय या मर्म समझने में आ जाय, ऐसे प्रत्येक आगम के सारांश छोटी-छोटी पुस्तकों में होना चाहिये । कई स्वाध्यायी चाहते हुए भी विस्तृत पुस्तकों को पढ़ नहीं पाते । इत्यादि ऐसे ही आशय से हिंदी पद्य मय भी कुछ शास्त्र बनाये गये है । ये सभी प्रयत्न जिनवाणी को जन जन तक पहुंचाने के और समझाने के सरल और रुचिकर समयाकुनूल माध्यम है । इसे आशातना नहीं समझकर श्रुत भक्ति और श्रुत सेवा समझना चाहिये ।

सचित्त जल का त्याग करने से लाभ :-

१. सचित्त पानी के त्याग रुप प्रत्याख्यान हो जाता है । २. कहीं भी अन्यत्र या ग्रामांतर जाने का हो तो नियंत्रण में रहना पड़ता है । ३. सीमित पानी के आरंभ के बाद समस्त स्थानों के सचित जल के जीवों को अभयदान हो जाता है । ४. सीमित जल की क्रिया के अतिरिक्त क्रिया रुक जाती है । ५. जीव युक्त चीज को मुंह में डालना श्रावक को अयोग्य होता है सातवें व्रत में सचित्ताहार करना अतिचार कहा है उसके त्याग का पालन होता है । ६. सचित्त जल में प्रतिक्षण नये जीव उत्पन्न होते रहते है मरते रहते है उनकी क्रिया बंद हो जाती है । ७. रसनेंद्रिय विजय भी होता है । ८. व्रत प्रत्याख्यान की भावना पुष्ट होती है जिससे उत्तरोतर त्याग नियम की वृद्धि होती है । ९. कभी परीक्षा की घड़ी आती है तब महान तप होता है । १०. अम्बड श्रावक के शिष्यों को आज्ञा बिना सचित्त जल लेने का त्याग था तो भी संथारा करना पड़ गया । ११. श्रावक की सातवीं पडिमा में सचित का त्याग करना जरूरी होता है फिर आठवीं पडिमा में उसके आरंभ करने का त्याग होता है । १२. अचित जल पीने वाला मुनियों को अचित्त निर्दोष जल के सुपात्र दान का लाभ प्राप्त कर सकता है क्योंकि साधुओं को निर्दोष पानी मिलना दुर्लभ होता है ।

अत: कोई भी त्याग नियम लेना तो जीवन में बहुत ही महत्त्व शील होता है । आगे बढने का या विचारने का मार्ग खुलता है । त्याग नहीं करने वाले को बहुत आश्रव खुला रहता है । व्रत प्रत्याख्यान का लक्ष्य भी नहीं बढ़ता है । सचित्त सजीव को खाने पीने में और अचित्त निर्जीव पदार्थ खाने पीने के परिणामों में भी बहुत अंतर होता है ।

अधिक मास में अस्वाध्याय कब :-

महीना बढ़ने पर प्रथम महीना छोड़ कर दूसरे महीने की पूनम ए कम की अस्वाध्याय रखना । बाल चन्द्र की अस्वाध्याय दोनों महीनों में रखना । और पर्व-महावीर जयंति, अक्षय तृतीया, चौमासी, संवत्सरी सभी दूसरे महीने में करना । अर्थात् महोत्सव पर्व सभी द्वितीय मास में होते है प्रथम मास को नपुंसक मास कहा गया है उसे गौण किया जाता है ।

१८००० शीलांग रथ गुण :-

करण ३, योग ३, संज्ञा ४, इन्द्रिय ५, (स्थावर ५, त्रस ४, अजीव १) संयम १०, क्षमा आदि यति धर्म १०, इनको गुणा करने पर १८००० होते हैं । इनकी १८००० गाथाएँ होती हैं पहली गाथा -

जे ण करेन्ति मणसा, णिज्झूहिय आहार सण्णा सोइंदिये
पुढवी कायारंभे, खंति जुत्ता ते मुणी वंदे ॥१॥

दसवीं ग्यारहवीं आशातना :- गुरु रत्नाधिक के साथ बाहर स्थंडिल जावे और गुर्वादिक से पहले ही स्थानक में आ जावे उनके साथ नहीं आवे उनका इन्तजार न करे तो शिष्य को बड़ों की आशातना लगती है। बड़े स्वयं आदेश करदे कि तुम इन्तजार नहीं करना, चले जाना, तो आगे आने में आशातना नहीं होती है । यह दसवीं आशातना है ।

साथ में स्थानक में आकर ईर्यावहि का कायोत्सर्ग गुरु आदि से पहले करे तो यह ग्यारहवीं आशातना है ।

क्या पहेले पानी से शुचि करतें तो भी आशातना :- यह कहना उपयुक्त नहीं है लिपी दोष या समझ भ्रम से ऐसा पाठ या अर्थ कहीं हो गया हो तो वह आगम सम्मत भी नहीं है और व्यवहार संगत भी नहीं है । भगवती सूत्र में एवंता कुमार मुनि का वर्णन है । वे बड़े संतो के साथ

स्थंडिल गये और पहले ही शुचि करके तैयार हो गये । कोई भी साधु स्थंडिल जाते है तो गांव के बाहर जाकर वे अलग-अलग दिशा में चले जाते हैं तब शुचि करने के लिये किसी के इन्तजार का कोई प्रश्न ही नहीं होता है ।

असभ्य बहिनों की ऐसी पद्धति होती है जो एक साथ निकट बैठकर शौच निवृत्ति करती है किंतु ऐसा सभ्य पुरुषों व साधु-साध्वी के लिये कल्पना करना योग्य नहीं है । अत: उपरोक्त समझ ही दसवीं ग्यारहवीं आशातना के लिये उपयुक्त है और साधुओं के आचरण समाचारी में भी वही दोनों प्रचलित है । किंतु शुचि नहीं करने की बात किसी साधु समुदाय में नहीं है । न ही ऐसा नवदीक्षित को सिखाया जाता है ।

मंदिर मार्गी डोरे से मुखवस्त्रिका :- साधु के जीवित अवस्था में मुखवस्त्रिका डोरे से बांधना पाप मानते है और मरे हुए साधु के मुखवस्त्रिका डोरे से बांधना धर्म मानते है । इनके ग्रंथों में लिखा है कि मृत साधु के मुंहपत्ति बांधकर फिर बाहर श्मशान यात्रा के लिये निकालना चाहिये साधु लिंग के वास्ते । प्रत्यक्ष प्रमाण के लिये कई तीर्थस्थानों के गुरुमंदिर में देख सकते हैं । यथा - बीजापुर (उत्तर गुजरात) में दिवाल पर लगे चित्रों में ।

ढाई द्वीप के बाहर चंद्र सूर्य :- जीवाभिगम सूत्र में वर्णन है कि चंद्र सूर्य का अंतर ५० हजार योजन का है । चंद्र-चंद्र, सूर्य-सूर्य का अंतर लाख योजन का है । किंतु जैसे ढाई द्वीप के अंदर इनकी चार पंक्ति है वैसे बाहर कितनी पंक्ति है या किस तरह है यह नहीं बताया है । अन्य ग्रंथों में परिमंडलाकर अवस्थिति मुख्य रुप से बताई है और पीछे आठ पंक्ति होने का मतांतर दिया है ।

विचारणा करने पर आठ पंक्ति की मान्यता उचित नहीं ठहरती है क्योंकि असंख्यातवें द्वीप समुद्र में असंख्य योजन का अंतर पंक्ति में हो जायेगा और सूर्य का प्रकाश सीमित संख्यात योजन ही संभव है पृथ्वीकाय मय रत्नों का । अत: परिमंडलाकार वाली मान्यता उचित प्रतीत होती है । प्रत्येक परिमंडल का अंतर एक लाख योजन कहा है वह भी उपयुक्त है । सूर्य चंद्रों की संख्या द्वीप समुद्रों में अधिक आयेगी ।

गणित हिसाब जो कहा गया है वह ढाई द्वीप तक ही समझना चाहिये। बाहर के लिये वह हिसाब नही चलेगा और मूल पाठ में बाहर के लिये वह हिसाब हो ऐसा कोई स्पष्ट संकेत भी नहीं है । जीवाभिगम सूत्र को ध्यान से देखने पर ज्ञात होगा ।

जिनशासन के पद :-

गुणों की साधु में वृद्धि होती जायेगी तो भी पांचवें पद में ही अनेक दर्जे हैं जो केवलज्ञान तक पराकाष्टा वाले हो सकते हैं और पाँचवे पद में ही रहकर उन्नति कर सकते हैं किन्तु गुणों से स्वत: ये दोनो पद नहीं आते हैं, संघ या गुरु द्वारा प्रतिष्ठित करने से ही आते हैं । गुण वृद्धि से वह मुनि बहुश्रुत, गीतार्थ, स्थविर आदि गिना जायेगा।

वर्तमान युग में पद :- जिनके व्यवहारु जीवन में संयम आचार का कोई ठिकाना नहीं होता है जो असत्य और अदत्त से भी दूर नहीं रह सकते, जिनके जीवन में गवेषणा नियमों की कोई अपेक्षा नहीं होती है, जो अतिवृद्ध हो गये होते है, जिनका जीवन महानदोषों से आकीर्ण चलता है, जिनसे विचरण भी नहीं हो सकता है व्हिलचेअर के आधीन चलते है, जो अपने संघ की समाचारी के पालन का पूर्ण लक्ष्य भी नहीं रखते, ऐसी स्थिति अपनी जानते हुए भी एवं आगम आदेशों को जानते हुए भी जो जिन शासन के ऐसे उच्च पदों को लेते है और उनको पद दिया जाता है तो यह सब आगम निरपेक्ष मनमानी होती है । ऐसा करना जिनशासन में ईमानदारी पूर्ण रहना नहीं कहलाता है । पद देने और लेने वालों को आगम आज्ञा और अपनी योग्यता को समझकर ईमानदारी से वर्तना चाहिये ।

सार यह है कि योग्यता, कर्तव्य क्षमता हो, जीवन आचार निष्ट हो, शास्त्राभ्यास हो, उन्हें पद लेना या उनको पद देना चाहिये ।

अयोग्य को पद देने वाले और अयोग्य होते हुए भी जानते हुए भी पद लेने वाले दोनों ही जिनशासन के अपराधी होते है और प्रायश्चित के भागी होते हैं । ऐसे अयोग्य साधको को केवल नाम मात्र का यह पद आता है । वास्तव में वे साधुत्व में भी नहीं होने से और भगवान की आज्ञाओं के (बहुविध अपराधी और) चोर होने से वे परमेष्ठी पद में समाविष्ठ नहीं होते हैं ।

शास्त्र में पंच परमेष्टी पद तो नमस्कार मंत्र में कहे है और अन्यत्र शास्त्र में साधु के कुल सातपद आते है और साध्वी के कुल ३ पद है । यथा - १. आचार्य २. उपाध्याय ३. प्रवर्तक ४. स्थविर ५. गणी, गणधर ७. गणावछेदक ।

१. प्रवर्तिनी २. गणावछेदिक । ३. स्थविरा

इनमें से आचार्य उपाध्याय प्रवर्तक और प्रवर्तिनी ये चार पद संघ या गुरु द्वारा प्रतिष्ठित किये जाते है शेष पद अपनी योग्यता और कर्तव्यों से आते हैं ।

छोटा गच्छ हो जहाँ आचार्य की आवश्यकता उपयोगिता न हो तो प्रवर्तक पद दिया जाता है । साध्वी समुदाय में अनेको को प्रवर्तिनी पद दिया जाता है । विशाल साधु समुदाय में आचार्य उपाध्याय पद के साथ ही छोटी छोटी टुकडी अर्थात् समूह विभाग पर प्रवर्तक कायम किये जाते हैं ।

प्रवर्तक प्रवर्तिनी की योग्यता :- ये अपने अधीनस्थ संत सतियों की आचार्य के समान संपूर्ण देख रेख करते हैं और बडे समुदाय में ये आचार्य के निश्राय में रहते हुए अमुक विभाग की देखरेख की जिम्मेदारी निभाते हैं । इनकी योग्यता आचार निष्ठता में आचार्य उपाध्याय के समान होती है । अन्य योग्यता में कुछ हीनाधिकता भी हो सकती है । यह पद भी योग्यता वालों को ही दिया जाता है । वर्तमान में इस पद की गरिमा का भी पूर्ण ध्यान नहीं रखा जाता है और असत्य असंबद्ध भाषण करने वालों और जिनके किसी भी महाव्रत समिति गुप्ति का कोई ठिकाना नहीं होता है, उन्हें भी यह पद दे दिया जाता है । यह भी जिन शासन में ईमानदारी युक्त कर्तव्य पालन नहीं हैं ।

जिनशासन के पाँचवें पद में आने वाला व्यक्ति भी योग्यताओं से संपन्न होना चाहिये तो फिर विशिष्ट पदों के लेने और देने में पूर्ण ईमानदारी रखना सभी का परम कर्तव्य होता है ।

सार यह कि किसी को भी पद लेने के पहले स्वयं को गुण संपन्न बनाना चाहिये । केवल मान संज्ञा और अपनी शान के लिये पद नहीं लेना चाहिये । स्वयं की अंतर आत्मा जानती है कि मैं संयम में सफल नहीं हूँ ब्रह्मचर्य पालन में सफल नहीं हूँ । समाचारी के प्रति मेरी कोई

सत्यनिष्ठता नहीं है । उसे पद लेना ही नहीं चाहिये, कोई दे और आग्रह करे तो इन्कार कर देना चाहिए एवं अपनी योग्यता और संयम के प्रति सत्यनिष्ठता पहले बढानी चाहिये ।

पद देने वालों को भी बिना योग्यता वालो को केवल खुशामदीपन के लिये या बहुमत से पद नहीं दे देना चाहिये ।

इन बातों का ध्यान नहीं रखने पर अयोग्य पद प्राप्त पदवीधर संघ को किधर कहाँ ले जायेंगे कितना पतन उत्थान साधु साध्वियों का और संघ का होगा यह कल्पना भी नहीं की जा सकती है ।

अत: आगम को समक्ष रखते हुए सही रूप से संघ व्यवस्था के कर्तव्यों का पालन किया जायेगा तभी जिनशासन की प्रभावना और उत्थान किया जा सकेगा ।

आजकल जो मंत्री महामंत्री पन्याय सूरि उपप्रवर्तक युवाचार्य उपाचार्य आदि पद दिये जाते है वे भी किसी शास्त्र में नहीं है किन्तु ये आगम से अतिरिक्त समय समय पर चलादिये जाने वाले पद है । इन पदों की आवश्यकता शास्त्रकारों ने नहीं समझी है । ये समय के प्रवाह से चलनेवाली पद्धतियों से उत्पन्न होने वाले पद है ।

आचार्य प्रवर्तक अपने पीछे आचार्य प्रवर्तक बनाने का संकेत करते हैं और वृद्धावस्था और निवृत्ति के समय भी अपने स्थान पर सीधा आचार्य ही स्थापित करते हैं । उपाचार्य युवाचार्य आदि की आगम से कोई सिद्धि नहीं होती है ।

मंत्री और महामंत्री और सलाहकार पद तो धार्मिक या आगमिक पद नहीं है, ये तो सांसारिक या राजनीतिक पद है ।

संघ व्यवस्था और पद व्यवस्था में उपयोगी सुझाव :- संघ व्यवस्था में भाग लेने वालों को समस्त उपलब्ध आचार शास्त्रों का अध्ययन करना चाहिये । हिन्दी भाषी को ब्यावर से प्रकाशित छेद सूत्रों का गंभीरता से अध्ययन करना चाहिये और संस्कृत भाषी विद्वान को छेद सूत्रों की प्राचीन टीकाएँ व्याख्याएँ पढनी चाहिये। इतने अध्ययन कर लेने वाले साधु या श्रावक को संघ व्यवस्था की पंचायती करने का पद देने अथवा पद लेने के क्षेत्र में आना चाहिये।

आचार शास्त्रों और छेद शास्त्रों के गहन अध्ययन से रहित साधु

श्रावक संघ की व्यवस्था और पद देने लेने की व्यवस्था के आगमिक अनुभव से संपन्न नहीं होते हैं उन्हें अपने योग्य अध्ययन के अभाव में इस क्षेत्र में नहीं घुसना चाहिये ।

दूसरी बात पद लेनेवाले को स्वयं की आत्मा में ईमानदारी से देखना चाहिये कि मैं संयम के व्यवहारिक नियम बराबर पाल रहा हूँ या नहीं, मैं पैदल विहार कर सकता हूँ या नहीं ? मैं अपने ब्रह्मचर्य व्रत से ईमानदार हूँ या नहीं ? मैं जीवन में झूठ और अनीति का सेवन तो नहीं करता हूं ? मैं दूसरे के शिष्य शिष्या साधु साध्वी पर नियत बिगाड कर अदत्त ग्रहण तो नहीं करता हूँ, मैं चोरी छिपे कुशील और भ्रष्टाचार तो नहीं चलाता हूँ, मैं अपने पास तिजोरी और नोटो के बंडल तो नहीं रखता हूँ ? इन सब प्रश्नों का उत्तर ईमानदारी से आत्मा में से राइट नहीं आता हो तो उसे कभी भी पद देने पर भी नहीं तेना चाहिये । और खुद को भी जिनशासन के पदों की भूख नहीं रखनी चाहिये ।

तीसरी बात यह है कि अनुशास्ता को अपना अनुशासन और प्रायश्चित व्यवस्था सशक्त रखनी चाहिये । सामान्य दोषों के अतिरिक्त बडे दोषों का प्रायश्चित्त पूर्ण सक्रिय और सशक्त रखना चाहिये । यथा-झूठ बोलने और झूठा लेखन करने वालों को, अदत्त और शिष्यचोरी करने वालों को, ब्रह्मचर्य व्रत भंग करने वालों को, कपट प्रपंच असत्याक्षेप और गुमनामी झूठे पैंपलेट प्रचार करने-कराने वालों को और समाचारी विपरीत सचित खाने वालों को, कठोर और तात्कालिक प्रायश्चित्त देना चाहिये ।

यदि कोई पदवीधर अर्थात् जिनशासन के प्रतिष्ठित आचार्य उपाध्याय या प्रवर्तक पद पर रहते हुए झूठ बोले, झूठ लेखन करे, शिष्य-चोरी आदि अदत्त ग्रहण करे, साध्वियों या अन्य स्त्रियों के साथ कुशील सेवन करे, किसी के लिये गुमनामी झूठे प्रपंचकारी पेम्पलेट प्रचारित करे तो उन पदवीधरों के उक्त दोषों के मालूम पडते ही उन्हें नई दीक्षा देने का आगमोक्त प्रायश्चित देवे और जिंदगी भर उनको जिनशासन का कोई भी पद नहीं देवे, यह शास्त्र सम्मत प्रायश्चित ईमानदारी से दिया जाए । खोटी प्रतिष्ठा रखने हेतु झूठ कपट के प्रपंचों को नहीं चलने दे। यदि आचार्य भी ऐसे कोई भी कार्य करे, किसी के दबाव से किसी को

झूठ और मिश्र भाषा के आक्षेप लगावे तो वह भी संघ और बहुश्रुत स्थविरों की आज्ञा से प्रायश्चित्त ले, स्वीकार करे । किन्तु किसी भी उस बडे अपराधों के प्रायश्चित्त व्यवस्था की उपेक्षा नहीं करे ।

इस प्रकार ये तीन बातों १. आगम अध्ययन २. पद लेने वालों की ईमानदारी ३. प्रायश्चित व्यवस्था का ध्यान संघ व्यवस्था में रखा जाय तो बहुत कुछ सही ढंग सामने आ सकता है । ये सार भूत उपयोगी सुझाव ध्यान में आये हैं जो संक्षेप में संकेत रूप में बताये हैं ।

अवगाहना, ऊँचाई माप के तरीके :-

आगमों में भिन्न भिन्न तरीके से अवगाहनाओं में अपेक्षा भेद समझना चाहिये। **(१)** सीधे खडे मनुष्य की अपेक्षा अवगाहना (ऊंचाई) ८४ अंगुल होती है । **(२)** पाँव ऊँचा करने की अपेक्षा अवगाहना १६ अंगुल होती है । **(३)** सीधे पाँव से खडे होकर हाथ ऊंचा करने की अपेक्षा १०८ अंगुल होती है । **(४)** पाँव ऊँचे किये हाथ भी ऊँचे किये मनुष्य की अपेक्षा १२० अंगुल अवगाहना होती है ।

इन विविध अपेक्षाओं से शास्त्र में प्रसंगानुसार कहीं १२० अंगुल की अवगाहना कही जाती है कभी अन्य अपेक्षा से अन्य अवगाहना कही जाती है ।

उत्तरा. अ. ३५ गाथा १८ का शब्दार्थ :- उस गाथा में एक साथ सात शब्दों का प्रयोग हुआ है वे इस प्रकार हैं ।

१. अच्चण = अर्चा = सामने आना, आरती उतारना ।
२. रयणं = रचना = मंडप आदि या मकान आसन आदि सजावट करना।
३. वंदना = वंदन = वंदन, नमस्कार, प्रणाम, चरणस्पर्श ।
४. पूयणं = पूजा = मालर्पण, शालादि, आहारादि वस्त्रादि देना।
५. इट्ठी = ऋद्धि = आडंम्बर, ठठारा, जन समूह इकट्ठा करना
६. सक्कार = सत्कार = जय-विजय आदि नारे लगाना ।
७. सम्माणं = सम्मान = गुणग्राम, स्तुति, सम्मान समारोह, स्वागत समारोह आदि ।

इन सब की साधु मन से भी चाहना नहीं करे । श्रावक जो कुछ साधु के योग्य कल्पनीय विनय भक्ति करे तो उसे निषेध नहीं किया जा सकता । किंतु मुनि स्वयं इन कृत्यों की चाहना नहीं करे ।

निबंध- ९८

सामाजिक व्यवस्था संबंधी प्रश्न एवं समाधान

प्रश्न-१ : क्या साध्वियाँ साधु के लिये वंदनीय हो सकती है ?

उत्तर- भारतीय अन्य धर्म सिद्धान्तों में भी कहीं भी श्रमणियें श्रमणों के लिये वंदनीय नहीं कही गई है । इससे भी यह फलित होता है कि यह भारतीय संस्कृति का लौकिक व्यवहार है । इसी कारण यह नियम मध्यम तीर्थंकरों के शासन में भी वैकल्पिक नहीं करने जरूरी कहा गया है । अत: पुरुष ज्येष्ठ का व्यवहार करने का अनादि धर्मसिद्धांत ही लौकिक व्यवहार के अनुगत है । ऐसा ही सर्वज्ञों ने उपयुक्त देखा है । इसी सिद्धान्त से लोक व्यवहार एवं व्यवस्था सुंदर ढंग से चली आ रही है । ऐसा न मानने पर कोई साधु साध्वी को वंदन करेगा कोई साध्वी साधु को । २५-३० साधु साध्वी एक साथ मिलने पर उनकी वंदन व्यवस्था, बैठने की व्यवस्था, पाट पर बैठने की व्यवस्था आदि का ढंग अव्यवस्थित और समाज में भी हास्यापद होगा ।

इस आगमिक और व्यवहारोचित नियम का मतलब यह नहीं है कि साधु,साध्वी संघ का आदर नहीं कर सकते हैं । जब कि श्रमणियों के आवश्यक स्थिति में वह हर प्रकार की सेवा के लिये तैयार रहता है। वह सेवा आगमानुसार यह है- गोचरी लाना, संरक्षण करना, उठाकर अन्यत्र पहुँचा देना, कहीं गिरने पड़ते घबराते वक्त सहारा देना, पानी में बहती हुई को तैर कर निकालना आदि अनेक विधान आगमों में है । साध्वी के साधु के पास आने पर साधु गृहस्थ से भी अधिक सम्मान के साथ उससे प्रत्येक व्यवहार करते हैं तथा भाव वंदन तो साधु भी साध्वियों को सदा करते ही हैं ।

पुरुष ज्येष्ठ कल्प मात्र लौकिक व्यवहार के लिये ही तीर्थंकरों द्वारा निर्दिष्ट है । उसकी अवहेलना अवज्ञा करना श्रद्धालु बुद्धिमानों को योग्य नहीं है । क्योंकि हम तो बहुत ही अल्पज्ञ हैं । व्यवहार की जगह व्यवहार होता है और निश्चय-भाव की जगह निश्चय-भाव रखे जाते हैं। यही पुरुष ज्येष्ठ कल्प को समझने का सार है ।

लौकिक व्यवहार में हम देखेंगे कि स्त्रियाँ सदा पुरुष के अधीन

होती है । नीति श्लोक के अनुसार भी वह तीनों वय में पुरुष के संरक्षण में रहती है । कोई अपनी अनेक पीढी के दादा पडदादा आदि के नाम भी गिनते हैं किन्तु माता दादी की परंपरा के नाम लोक में ज्यादा नहीं चलते हैं ।

प्राचीन काल से राजा महाराजा पुरुष होते थे, राणियाँ उनके आधीन गिनी जाती थी । पंच पंचायती में भी घर का छोटा बडा पुरुष ही जाता था किन्तु जीवित दादी, पडदादी बडी उम्र की होती तो भी घर पर ही रहती थी । और एक बात सबसे महत्त्व की आर्य संस्कृति में ध्यान देने योग्य है कि शादी करके स्त्री पुरुष के घर आती है किन्तु पुरुष स्त्री के घर नहीं जाता है ।

ये सब स्त्री के साथ अन्याय नहीं कहे जा सकते किन्तु इसे प्राचीन आर्य संस्कृति की दीर्घ दृष्टि संपन्न सुव्यवस्था ही समझ कर श्रद्धा रखनी चाहिये ।

साधु साध्वी के वंदन व्यवहार को पलटने के आग्रह मानस वालों को यदि यह कार्य पहले दे दिया जाय कि आप समाज में स्त्रियों को शादी करके पुरुष के घर जाने की प्रथा को पलटा कर पुरुषों को स्त्रियों के घर जाकर रहने के नियम की व्यवस्था करवाने का कष्ट करें तो ऐसा प्रयत्न करने पर या प्रयत्न का संकल्प करने पर भी ये घबराकर फिर साधु साध्वी के नियम की आगम व्यवस्था और तीर्थंकर आज्ञा को पलटाने में अपनी तुच्छ बुद्धि को महत्त्व देना सदा के लिये भूल जायेंगे।

अत: सही तथ्य यह है कि यह महापुरुषों के ज्ञान से चलाई गई व्यवहारोचित व्यवस्था है । इसमें हस्तक्षेप करने का अधिकार अल्प ज्ञानियों को अपने हाथ में नहीं लेना चाहिये ।

प्रश्न-२ : सेल वाली घडी पहिन कर कोई साधु का चरण स्पर्श वंदन करे या आहार बहरावे तो कौन सा दोष है ?

उत्तर समझ भ्रम से जैन समाज में यह एक मानी गई परंपरा मात्र है । सेल की घडी में अग्नि के जीव का कोई चिह्न नहीं होता, अग्नि जीवों का शरीर भी नहीं होता, उसके किसी भी विभाग में अग्नि के जीव आकर उत्पन्न नहीं होते है । फिर भी कल्पना मात्र से उसमें अग्नि के जीव जबरन मान लिये गये हैं ।

किसी किसी घडी में वल्व जलता हो तो उसमें अग्नि का चिन्ह, शरीर और जीवों का उत्पन्न होना स्पष्ट समझ में आने योग्य है । वल्व जले बिना सेल प्रयोग से कांटों के हिलने चलने की क्रिया को अग्नि का कार्य मानना उपयुक्त नहीं है ।

सेल की बिना वल्व की घडी में कहीं पर भी अग्नि का जलना, चमक होना, गर्मी या धुँआ होना, नहीं देखा जाता है । अत: चरण स्पर्श आदि में सेल की घडी बाधक मानना यह समझ भ्रम से चलाई गई परंपरा मात्र है । इसका आगम दृष्टिकोण और वैज्ञानिक दृष्टिकोण से बहुमुखी चिंतन नहीं हो पाता है तब तक गुरु आज्ञानुसार करना चाहिये और शीघ्र ही प्रत्येक संघ के विकसित मानस वाले साधकों को इस बात पर अवश्य विचार विमर्श करना चाहिये ।

प्रश्न-३ : धर्म स्थानक में सेल की या पेण्डुलम वाली घडी रखना कल्पना है ।

उत्तर- श्रावक अपनी आवश्यकता और प्रचलन अनुसार कोई भी प्रकार की घडी स्थानक में रखता है तो इसमें साधु के कल्प में, आगम आज्ञा में कोई दोष नहीं है ।

शास्त्र में यह बताया गया है कि जिस गृहस्थ के मकान आदि में सर्वरात्रि दीपक जले या अग्नि जले ऐसा मकान मिले तो साधु को वहां ठहरना नहीं कल्पता है । अन्य कोई मकान सुलभ न हो तो साधु को उस रात्रि भर अग्नि जलने वाले मकान में और रात्रि भर दीपक जलने वाले गृहस्थ के स्थान में एक या दो रात्रि रहना कल्पता है।

वैसे ही जहां पर संपूर्ण रात्रि पानी के घडे भरे पडे रहते हो और अन्य मकान के मिलने की सुलभता न हो तो एक दो दिन वहां भी ठहरना कल्पता है, वैसे ही यदि किसी गृहस्थ के मकान में मदिरा के घड़े भरे पडे हो और अन्य मकान की सुलभता न हो तो साधु वहाँ भी एक दो दिन ठहर सकता है ।

अर्थात् अन्य स्थान सुलभ हो तो साधु को रात दिन अग्नि वाले स्थानों में, पानी और शराब के घड़े रहने वाले स्थान में, ठहरना नहीं कल्पता है । शास्त्र में इसके लिये ज्योति और प्रदीप शब्द का प्रयोग किया गया है और उसका हेतु व्याख्या करने वाले प्राचीन आचार्यों ने

बताया है कि उस अग्नि में साधु का कोई कपडा उड कर जा सकता है या आते जाते चलते किसी भी प्रकार से उस दीपक और जलती अग्नि की विराधना साधु से हो सकती है । कभी ठंडी अधिक होने से साधु को तापने की प्रवृति भी हो सकेगी । पानी मदिरा आदि में भी कभी पीने के संकल्प होना अथवा अन्य को पीने की आशंका होना आदि दोष होगा, ऐसे स्पष्टीकरण व्याख्याकारों ने किये हैं ।

तात्पर्य यह है कि खुल्ली अग्नि और दीपक के अग्निकाय की विराधना की संभावना से मकान अकल्पनीय कहे गये हैं किन्तु सेल की घडी या पेण्डूलम (लोलक) वाली घडी से साधु को किसी भी प्रकार की विराधना या दोष होने की संभावना नहीं होती है । इन घडियों के दीवाल में लगे रहने से साधु के स्पर्श होने की संभावना भी नहीं है और उस घडियों में मंद गति से कांटे और लोलक (पेण्डूलम) हिलता है उसके अतिरिक्त उसमें कोई भी विशेष विराधना या दोष नहीं है ।

अत: पेण्डूलम (लोलक) की घडी और सेल की घडी वाले स्थानक में साधु को ठहरने का शास्त्र से कुछ भी निषेध नहीं होता है । और साधु को उस स्थान में ठहरने में कोई दोष भी नहीं है । अग्नि, दीपक, पानी, शराब के घडे आदि से युक्त मकानों में और स्त्री आदि से युक्त मकानों में ठहरने का आगम में निषेध है परिस्थिति से वहां भी १-२ दिन ठहरने की शास्त्र में तो उदारता ही प्रदर्शित की गई है ।

अत: जो साधु ऐसी सेल या पेण्डुलम की घडी जैसी छोटी-छोटी बातों के लिये हल्ला गुल्ला करते हैं, अपने आग्रहों को गृहस्थ पर थोपते हैं, यह कृत्य उनका आगम चिंतन रहित व्यक्तिगत प्रकृति के अविवेक के कारण होता है । वास्तव में साधुओं को पूर्ण आगम अनुभव को ध्यान में रखकर बडी गंभीरता और विवेक के साथ समाज में पेश आना चाहिये । स्वयं के आग्रहों का उत्कर्ष और अन्यों के प्रवर्तन का अपकर्ष करने के उतावल भाव न रख कर, श्रावक समाज जो कि अनेक साधुओं से जुडा होता है, उसके साथ विवेक और विचक्षणता से, कुशलता से और शांत मानस से नम्रता से व्यवहार करना चाहिये । इसी में उनके साधुता का सम्मान भी सुरक्षित रहता है । आत्म शांति और भगवदाज्ञा की आराधना भी सुरक्षित रह सकती है ।

राजप्रननीय आदि सूत्रों में वर्णन आता है कि भगवान के समवसरण में सूर्याभ देव आदि दर्शन करने आते हैं फिर वहाँ वे ३२ प्रकार के नाटक बताने की प्रवृति करते हैं तब साधुओं के कल्प अकल्प को समझते हुए भी, वहाँ भगवान महावीर एवं अनेक गणधर प्रभु तथा अनेक साधु साध्वी शांति से बैठे रहते हैं । किंतु अपनी स्वतंत्रता के अधिकार से कोई भी वहां हल्ला, हुकम, दौड़ भाग करना या देव का तिरस्कार करना आदि नहीं करते हैं । समय परिस्थिति का विवेक सीखने योग्य ऐसे अनेक आगम वर्णन है । आज कल कई साधु अपनी आचार निष्ठता की धुन में कितना ही अव्यवहार और दूसरों पर हकूमत करने पर तुल जाते हैं, वह उनका अपना अविवेक और अशांति, आगम अनुभव से सुधारने योग्य है ।

प्रश्न-४ : दूसरे जैन गच्छ के साधु-साध्वियों को वंदन नहीं करना, अपने स्थानकों में उतरने नहीं देना, गोचरी नहीं देना, चौमासा नहीं करवाना, सेवा भक्ति नहीं करना, यह श्रावक का आचार ठीक है ? ऐसी प्रेरणा देना जैन साधु को उचित है ?

उत्तर- कुल गण संघ संप्रदाय व्यवस्था साधुओं के अनुशासन सुसंचालन हेतु होना आगम से सिद्ध है किंतु श्रावकों के गृहस्थ जीवन होने से उनका कोई गच्छ नहीं होता है । साधुओं के विचरण शिक्षण अनुशासन आदि के लिये गच्छ आदि होते हैं । अत: जैन श्रावकों का एक ही धर्म सिद्धान्त होते हुए अलग अलग संप्रदाय होना उपयुक्त नहीं है । जैन श्रावक के लिये हीनाधिक सभी आचार वाले जैन साधु साध्वी वंदनीय नमस्करणीय सम्माननीय होते हैं । उसके घर पर आने वाले जैनेत्तर श्रमण या गृहस्थ का भी यथायोग्य सम्मान शिष्टाचार उसे करना होता है ।

जैन सुसज्जन श्रावक के द्वार पर या घर पर कोई भी याचक श्रमण आ जाय तो उसको यथाशक्ति दान देना, उसका गृहस्थ व्यवहार आचार होता है । संपन्न सुसज्जन श्रावक के घर में किसी को भी यह नहीं कहा जाता कि जाओ यहां कुछ भी नहीं मिलेगा ।

मैत्री भाव, उदारता भाव, अनुकंपा भाव, प्रतिष्ठित श्रावकों का आदर्शगुण होता है । कितने ही श्रावक दवाएँ कपडे, स्टेशनरी, सामान आदि खुले दिल से सभी को देते हैं ।

राजप्रश्नीय सूत्र वर्णित प्रदेशी राजा ने श्रमणोपासक बनकर राज्य की आवक का एक चौथाई हिस्सा मुक्त हस्त से दान देने हेतु दानशाला के लिये कायम कर दिया था । उसमें किसी को भी इन्कार नहीं किया जाता था ।

जैन श्रमणोपासक के समकित के अतिचारों का अभिप्राय भी यह है कि उत्सूत्र प्ररूपणा करने वाले का अथवा अन्यमत के प्रचारकों संन्यासियों का अति संपर्क परिचय नहीं बढाना चाहिये । जिससे कि अपनी धर्म की सही समझ सुरक्षित रहे । किंतु किसी के साथ असद् व्यवहार करना या उसके मांगने पर भिक्षा आदि नहीं देना, घर पर आये व्यक्ति का अपमान अनादर कर देना, ऐसा कोई भी शास्त्र या धर्म नहीं कह सकता । ऐसे व्यवहार संकीर्ण प्रकृति के मानस की उपज है । जिससे लोग मानवीयता से भी नीचे उतरते हैं और उन लोगों की यह संकीर्ण मानसता दया, मैत्रीभाव का दिवाला निकालती है और देखने वाले बुद्धिजीवी नई पीढी को धर्म की निंदा करने का चांस देती है ।

जैन धर्म को पाकर अपने सिद्धान्त और सही समझ पर अटल रहना, स्थिर रहना यह तो परम कर्तव्य है किंतु सामाजिक प्राणी गृहस्थ जीवन में रहते हुए- संकीर्णता, अव्यवहारिकता और अमानवीयता करे, यह धर्म का विवेक नहीं कहा जा सकता ।

जिनके मौलिक सिद्धांत या मान्यताओं में जैनागमों से विरोध आता हो ऐसे गृहत्यागी श्रमणों का अति परिचय संपर्क वर्जन भी द्वेष और वैर विरोध भाव से नहीं किंतु अपनी सुश्रद्धा की सुरक्षा के लक्ष्य से कहा गया है । अत: ऐसे भिन्न श्रद्धावाले व्यक्ति कभी अपने पास, अपने घर पर, किसी संयोग से पहुंच जाय तो उनके साथ भी सज्जनता का व्यवहार करना, प्रतिष्ठित धार्मिक सज्जन का मानवीय आचार होता है । इसमें भी जो प्रकृति की तुच्छता या समझ भ्रम से अविवेक करता है तो वह जाति, समाज या धर्म को बदनाम कराने वाला बनता है ।

ऐसी स्थिति में एक सरीखे मौलिक सिद्धान्त वाले स्था. जैन श्रमणों के साथ किसी भी प्रकार का असम्मान का भाव या व्यवहार रखना तो किंचित भी उचित नहीं होता है । जो भी साधु या श्रावक ऐसी मनोवृत्ति और अनुदारता रखते हैं वे स्वयं अपने जैनत्व एवं मानवीयता

को चेलेंज देने का कार्य करते हैं । ऐसे अनुदार विचारों से धर्म का मर्म रूप मैत्री भाव, समता भाव, जीवन में अनुपम शांति, धर्मी व्यक्ति को देखते ही आनंद विभोर होना आदि तत्वों को पाना बहुत कठिन होता है। एवं ऐसे अनुदार वृत्ति के मानवों में ज्ञान आचार तप आदि के अजीर्ण से उत्पन्न होने वाले अवगुण-घमंड, मैं पन, अहंभाव, अनम्रता, अप्रेम, पर दोष दर्शन, स्व उत्कर्ष, दूसरों का पराभव निंदा-तिरस्कार, क्रोध भाव आदि पनपते रहते हैं । जिससे उनका उत्कृष्ट द्रव्य आचार भी उन्हें सही भाव समाधि नहीं दे सकता । ऐसे अनुदार प्रवृत्ति के साधु-श्रावक समय समय पर समाज में क्लेश उत्पादन के निमित बनते रहते हैं ।

हमारे आगम में श्रावक वर्णन में या समकित के वर्णन में मौलिक सिद्धांतो की एकता वाले साधुओं के साथ आचार की हीनाधिकता को लेकर कोई असद् व्यवहार करना श्रावक गृहस्थों के लिये नहीं कहा गया है । संगति वर्जन का जो निर्देश समकित स्वरूप में उत्तरा. अ. २८ में कहा है यह भी आचार भेद या समुदाय भेद के लिये नहीं है किंतु सैद्धांतिक प्ररुपणा में विपरीत मानस जिनका हो उन्हीं की संगति (अति परिचय) का निषेध किया गया है ।

अत: जो साधु या श्रावक यह समझते है कि जैन की भिन्न संप्रदाय या भिन्न आचार वालों की संगति दर्शन वंदन सेवा भक्ति करने से पाप लगता है या समकित में दोष लगता है तो यह उनकी स्वमति संकीर्ण मानस से किया गया कथन है । ऐसा करने एवं कहने से वे खुद भी आगम निरपेक्ष वक्तव्य करने के दोष के भागी बनते हैं । ऐसी संकीर्णता जैनी और धर्मी कहे जाने वालों के स्वर्णिम जीवन में कलंक रूप समझनी चाहिये ।

अत: ऐसे उन्नत दयामय अहिंसा परमोधर्म को पाकर जैन साधु श्रावकों का दिल प्राणी मात्र के प्रति परम उदार होना चाहिये । तब जिन श्रमणों के मौलिक सिद्धांत की एकता हो, उनके प्रति तो परम अर्पणता के भाव होने चाहिये । तभी समझा और माना जाएगा कि हमने धर्म का परम अमृत रस पाया है । जहां सिद्धांतो में मौलिक भेद है तो उनका अति परिचय नहीं करने हेतु व्यक्तिगत विवेक और सामाजिक विवेक उपयोगी हो सकते हैं । किंतु वहाँ भी असद् व्यवहार और अमानवीयता तो कभी

नहीं करनी चाहिये । सार यही है कि अपने सिद्धान्त में सुरक्षित रहते हुए जैन श्रमणों के प्रति पूर्ण सम्मान का व्यवहार रखना और रखाना प्रत्येक साधु श्रावक का कर्तव्य और परम धर्म है, ऐसा समझना चाहिये ।

शुद्धाचार वाले श्रमण को हीनाचार वाले श्रमणों की संगति वंदना आदि व्यवहार नहीं करने का जो आगम में निर्देश आता है वह उनकी साधु समाचारी रूप है । साधु अपने गुरु के सानिध्य में अपने आचार संयम को सुरक्षित रखते हुए विचरण करते है । संयम से शिथिल बने साधुओं के संपर्क से, अति परिचय से, उनके संयम के लक्ष्य को खतरा रहता है । अत: यह साधु समाचारी उनके आचार की सुरक्षा के लिये है । किंतु उस साधुओं की अंतरंग छेद सूत्रगत इस समाचारी को श्रावक गृहस्थ जीवन से संबंधित करना योग्य नहीं है । साधुओं को भी परस्पर यथा योग्य शिष्टाचार रखने का मैत्री भाव पूर्वक प्रसंगोपात मिलने का निषेध आगम से नही होता है ।

प्रश्न-५ : क्या जैनों की समकित देने की परम्परा अर्थात् गुरु आमनाय धराने की प्रथा रागद्वेष कराने का तरीका है ?

उत्तर- यह प्रथा कभी किसी अच्छे हेतु से चलाई गई होगी किंतु यह पद्धति आगम सम्मत नहीं है और आज इस प्रवृत्ति में मौलिक गुण रूप प्राण एक पैसे भर भी नहीं रह गया है । मेरे तेरे की उलझन धर्म में प्रसारित करने वाली यह प्रवृति बनती जा रही है ।

साधु समाज के लिये उनके शास्त्र उन्हें आदेश दे रहे हैं कि गांव, घर, व्यक्ति किसी में भी ममत्व भाव नहीं करना । किंतु आज इस गुरु आमनाय के प्रभाव से लगभग साधु समाज-मेरे श्रावक, मेरे घर, मेरे गाँव, मेरा संप्रदाय, मेरा डंका, मेरा बोल बाला, मेरा प्रभाव, इसमें ही तल्लीन बन रहे हैं । पूर्व के प्रश्न में बताई गई संकीर्णता आदि अवगुणों में इस प्रवृति का भी बहुत बडा योगदान है ।

इस प्रवृत्ति के प्रभाव में बहकर कई लोग यह भी कह देते कि **गुरु एक सेवा अनेक ।** किंतु आगम कहेगा 'सुसाहुणो गुरुणो' अर्थात् समस्त सुसाधु गुरु हैं । हमारे नमस्कार मंत्र में कहीं किसी का नाम नहीं, तीर्थंकर का भी नाम नहीं है । ऐसे व्यक्ति महत्व से परे रहने वाले परम उदार धर्म में व्यक्ति महत्व और वाडा धर्म को पनपाने में बहुत बडा हाथ

यदि किसी का है तो वह इस गुरु आमनाय प्रथा का है । आज कल की चलती इस प्रथा में मौलिक गुण किंचित भी नहीं रह गया है । छोटे बच्चों और नवविवाहिता को जो गुरु आमनाय कराई जाती है, उन्हें सही समकित मर्म समझा कर हृदय शुद्ध ज्ञान से नहीं भरा जाता है । शीर्फ उन्हें एक संप्रदाय एक वाडा के संत सतियों को अपना गुरु मानने के लिये बांधा जाता है । समकित देने वाले और दिलाने वालों का उद्देश्य भी यही होता है और समकित लेने वाला कोई तो कुछ भी नहीं समझता है और कोई समझता है तो इतना ही समझ पाता है कि मेरे और मेरे परिवार के ये इस संप्रदाय वाले ही गुरु है और हमारी धर्म संप्रदाय यही है ।

किंतु समकित के नाम के यह केवल वाडा धर्म का प्रचार है । समकित प्राप्ति के लिये तो देवगुरु धर्म का सही समझ ज्ञान प्राप्त करना होगा । दृढ आस्था सुगुरु सुदेव सुधर्म में आनी होगी । कुगुरु कुदेव का भी ज्ञान होना होगा । धर्म के मूल तत्त्व और आचारों का ज्ञान और उस पर अटल आस्था होनी होगी । जिनवाणी रूप आगम शास्त्रों के प्रति पूर्ण आस्था होगी । आगमोक्त प्रत्येक तत्त्व हृदय सहित मान्य होगा । ऐसे मानस से अंतर समझ बनेगी, तब समकित गुण की उपलब्धि होगी।

ऐसे संस्कार तो साधुओं के परिचय करने, समय निकालकर प्रवचन सुनने और सत्संग करने आदि से शुद्ध समझ रुप में होंगे तब उनसे समकित की प्राप्ति होगी । समकित कोई किसी के द्वारा प्रतिष्ठित करने की या देने लेने की बाह्य चीज नहीं है । वह तो मात्र सही समझ रुप है जो ज्ञान संस्कार और अनुभव से, आत्मगुण विकास से सिद्ध हो सकती है ।

अत: समकित के नाम से जो गुरु आमनाय का तरीका समाज में चल रहा है, उसमें हित तो नहींवत् रह गया है, अहित अधिक निहित हो गया है । इसके कारण सामान्य सी बुद्धि वाले गृहस्थ भी उन्नत आचार वाले साधुओं को अपना गुरु नहीं मान सकता किंतु 'ये तो दूसरों के गुरु हैं' ऐसे अंतर मानस में संकीर्ण विचार कण रखते है । ऐसी स्थिति में उदार समझ रूप समकित को वह प्राप्त करने की जगह शुद्ध समझ से वंचित रह कर वाडा धर्म से सिंचित मानस वाला बनता है कि **गुरु एक सेवा अनेक ।** किंतु यह आगम विपरीत समझ है । आगम तो यही सिखाता

है कि समस्त सुसाधु श्रमण श्रमणी हमारे आराध्य गुरु है । ऐसी उदार समझ देव गुरु धर्म शास्त्र के लिये जब हमारी होगी तभी हमें सही रुप में समकित की उपलब्धि हो सकेगी । गुरु आमनाय लेने वाले अपनी प्रतिज्ञा को भी नहीं समझ सकते हैं । वे जीवन में मनमानी मान्यता या समझ करते समय इस गुरु आमनाय ले लेने मात्र से नहीं अटकते हैं । किन्तु अन्य गच्छ के संतों के पास जाने या उन्हें गुरु मानने से अटक ही जाते हैं । गुरु आमना शब्द किसी भी आगम में नहीं है और ऐसी गुरु आमनाय देने की प्रथा किसी भी शास्त्र से नहीं निकलती है ।

इसलिये गुरु आमनाय की प्रथा राग द्वेष की निमित्त भूत अवश्य बन रही है । एक काव्य में इस प्रकार कहा गया है –

गुरु आमना आगम मांहि, कहीं नहीं चाले ।
समकित धारें स्वेच्छा थी, ज्यों व्रत बारा धारें ॥
परिग्रह नी पोषक या जाणों, बडा बडा रांचे ।
थारा म्हांरा गांव घरोंने, इधर उधर खांचे ॥

अन्य ७५ वर्ष पूर्व का काव्य

है शास्त्र से निराली, सुमदाय की रिवाजें ।
मजबूत बांधते हैं, गुरु आमनाय क्यारी ॥
विश्वेश वीर भगवन् शुध लीजिये हमारी ॥१॥

यह काव्य धर्मदास संप्रदाय के विद्वान कवि श्री माधोमुनि जी म. सा. ने सत्तर पिचत्तर वर्ष पूर्व बनाया था । उन्होंने गुरु आमनाय रूप वाडे में श्रावकों को मजबूत बांधने की शास्त्र से अलग प्रवृत्ति कही है। वास्तव में यह समकित की ओट में संकीर्ण मानस वृत्ति को चलाने वाली प्रथा है ।

साधु-साध्वी जी को चाहिये कि वे संगति में आने वालों को संक्षेप या विस्तार में प्रवचन सभा में शुद्ध समझ रूप समकित, देवगुरु धर्म शास्त्र का महत्व स्वरूप एवं नवतत्व स्वरूप और श्रद्धान करने का तरीका समझाते रहें । इस तरह अपने पास आने वालों की समझ श्रद्धा सच्चे वीतराग धर्म से दृढ़ जोइंट करते रहें । ऐसा करते हुए समस्त स्थानक वासी एक मौलिक सिद्धांत वाले साधु साध्वियों के प्रति निर्मल आस्था रखने का संस्कार दें। व्यक्ति महत्त्व से किसी को न जोड़े, गुण

पूजक बनना सीखावें, तो लोगों को उदारमानसता के साथ सच्ची समकित की उपलब्धि हो सकेगी और एक सिद्धांत वाले समाज के अनेक विभाग नहीं बनते जायेंगे ।

प्रश्न-६ : किसी भी आचार विषय को समझाने के साथ प्रायश्चित और दोष की बात को स्पष्ट करने से दोषों को बढावा देना नहीं होता है ?

उत्तर- (१) जैनागमों मे किसी सूत्र में केवल शुद्ध आचार की ही बात की जाती है । (२) किसी में शुद्ध आचार का विधान और अशुद्ध आचार का निषेध किया जाता है । (३) कही अशुद्ध आचार की हानियाँ भी बताई जाती है । (४) किसी सूत्र में शुद्ध आचार का विधान, अशुद्ध आचार का निषेध और साथ ही अशुद्ध आचार का प्रायश्चित भी बताया जाता है ।

किसी सूत्र में केवल निषेध की बातें कहीं जाती है और कहीं मात्र प्रायश्चित्त का वर्णन सेकडों की संख्या में बता दिया गया है । सूत्रों का अध्ययन करने से इस प्रकार का स्पष्ट अनुभव होता है । इस प्रकार जैनागम, साधकों के संपूर्ण जीवन की विविध अवस्थाओं और परिस्थितिओं को लक्ष्य में रखते हुए विविध विषयों के विविध तरीकों से परिपूर्ण है ।

अनाचारों के वर्णन से केवल निषेध ही निषेध होते है तो निशीथ सूत्रमें केवल प्रायश्चित ही भरे है तो प्रश्न व्याकरण संवर द्वार में एवं आचारांग सूत्र के बहुत अंश में आचार ही अधिक बताया है । बृहत्कल्प और व्यवहार सूत्र में विधान, निषेध और प्रायश्चित्त तीनों एक साथ कई सूत्रों में कहे हैं ।

अतः आगमकारो के बहुमुखी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए प्रश्न कर्ता की समस्त अपेक्षा आशय को समझकर उसके प्रश्न के पीछे रहे समस्त आशयों का समाधान एक ही उत्तर से हो जाय इसके लिये आचार विषय का राजमार्ग, अपवाद मार्ग और दोषो के प्रकारों के साथ हानिलाभ एवं सावधानियाँ-विवेक तथा प्रायश्चित्त आदि बताने पर प्रश्न का सही विश्लेषण हो सकता है और प्रश्न कर्ता यदि स्वयं विद्वान और बहुमुखी चिंतन वाला है तो उसके व्यक्तित्व और अंतरमानस के भावों को समझकर पूर्ण वर्णन विधि निषेध एवं प्रायश्चित्त और विवेक के

तरीकों के साथ बताना ज्यादा उपयुक्त होता है । इस दृष्णिकोण से आचार संबंधी प्रश्न के उत्तर के साथ प्रायश्चित्त तक का स्पष्टीकरण दिया जाता है किन्तु दोषों को बढावा देना उत्तर देने का आशय नहीं होता है । अपितु दोष सेवन करने वाले या करना चाहने वालों को सही मार्गदर्शन मिले और दोष सेवन नहीं करना चाहनेवालों को भी प्रोत्साहन मिले और उनका उच्च आदर्श भी कायम रहे इस लक्ष्य से अनेक पहलुओं द्वारा उत्तर दिया जाना उत्तम होता है ।

निबंध- ९९

सामायिक सूत्र प्रश्नोत्तर : प्राथमिक श्रेणी

नमस्कार मंत्र :-

प्रश्न-१ : अरिहंत किसे कहते है ?

उत्तर : तीर्थंकर भगवान को अरिहंत कहते हैं । जिन्होंने चार घाती कर्म का क्षय कर दिया है उन्हे अरिहंत कहते हैं ।

प्रश्न-२ : सिद्ध किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो आठ कर्म को संपूर्ण क्षय कर मोक्ष चले गये है उन्हें सिद्ध भगवान कहते है ।

प्रश्न-३ : आचार्य किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो चतुर्विध संघ के या साधु-साध्वी समुदाय के नायक होते हैं। उन्हें आचार्य कहते हैं।

प्रश्न-४ : उपाध्याय किसे कहते हैं ?

उत्तर : जो साधुओं को पढ़ाते हैं उन्हे उपाध्याय कहते हैं ।

प्रश्न-५ : साधु किसे कहते हैं ?

उत्तर : धन परिवार का त्याग कर जो पाँच महाव्रत, ५ समिति, ३ गुप्ति का पालन करते हैं उन्हें साधु कहते हैं।

प्रश्न-६ : चार घाती कर्म कौन से हैं ?

उत्तर : १. ज्ञानावरणीय, २. दर्शनावरणीय, ३. वेदनीय, ४. मोहनीय,

प्रश्न-७ : शेष चार कर्म कौन से हैं ?

उत्तर : आयु, नाम, गौत्र, अंतराय । ये अघातिकर्म है ।

प्रश्न-८ : तीर्थंकर कितने हैं ?

उत्तर : चौवीस हैं । वर्तमान अवसर्पिणी काल में चौवीस हुए हैं ।

प्रश्न-९ : नमस्कार मंत्र में कितने पदों को नमस्कार किया हैं ?

उत्तर : पाँच पदों को । अरिहंत सिद्ध आचार्य उपाध्याय साधु ।

प्रश्न-१० : इन पाँच पद में हमारे देव कितने है और गुरु कितने हैं?

उत्तर : इनमें २ पद हमारे आराध्य देव है और ३ पद हमारे पूज्य गुरु हैं।

प्रश्न-११ : देव दो हैं उनमें बडे कौन हैं ?

उत्तर : सिद्ध भगवान ।

प्रश्न- १२ : नमस्कार मंत्र में सिद्धों से पहले अरिहंतो को नमस्कार क्यों किया है ?

उत्तर : अरिहंत भगवान ही धर्म प्रकट करते हैं, सिद्धों का स्वरूप भी हमें वे ही बताते हैं। अत: हमारे परम उपकारी होने से उन्हें प्रथम पद में नमस्कार किया गया है ।

प्रश्न-१३ : तीन गुरु पद में बडे कौन है ?

उत्तर : जो दीक्षा में बडे होते हैं वे गुरु पद में बडे कहलाते हैं ? अत: आचार्य उपाध्याय साधु कोई भी बडे हो सकते हैं और कोई छोटे भी हो सकते हैं ।

प्रश्न-१४ : नमस्कार मंत्र में आचार्य उपाध्याय को पहले नमस्कार कयों किया है ?

उत्तर : आचार्य संघ के नायक होते हैं, साधु साध्वियों की सम्पूर्ण देख रेख करते हैं । उपाध्याय साधुओं को ज्ञान दान देते हैं । इसलिये संघ के उपकारी होने से इनको तीसरे चौथे पद में नमस्कार किया हैं।

प्रश्न-१५ : क्या अरिहंत भगवान, सिद्ध भगवान को नमस्कार करते हैं?

उत्तर : हाँ करते हैं ।

प्रश्न-१६ : क्या आचार्य उपाध्याय भी साधुजी को वंदन करते हैं।

उत्तर : हाँ, जो दीक्षा में बडे हों तो उन्हें वंदन करते हैं ।

प्रश्न-१७ : ऐसा क्यों ? पद बडा है अत: वंदन नहीं करना चाहिये?

उत्तर : यदि कोई प्रधान मंत्री बन जाय तो भी अपने माता, पिता, बडे भाई आदि को वंदन करेगा ही । उसी तरह जो पहले दीक्षा लिये हुए होते हैं

वे साधुओं में बडे कहलाते हैं । अत: उन्हें वंदना की जाती हैं ।

प्रश्न-१८ : पाँच पदों में मुख्य गुण कितने कहे जाते हैं ?

उत्तर : अरिहंत के १२, सिद्ध के ८, आचार्य के ३६, उपाध्याय के २५ साधु के २७।

प्रश्न-१९ : माला में १०८ मणिये क्यों होते हैं ?

उत्तर : पाँच पदों के कुल मिलाकर १०८ गुण माने गये हैं इसलिये माला के मणिये १०८ होते हैं ।

प्रश्न-२० : नमस्कार मंत्र कब गिनना चाहिये ?

उत्तर : सोते समय, उठते समय, घर से बाहर जाते समय, संकट में और जब इच्छा हो तभी नमस्कार मंत्र गिनना चाहिये ।

गुरु वंदन का पाठ :

प्रश्न- १ : वंदना किसे कहते हैं ?

उत्तर : साधु साध्वी आदि के प्रति विनय भाव प्रकट करने को वंदना कहते हैं ।

प्रश्न- २ : वंदना कितने प्रकार की होती है ?

उत्तर : वंदना तीन प्रकार की होती है । (१) जघन्य (२) मध्यम (३)उत्कृष्ट ।

प्रश्न- ३ : जघन्य वंदना किसे कहते हैं ?

उत्तर : दोनों हाथ जोड कर मस्तक झुकाते हुए **मत्थएण वंदामि** बोलना, जघन्य वंदना है ।

प्रश्न-४ : जघन्य वंदना कब करनी चाहिये ?

उत्तर : गोचरी, विहार या किसी भी कार्य के लिये जाते या आते हुए साधु साध्वी हमें सामने मिल जाय तब जघन्य वंदना करनी चाहिये।

प्रश्न- ५ : मध्यम वंदना किसे कहते हैं ?

उत्तर : तीन बार प्रदक्षिणा(आवर्तन) करके पंचांग झुकाकर तिक्खुत्तो (गुरु वंदन) के पाठ से वंदना करना मध्यम वंदना है ।

प्रश्न- ६ : मध्यम वंदना कब करनी चाहिये ।

उत्तर : साधु-साध्वीजी अपने स्थान पर शांत आसन से बैठे हों या खड़े हों तब मध्यम वंदना करनी चाहिये ।

प्रश्न-७ : मध्यम वंदना दिन में कितनी बार करनी चाहिये ?

उत्तर : दिन में एक बार अवश्य करनी चाहिये । तथा सामायिक आदि करते समय या स्वाध्याय आदि धार्मिक कार्यों की आज्ञा लेते समय भी मध्यम वंदना करनी चाहिये ।

प्रश्न-८ : साधु-साध्वी जी के पास से बार बार निकलना हो या उनके पास बार-बार जाना हो तो कौन सी वंदना करना चाहिये ?

उत्तर : एक बार मध्यम वंदना करना फिर आने के समय और जाने के समय जधन्य वंदना अवश्य करना चाहिये ।

प्रश्न-९ : वंदना करते समय और किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिये ?

उत्तर : (१) उत्तरासंग या रूमाल आदि मुँह के पास रखना चाहिये । (२) कम से कम ३-४ हाथ दूर खड़े रह कर वंदना करना चाहिये (३) आँखे इधर उधर न करते हुए गुरु के सामने एकाग्र द्रष्टि रखना चाहिये (४) व्याख्यान आदि प्रसंग में मौन पूर्वक वंदना करनी चाहिये । (५) उच्च स्वर से न बोल कर मंद स्वर से बोलते हुए वंदना करना चाहिये। जहाँ बोलने से किसी के कार्य में बाधा पडे तो मौन पूर्वक वंदना करनी और केवल 'मत्थएण वंदामि' मंद स्वर से बोलना चाहिये । (६) अपने नख पसीना आदि गुरु के न लगे इस तरह हल्के हाथ से चरण स्पर्श करना चाहिये । यदि बीच में कोई बैठे हो या अधिक संख्या हो तो दूर से ही वंदन पूर्ण कर लेना चाहिए?

प्रश्न-१० : प्रदक्षिणा (आवर्तन) तीन बार किस प्रकार करना चाहिये?

उत्तर : गुरुदेव सामने विराजमान हो तब दोनों हाथ जोडकर उनके दाहिनी और से बांई और हाथों को घुमाते हुए तीन बार उनका आवर्तन करना चाहिये । फिर पंजों व घुटनों के बल से बैठ कर पंचांग झुकाकर वंदना करनी चाहिये ।

प्रश्न-११ : तीन बार प्रदक्षिणा क्यों की जाती है ?

उत्तर : पूर्ण विनय प्रकट करने के लिये तीन बार प्रदक्षिणा की जाती है। लौकिक व्यवहार में भी किसी बात को पूर्ण निश्चित करने के लिये तीन बार कहा जाता है ।

प्रश्न-१२ : पर्यूपासना किसे कहते हैं ?

उत्तर : नम्र आसन से कुछ सुनने की इच्छा से गुरु के समीप बैठना ।

प्रश्न-१३ : सत्कार किसे कहते है ?

उत्तर : स्तुति करना, स्वागत करना, वस्त्र आदि देना ।

प्रश्न-१४ : सन्मान किसे कहते हैं ?

उत्तर : बडा मानना, ऊँचा आसन देना, नम्रता करना ।

प्रश्न-१५ : उत्कृष्ट वंदना किसे कहते है ?

उत्तर : 'खमासमणा' के पाठ से द्वादस आवर्तन पूर्वक, वंदन करना।

प्रश्न-१६ : उत्कृष्ट वंदना कब की जाती है ?

उत्तर : प्रतिक्रमण के समय गुरु की आशातनाओ संबंधी आलोचना एवं क्षमापना करने के लिये उत्कृष्ट वंदना की जाती है ।

प्रश्न-१७ : तीनों वंदना में कितने कितने आवर्तन होते हैं ?

उत्तर : जघन्य वंदना में आवर्तन नहीं होते । मध्यम वंदना में तीन आवर्तन होते है । और उत्कृष्ट वंदना में १२ आवर्तन होते हैं ।

प्रश्न-१८ : वंदना कितनी बार करनी चाहिये ?

उत्तर : जघन्य और मध्यम वंदना एक-एक बार करनी चाहिये तथा उत्कृष्ट वंदना दो बार करनी चाहिये । मध्यम वंदना तीन बार करने की परम्परा चल रही है ।

प्रश्न-१९ : मध्यम वंदना किनको की जाती है ?

उत्तर : जो भी साधु साध्वीजी सामने हो उन्हें मध्यम वंदना की जाती है। तीर्थंकर भगवान के दर्शन के समय भी मध्यम वंदना की जाती है तथा कोई भी कार्य की आज्ञा लेनी हो तो मध्यम वंदना की जाती है ।

प्रश्न-२० : प्रदक्षिणा का क्या मतलब है ?

उत्तर : प्रदक्षिणा का मतलब है आवर्तन करना, आरती उतारना । आरती पूज्यनीय की उतारी जाती है खुद के मस्तक की आरती नहीं उतारी जाती है ?

गमनागमन अतिचार शुद्धि का पाठ :-

प्रश्न-१ : इस पाठ से क्या किया जाता है

उत्तर : इस पाठ से चलने आदि में हुई जीव विराधना की आलोचना की जाती है ।

प्रश्न-२ : जीव विराधना किसे कहते है ?

उत्तर : छोटे बडे किसी जीव को अपने शरीर आदि से कष्ट पहुँचाना।

प्रश्न-३ : जीव विराधना कितने प्रकार की है ?

उत्तर : जीव विराधना १० प्रकार की है जो इस पाठ में 'अभिहया' से लेकर 'जीवियाओ ववरोविया' तक बताई गई है ।

प्रश्न-४ : दस विराधना कौन सी है ?

उत्तर : (१) सन्मुख आते जीव को कष्ट पहुँचाया हो (२) धूल आदि से ढंका हो (३) मसला हो (४) इकट्ठा किया हो (५) छुआ हो (६) परिताप पहुँचाया हो (७) किलामना पहुँचाई हो (८) भयभीत किया हो (९) एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखा हो (१०) जीवन से रहित किया हो ।

प्रश्न-५ : जीव विराधना न हो इसका क्या उपाय है ?

उत्तर : शांति से विवेक पूर्वक नीचे देखकर चलना, प्रत्येक कार्य सावधानी से जीवों को ध्यान में रखते हुए करना ।

कायोत्सर्ग करने का पाठ :-

प्रश्न-१ : यह पाठ कब बोला जाता है ?

उत्तर : जब कभी कोई भी कायोत्सर्ग करना हो उसके लिये यह पाठ अवश्य बोलना चाहिये । इस पाठ के पूर्ण होते ही कायोत्सर्ग प्रारभ्भ करना चाहिये ।

प्रश्न-२ : इस पाठ में क्या वर्णन है ?

उत्तर : इस पाठ में कायोत्सर्ग करने की प्रतिज्ञा है और उसमें रखे जाने वाले आगारों का वर्णन है ।

प्रश्न-३ : कायोत्सर्ग में कितने आगार रखे जाते हैं ?

उत्तर : कायोत्सर्ग में मुख्य १२ आगर रखे जाते हैं ।

प्रश्न-४ : कायोत्सर्ग का क्या अर्थ है ?

उत्तर : शरीर से हिलना आदि सभी प्रवृति बंद कर स्थिर रहना, मौन रहना और शरीर के प्रति ममता भी नहीं रखना ।

प्रश्न-५ : कायोत्सर्ग किस तरह किया जाता है ?

उत्तर : दो तरह से किया जाता है (१) खड़े रह कर दोनों हाथों को पाँव के पास सीधा लंबा करके दोनों पाँवों मे कुछ (आठ अंगुल) दूरी रख कर

एकाग्र द्रष्टि से स्थिर रहना (२) सुखासन आदि से सीधे बैठकर पाँव पर दाहिनी हथेली को बाई हथेली पर रख कर एकाग्र द्रष्टि से स्थिर रहना।

प्रश्न-६ : बारह आगार कौन से हैं ?

उत्तर : (१) श्वास लेना (२) श्वास छोडना (३) खांसी आना (४) छींक आना (५) उबासी आना (६) डकार आना (७) वायु निसर्ग होना (८) चक्कर आना (९) पित्त विकार में मुर्छा आना (१०) थोडा सा अंगो का हिलना (११) थोडा सा कफ का संचार (१२) थोडा सा दृष्टि का चलना ।ये शरीर की स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ है । जिसे रोकना सहज शक्य नहीं होता है ।

प्रश्न-७ : आगार क्यों रखे जाते हैं ?

उत्तर : आगार में कही हुई प्रवृति हो जाने पर भी कायोत्सर्ग खंडित नहीं होवे इसलिये आगार रखे जाते हैं ।

प्रश्न-८ : कायोत्सर्ग में क्या किया जाता है ?

उत्तर : कायोत्सर्ग में आत्म चिंतन, व्रतों में लगे दोषो का चिंतन, अपने अवगुणों का तथा तीर्थंकर आदि के गुणों का चिंतन किया जाता है, धर्म ध्यान व शुक्ल ध्यान किया जाता है ?

प्रश्न-९ : कायोत्सर्ग पूर्ण कैसे किया जाता है ?

उत्तर : अपने इच्छित विषय का चिंतन या इच्छित समय पूर्ण हो जाने पर 'नमो अरिहंताणं' ऐसा उच्चारण करते हुए कायोत्सर्ग पूर्ण किया जाता है और उसके बाद कायोत्सर्ग शुद्धि का पाठ और २४ जिन स्तुति का पाठ बोलना चाहिए ।

चौबीस जिन स्तुति का पाठ-

प्रश्न-१ : इस पाठ में किन की स्तुति की गई है ?

उत्तर : हमारे भरत क्षेत्र में हुए २४ तीर्थंकर भगवान के नाम बताकर उनकी स्तुति की गई है ।

प्रश्न-२ : इन्हें तीर्थंकर क्यों कहा जाता है ?

उत्तर : साधु साध्वी श्रावक श्राविका इन चार तीर्थ की स्थापना करने से उन्हें तीर्थंकर कहते है अथवा पुनः जिन शासन के पूर्ण श्रुत ज्ञान की स्थापना करने से इन्हें तीर्थंकर कहते है ।

प्रश्न-३ : तीर्थ किसे कहते है ?

उत्तर : जो तीर्थंकर भगवान की वाणी से स्वयं संसार को तिर जाते है अर्थात् पार कर लेते है और अपनी संगति करने वालों को भी संसार से तिरने का मार्ग बताते हैं उन्हें तीर्थ कहते हैं ।

प्रश्न-४ : २४ तीर्थंकर अभी कहाँ है ?

उत्तर : भगवान ऋषभ देव से भगवान महावीर स्वामी पर्यन्त चौवीसों तीर्थंकर भगवान सिद्ध हो गये हैं मोक्ष में पधार गये हैं ।

प्रश्न-५ : अभी किस तीर्थंकर भगवान का शासन है ?

उत्तर : अंतिम २४ वें तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी का शासन अभी चल रहा है ।

प्रश्न-६ : तीर्थंकर भगवान मोक्ष से वापिस मनुष्य लोक में कब आते है?

उत्तर : मोक्ष में जाने के बाद वहाँ आत्म स्वरूप में लीन हो जाते है। उनके शरीर और कर्म तथा राग और द्वेष आदि नहीं रहते हैं । अत: वे वापिस कभी भी मनुष्य लोक में नहीं आते हैं

प्रश्न-७ : सिद्ध भगवान की स्तुति से हमें क्या लाभ है ?

उत्तर : महान पुरुषों के गुणग्राम करने से हमारे पुराने कर्मों की निर्जरा होती है । पाप कर्म का बंध नहीं होता है । सद्बुद्धि पैदा होती है जिससे हम भी उनके समान बनने का पुरुषार्थ कर मोक्ष प्राप्त कर सकते हैं ।

प्रश्न-८ : सिद्ध भगवान राग-द्वेष रहित हैं तो उनसे 'प्रसन्न होने के लिये व मोक्ष देने के लिये' प्रार्थना क्यों की जाती है ?

उत्तर : उनके प्रति हमारा आदर भाव प्रकट होता है ऐसी प्रार्थना करने से हमें मोक्ष प्राप्ति की लगन व योग्यता प्राप्त होती है और उनके उपदेश को धारण करने की भावना द्रढ बनती है, जिससे हम संयम पालन कर समाधि और सिद्धि को प्राप्त कर सकते हैं।

प्रश्न-९ : तीर्थंकर भगवान सूर्यों से भी अधिक कौन सा प्रकाश करते है ?

उत्तर : आत्म ज्ञान रूप भाव प्रकाश करते हैं और अज्ञान रूप अंधकार को नष्ट करते हैं । सूर्य मनुष्य क्षेत्र को प्रकाशित करता है और तीर्थंकर

भगवान केवल ज्ञान से सम्पूर्ण लोक को प्रकाशित करते हैं ।

सामायिक व्रत लेने का पाठ :-

प्रश्न-१ : सामायिक व्रत किसे कहते हैं ?

उत्तर : जिस व्रत में १८ पापों का त्याग किया जाता है और समभाव को धारण किया जाता है, उसे सामायिक कहते हैं ।

प्रश्न-२ : सामायिक व्रत कितने समय का होता हैं ?

उत्तर : सामायिक का निश्चित समय एक मुहुर्त (४८ मिनिट) का है। इसे एक सामायिक करना कहा जाता है ।

प्रश्न-३ : करण किसे कहते हैं ?

उत्तर : करना, कराना और अनुमोदन करना रूप क्रिया को करण कहते हैं।

प्रश्न-४ : योग किसे कहते हैं ?

उत्तर : मन, वचन और काया के व्यापार-प्रवृत्ति को योग कहते हैं ।

प्रश्न-५ : दो करण तीन योग क्या हैं ?

उत्तर : १८ पाप, मन से वचन से और काया से करना नहीं और कराना भी नहीं ।

प्रश्न-६ : मन से करना क्या है ? यथा मैं फल तोडूँ ।

उत्तर : पाप करने का मन में संकल्प करना ।

प्रश्न-७ : मन से कराना क्या है ?

उत्तर : पाप कराने का मन में संकल्प करना ।मैं नोकर को फल तोडने का कहूँ ।

प्रश्न-८ : मन से अनुमोदन क्या है ?

उत्तर : पाप कार्यों को मन में अच्छा समझना । फल तोडकर लाया उसे अच्छा समझना, प्रसन्न होना ।

प्रश्न-९ : वचन से करना क्या है ?

उत्तर : पाप कार्य के संकल्प को वचन से प्रकट करना । यह फल तोडूँ या तोडता हूँ ऐसा बोलना ।

प्रश्न-१० : वचन से कराना क्या हैं ?

उत्तर : पाप कार्य करने के लिये दूसरे को कहना ।यथा फल तोडने का आदेश देना ।

प्रश्न-११ : वचन से अनुमोदन क्या है ?

उत्तर : पाप कार्य की तथा पाप कार्य करने वाले की प्रशंसा करना । 'बहुत बढ़िया किया' आदि बोलना ।

प्रश्न-१२ : काया से करना क्या है ?

उत्तर : स्वयं अपने हाथ आदि से पाप कार्य करना ।

प्रश्न-१३ : काया से कराना क्या है ?

उत्तर : दूसरों को करने के लिये हाथ-मुँह आदि से ईशारा करना ।

प्रश्न-१४ : काया से अनुमोदन क्या है ?

उत्तर : पाप कार्य करने वाले के उस कार्य से प्रसन्नता व्यक्त करना अर्थात् हँसना, अभिनंदन करना, पीठ थपथपाना आदि । तथा पाप कार्य से निष्पन्न वस्तु का उपयोग करना तथा उसमे आनंद अनुभव की एक्टिंग करना ।

प्रश्न-१५ : अठारह पाप कौन से हैं ।

उत्तर : १. हिंसा, २. झूठ, ३. चोरी, ४. मैथुन, ५. परिग्रह, ६. क्रोध, ७. मान, ८. माया, ९. लोभ, १०. राग, ११. द्वेष, १२, कलह, १३. कलंक लगाना, १४. चुगली करना, १५. दूसरों की निंदा करना, १६. सुख-दुःख में हर्ष शोक करना, १७. कपट युक्त झूठ बोलना, किसी को ठगना । १८. धर्म सम्बन्धी विपरीत मान्यता रखना या जिनवाणी से विरुद्ध समझ रखना ।

सिद्ध स्तुति -

प्रश्न-१ : इस पाठ में क्या वर्णन है ?

उत्तर : इस पाठ में अरिहंत और सिद्ध भगवान के अनेक गुणों का वर्णन है । इन गुणों से उनकी स्तुति करते हुए उन्हें नमस्कार किया है ।

प्रश्न-२ : इस पाठ को 'शक्र स्तव' कयों कहा जाता है ?

उत्तर : प्रथम देवलोक का इन्द्र शक्रेन्द्र है वह अपने स्थान पर ही इस पाठ से अरिहंत सिद्ध भगवान की स्तुति नमस्कार करता है । इसलिये इसे शुक्रस्तव- **शक्रेन्द्र के द्वारा की जाने वाली स्तुति** कहा जाता है।

प्रश्न-३ : यह पाठ दो बार क्यों बोला जाता है ?

उत्तर : प्रथम बार में सिद्ध भगवान की स्तुति की जाती है और दूसरी बार

में वर्तमान तीर्थंकर की स्तुति और नमस्कार किया जाता है ।

प्रश्न-४ : लोगस्स और णमोत्थुणं में क्या अंतर है ?

उत्तर : लोगस्स में २४ तीर्थंकरों का नाम, स्तुति, कीर्तन, नमन, प्रार्थना है । णमोत्थुणं में अरिहंत सिद्धों के अनेक गुणों का कीर्तन करते हुए नमस्कार किया है । किसी का नाम नहीं है ।

प्रश्न-५ : संपत्ताणं और संपाविउकामाणं में क्या अंतर है ?

उत्तर : संपत्ताणं का अर्थ है- मोक्ष प्राप्त किये हुए सिद्ध भगवान । संपाविउकामाणं का अर्थ है- मोक्ष प्राप्ति के इच्छुक अर्थात् शीघ्र ही मोक्ष प्राप्त करने वाले अरिहंत भगवान जिसे जिस फल की प्राप्ति होना हो उसे उसका इच्छुक कहा जा सकता है यथा- नरक में जाने योग्य कार्य करने वाला नरकायु का इच्छुक कहा जाता है ।

सामायिक पारने का पाठ(एयस्स णवमस्स)-

इस नवमें सामायिक व्रत के पाँच अतिचार जानने योग्य है किन्तु आचरण करने योग्य नहीं है वे इस प्रकार है उनकी आलोचना करता हूँ। **१.** सामायिक के समय मन में अशुभ चिंतन किया हो **२.** अयोग्य वचन बोले हों **३.** काया से अयोग्य कार्य किए हों **४.** सामायिक को या सामायिक लेने के समय को भूल गया हो **५.** सामायिक को अनवस्थित रूप से की हो । नियमों का बराबर पालन न किया हो तो वह मेरा पाप निष्फल हो ।

सामायिक का काया से सम्यक् स्पर्श न किया हो, पालन न किया हो, शुद्धता पूर्वक न की हो, उसे पूर्ण न किया हो, कीर्तन न किया हो, आराधन न किया हो, आज्ञा के अनुसार पालन न किया हो तो उससे होने वाला मेरा पाप निष्फल हो ।

सामायिक के ३२ दोष-

मन के दस दोष :-१. अविवेक- सामायिक में आहार, भय, मैथुन, परिग्रह के संकल्प करना। विवेक (उपयोग) रखे बिना सामायिक करना। **२.** यश-कीर्ति- यश के लिये सामायिक करना । **३.** लाभार्थ- धन-पुत्र आदि लाभ के लिये सामायिक करना । **४.** गर्व- घमण्ड में आकर सामायिक करना । **५.** भय- किसी के ड़र से या दबाव से सामायिक करना । **६.** निदान- सामायिक के फल से परभव में भौतिक सुख प्राप्ति

का संकल्प करना । **७.** संशय- सामायिक के फल मे संदेह रखना । **८.** रोष- सामायिक में गुस्सा करना, कषाय करना । **९.** अविनय- सामायिक में देव गुरु का बराबर विनय नहीं करना। **१०.** अबहुमान- सामायिक के प्रति हृदय में आदर भाव न रखना ।

वचन के दस दोष-

१. कुवचन- खराब शब्द बोलना, गाली देना, खिंसना करना ।**२.** सहसाकार- बिना विचारे बोलना । **३.** स्वछंद- सांसारिक गीत या अस्लील गीत आदि बोलना । **४.** संक्षेप- सामायिक के पाठ आदि संक्षिप्त कर बोलना । **५.** कलह- क्लेशकारी वचन बोलना, कलह करना । **६.** विकथा- देश कथा, राजकथा, स्त्रीकथा, आहार कथा करना या इन विकथाओं युक्त पत्रिका समाचार पत्र आदि पढ़ना । **७.** हास्य- हँसी मजाक करना, अन्य को हँसाना । **८.** अशुद्ध- सामायिक के पाठों को अशुद्ध बोलना अथवा सामायिक में अकल्पनीय भाषा बोलना यथा-अव्रती को आवो, पधारो, जावो आदि आदर या आदेश सूचक शब्द या सावद्य वचन बोलना । **९.** निरपेक्ष- मेरे सामायिक है इसकी सावधानी रखे बिना बोलना । **१०.** मुणमुण- स्पष्ट उच्चारण न करना ।

काया के बारह दोष :- १. कुआसन- पाँव पर पाँव रख कर या पाँव फैलाकर बैठना अर्थात् अभिमान व अविवेक पूर्ण आसन से बैठना । **२.** चलासन- आसन स्थिर नहीं रखना, बिना खास कारण के इधर उधर फिरते रहना । **३.** चलदृष्टि- ज्ञान ध्यान में एकाग्र न होकर इधर-उधर देखते रहना। **४.** सावध क्रिया- स्वाध्याय, धर्मध्यान आदि धार्मिक कार्य के सिवाय अन्य गृह कार्य या समाज कार्य करना । **५.** आलंबन- सहारा लेकर बैठना या खड़ा रहना । **६.** आकुंचन प्रसारण - बारंबार हाथ पैर आदि को अकारण इधर उधर करना फैलाना । **७.** आलस- आलस्य करना, सुश्त बैठना । **८.** मोडन- अंगुलि आदि के जोडों का कडका निकालना । **९.** मल- शरीर के किसी अवयव का मैल उतारना निकालना । **१०.** विसामण- आर्तध्यान करना, शोकासन से बैठना अथवा सामायिक में बिना देखे या बिना पूंजे हिलना, चलना तथा खाज करना । **११.** निद्रा- सामायिक में सोना या बैठे बैठे निंद्रा लेना । **१२.**

वेयावच्च- शरीर की सेवा शुश्रुसा करना या कराना ।

ज्ञातव्य- (१) सामायिक के विधि दोषों का ज्ञान अवश्य करना चाहिये। (२) ज्ञान के बाद ईमानदारी से सभी दोषो से रहित सामायिक करनी चाहिये (३) सामायिक में कोई भी दोष नहीं लगे ऐसी लगन रखनी चाहिये। (४) सामायिक में समय मात्र भी प्रमाद नहीं करना चाहिये । समाचार पत्र या उपन्यास नहिं पढ़ने चाहिये । (५) सामायिक में आत्म चिंतन एवं धार्मिक पुस्तकों का वांचन करना चाहिये या धर्म वार्ता श्रवण करना चाहिये । (६) सामायिक में अधिकतम मौन रखनी चाहिये । (७) दोष रहित सामायिक करने से ही श्रेष्ठ फल की प्राप्ति होती है ।

लाख खंडी सोना तणी, लाख वर्ष दे दान ।
सामायिक तुल्ये नहीं, इम भाख्यो भगवान ।।

चौबीस घंटो में एक घंटा निकाल कर प्रतिदिन सामायिक अवश्य करनी चाहिये ।

सामायिक-

प्रश्न-१ : सामायिक कहाँ करनी चाहिये ?

उत्तर : धर्म स्थान में या एकांत और शांत तथा जीव जन्तु रहित स्थान में करनी चाहिए । रात्रि में छत युक्त स्थान में करनी चाहिये ।

प्रश्न-२ : सामायिक में वेष कैसा होना चाहिये ?

उत्तर : सांसारिक कुर्ता पेंट आदि सिले वस्त्र उतार कर श्वेत दुपट्टा मुहपत्ति और चोलपट्टा पहनना चाहिये ।

प्रश्न-३ : सामायिक के उपकरण क्या है ?

उत्तर : आसन, मुँहपत्ति, दुपट्टा, चोलपट्टा, पूँजणी ये आवश्यक उपकरण है तथा ज्ञान ध्यान के लिये माला व धार्मिक पुस्तकें रखना चाहिये ।

प्रश्न-४ : मुख वस्त्रिका आदि का क्या माप हैं ?

उत्तर : मुखवस्त्रिका=२१ अंगुल लंबी+१६ अंगुल चौडी । दुपट्टा=२ मीटर लंबा + १ मीटर चौड़ा । चोलपट्टा=२ मीटर लंबा+३/४ पौन मीटर चौड़ा ।

प्रश्न-५ : मुखवस्त्रिका किस प्रकार रखनी चाहिये ?

उत्तर : मुख पर रहने वाला वस्त्र ही मुखवस्त्रिका कहा जाता है। अत:

आठ पट करके ५ अंगुल चौड़ी और ८ अंगुल लंबी मुख वस्त्रिका के बीच में डोरा लगा कर मुंह पर बाँधना चाहिये ।

प्रश्न-६ : मुख वस्त्रिका बांधने के क्या कारण है ?

उत्तर : (१) इसका नाम ही मुख-वस्त्रिका है (२) सामायिक में खुले मुँह से बोलना नहीं कल्पता है (३) खुले मुँह बोलने से सावद्य भाषा होती है। (४) खुले मुँह बोलने से वायुकाय आदि जीवों की विराधना होती है । (५) खुले मुँह बोलने से दूसरों पर थूक गिरता है तथा पुस्तक आदि धार्मिक उपकरणों पर भी थूक गिरता है । (६) धार्मिक आचरण का यह चिन्ह है । अत: मुख वस्त्रिका मुख पर बांध कर ही समायिक की जाती है ।

प्रश्न-७ : मुख वस्त्रिका हाथ में रखने में क्या दोष है ?

उत्तर : (१) हाथ में रहने वाला 'कर-वस्त्र' (रूमाल) कहा जाता है, मुख वस्त्रिका नहीं । (२) हाथ में रखने से अधिकतर खुले मुंह बोला जाता है । जिसमें (१) सामायिक का नियम भंग होता है (२)दूसरों पर थूक गिरता है (३) उनकी भाषा सावध (पापकारी) होती है । (४) वायुकाय आदि जीवों की विराधना होती है । (५) शास्त्र आदि पर थूक गिरता है ।

(३) दोनों हाथ जोड़ कर गुरु वंदन करते हुए मुख वस्त्रिका का मुख पर रहना आवश्यक होता है उसका पालन भी हाथ में रखने से नहीं होता है।

(४) मुखवस्त्रिका हाथ में रखकर सामायिक करने वाले देरावासी मूर्तिपूजक श्रावक-श्राविका खुले मुँह से अयतना करते हुए बोलते रहते हैं । इससे स्पष्ट ही भगवान की आज्ञा का उल्लंघन होता है । अत: मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधकर ही सामायिक करनी चाहिये ।

प्रश्न-८ : सामायिक करने से क्या-क्या लाभ हैं ?

उत्तर : १. एक मुहुर्त के लिये हिंसा आदि १८ ही पाप छूट जाते हैं। २. संसार के अनेक प्राणियों को अभयदान मिलता है । ३. सांसारिक जीवन से विश्रांति मिलती है । ४. शांति और समभाव की प्राप्ति होती है । ५. एक मुहूर्त तक धार्मिक अभ्यास, चिंतन, मनन, शास्त्र श्रवण, वांचन या मुनि चरणों की सेवा का लाभ मिलता है। ६. जिससे हमारी धार्मिक रुचि, वैराग्य, ज्ञान की वृद्धि होती है। ७. कई प्रकार की शिक्षाएँ पढ़ने

सुनने को मिलती है । ८. जिससे क्लेश कषाय छूटता है । ९. धन परिग्रह की और विषय सुख की आसक्ति छूटती है । १०. सामायिक में पाप का सेवन छूटने से बहुत नया कर्म बंध छूट जाता है । ११. ज्ञान ध्यान आदि से पुराने पाप कर्म भी नष्ट होते हैं । १२. जिससे आत्मा हलुकर्मी बनती है और नये नये व्रत लेने की भावना होती है । अत: प्रतिदिन कम से कम एक सामायिक अवश्य करनी चाहिये ।

प्रश्न-९ : रेलगाडी आदि में सामायिक हो सकती है ?

उत्तर : वाहन में संवर और नित्य नियम वांचना आदि कर सकते हैं। वाहन जहाँ अधिक समय रुके वहाँ पर उतरकर एकांत स्थान मिलने पर सामायिक कर सकते हैं ।

प्रश्न-१० : सामायिक विधि सहित ही लेनी चाहिये ?

उत्तर : संपूर्ण पाठ कंठस्थ हो तो सामायिक विधि पूर्वक ही लेना चाहिये और विधी पूर्वक ही पारनी चाहिये । संपूर्ण पाठ कंठस्थ न हो तो सामायिक लेने के पाठ से (करेमि भंते से) लेनी चाहिये या साधु साध्वी अथवा अन्य किसी से प्रत्याख्यान करना चाहिये । सामायिक की वेशभूषा-चद्दर, चोलपटा युक्त करनी चाहिए। यदि कभी साधन न हो या अवसर न हो तो मुँहपत्ति लगाकर संसारी वेशभूषा से भी सामायिक की जा सकती है । परंतु लक्ष्य सामायिक की शुद्ध वेशभूषा का ही रखना चाहिये । संसारी वेशभूषा का ढर्रा नहीं चलाना चाहिये ।

प्रश्न-११ : कोई प्रत्याख्यान कराने वाला भी न हो तो क्या करना?

उत्तर : ऐसी स्थिति में यदि किसी को सामायिक करना हो तो योग्य स्थान में विधि पूर्वक बैठकर तीन बार नमस्कार मंत्र गिन कर वंदन करके मैं सामायिक ग्रहण करता हूँ । ऐसा संकल्प कर लेना और समय पूर्ण होने पर सामायिक पारने के संकल्प से वंदन करके तीन बार नमस्कार मंत्र गिन लेना । इस प्रकार भी सामायिक हो सकती है ।

निबंध-१००

वन्दना, कायोत्सर्ग और पौषध के दोष

वन्दना के ३२ दोष :-

(१) आदरभाव के बिना वन्दना करना ।

(२) जातिमद आदि से गर्वान्वित होकर वन्दना करना ।

(३) अस्थिर होकर वन्दना करना या वन्दना अधूरी छोडकर चल देना ।

(४) एक स्थान पर रहे हुए आचार्यादि को पृथक-पृथक वन्दना न करके एक ही वन्दना करना ।

(५) टिड्डे की तरह आगे पीछे कूदकर वन्दना करना ।

(६) रजोहरण को अंकुश की तरह दोनों हाथों से पकड़ कर वन्दना करना अथवा वन्दना करने के लिए अवज्ञापूर्वक आचार्यादि को आसन पर बिठलाना ।

(७) कछुए की तरह रेंगते हुए(आगे-पीछे चलते हुए)हुए वन्दना करना ।

(८) आचार्यादि को वन्दना कर, बैठे-बैठे ही मछली की तरह पसवाडा फेर कर पास में बैठे हुए साधुओं को वन्दना करना ।

(९) वन्दनीय श्रमण आदि में गुण विशेष नहीं है एसा भाव मन में रखकर असूया(अनादर) पूर्वक वन्दना करना । अथवा किसी कारण से मन में द्वेष रखते हुए वन्दना करना ।

(१०) एक घुटने को अथवा दोनों घुटनों को दोनों हाथों के बीच में रखकर या दो घुटनों के बीच हाथ रखकर वन्दना करना ।

(११) आचार्यादि कहीं गच्छ से बाहर न कर दें इस भय से उन्हें वन्दना करना ।

(१२) आचार्यादि को आगे-पीछे अनुकूल बनाये रखने हेतु, हम आपको वन्दना करते हैं ऐसा बोलकर वन्दना करना ।

(१३) आचार्यादि से मैत्री स्थापना निमित्त वन्दना करना ।

(१४) यह साधु वन्दना विषयक समाचारी में कुशल-सावधान हैं ऐसी प्रतिष्ठा जमाने के भाव से वन्दना करना ।

(१५) ज्ञान, दर्शन, चारित्र के सिवा अन्य ऐहिक अपेक्षाओ से वन्दना करना।

(१६) चोर की तरह छिपकर अथवा दूसरों की दृष्टि बचाते हुए वन्दना करना ।

(१७) गुरु आदि आहार-नीहार करते हों उस समय उन्हें वन्दना करना ।

(१८) क्रोध से जलते हुए वन्दना करना ।

(१९) तर्जना (उलाहना) देते हुए अथवा धमकी देते हुए वंदना करना ।

(२०) भाव बिना सिर्फ दिखावे के लिए वन्दना करना । अर्थात् कोई देखते हो तो विधिपूर्वक वन्दना करना और नहीं देखते हो तो राजवेठ की तरह वन्दना करना ।

(२१) हीलना करते हुए अर्थात आपको वन्दना करने से क्या लाभ ऐसी अवेलना पूर्वक वंदना करना ।

(२२) वन्दना पूरी करने के पहले ही बातें शुरू कर देना ।

(२३) कोई नहीं देखे तो कितने ही साधु को वन्दना करना छोडकर चुपचाप बैठ जाना और देखे तो वन्दना कर लेना ।

(२४) अंजली को मस्तक के मध्य में न रखते हुए आजु-बाजु रखकर वन्दना करना ।

(२५) वन्दना को अरिहंत भगवान का टेक्ष मानकर वन्दना करना अर्थात् निर्जरा के लिए वन्दना नहीं करना ।

(२६) विवशता पूर्वक अर्थात् वन्दना के बिना मुक्ति नहीं ऐसा सोचते हुए वंदना करना ।

(२७) आर्वतन के समय मस्तक झुकाना वगेरे पूर्ण विनय नहीं करना।

(२८) आवश्यक विधि से अधूरी विधि करते हुए वन्दना करना ।

(२९) वन्दना करते उंचे स्वरसे 'मत्थएण वंदामि' बोलना अथवा हम आपको वन्दना करते हैं ऐसा उच्च स्वर सें बोलना ।

(३०) वन्दना के पाठ का उच्चारण न करते हुए मूकवत् वंदना करना।

(३१) वन्दना के पाठ को उच्च स्वर से बोलते हुए वन्दना करना ।

(३२) रजोहरण, पूँजणीको पकड कर घुमाते हुए वन्दना करना । -***(हारि-भद्रीयआवश्यक वन्दनाध्ययन गाथा १२०७ से १२११; प्रवचनसारोंद्धार दूसरा द्वार गाथा-१५० से १७३)***

कायोत्सर्ग के उन्नीस दोष :-

(१) घोडे की तरह एक पैर को आकुंचित कर(मोडकर) खडे रहना।
(२) तेज हवा से प्रकम्पित लता की तरह काँपना ।
(३) खम्भे या दिवाल का सहारा लेना ।
(४) सिर को छत या दिवाल से अडाकर कायोत्सर्ग करना ।
(५) दोनों हाथ गुह्यस्थान पर रख कर खड़े रहना ।
(६) कुलवधू की तरह मस्तक झुका कर खड़े रहना ।
(७) दोनों पैर फैला कर या मिलाकर खड़े रहना ।
(८) चोलपट्टे को नाभि से ऊपर और घुटने से उंचे करके खड़े रहना।
(९) चोलपट्टे से छाती ढककर कायोत्सर्ग करना ।
(१०) एडी मिला कर और पंजों को फैला कर खड़े रहना अथवा अंगूठे मिलाकर एडी फैला कर खड़े रहना ।
(११) पूरा शरीर कपडे से ढककर कायोत्सर्ग करना ।
(१२) लगाम की तरह रजोहरण को आगे रख कर खड़े रहना ।
(१३) कौवे की तरह चंचलचित्त होकर इधर-उधर आँखें घुमाना ।
(१४) चोलपट्टे को गोलाकार मोड करके जंघा के बीच मे फँसाकर खड़े रहना।
(१५) भूत लगे हुए व्यक्ति की तरह सिर धुनते हुए खड़े रहना ।
(१६) हुँ हुँ आदि शब्द करते हुए कायोत्सर्ग करना ।
(१७) आलापकों को अंगुली पर गिनते हुए कायोत्सर्ग करना या भोंह चला कर संकेत करना ।
(१८) बुड-बुड जैसे अव्यक्त शब्द करते हुए कायोत्सर्ग करना अथवा शराबी की तरह झुमते हुए खड़े रहना ।
(१९) वानर की तरह ओठों को चलाना ।- ***(हरिभद्रीयआवश्यक अ.५ गा. १५४६-४७; प्रवचनसारोद्धार द्वार-५ गाथा -२४७-२६२)***

पौषध के अठारह दोष :-

(१) पौषध निमित ठूंस-ठूंस कर सरस आहार करना ।
(२) पौषध की पहली रात्री में मैथुन सेवन करना ।

(३) पौषध के लिए नख, केश आदि का संस्कार करना ।
(४) पौषध के ख्याल से वस्त्र धोना धुलवाना ।
(५) पौषध के ख्याल शरीरकी शूश्रूषा करना ।
(६) पौषध निमित आभूषण पहनना ।
(७) पौषध में अव्रती से वैयावृत्य करवाना ।
(८) शरीरका मेल उतारना ।
(९) बिना पूंजे शरीर खुजलाना ।
(१०) दिन में नींद लेना, प्रहर रात जाने से पहले सो जाना और पिछली रात में उठकर धर्मजागरण न करना ।
(११) बिना पूँजे परठना ।
(१२) निंदा, विकथा और हँसी-मजाक करना ।
(१३) सांसारिक बातों की चर्चा करना ।
(१४) स्वयं डरना या दूसरों को डराना ।
(१५) कलह करना ।
(१६) खुले मुँह अयतना से बोलना ।
(१७) स्त्री के अंग उपांग निरखना ।
(१८) पौषध में काका, मामा आदि सांसारिक सम्बन्ध के नाम से सम्बोधन करना । - ***(श्रावक के चार शिक्षाव्रत ।)***

-: सूचना-संदेश :-

(१) जिन संघों को ६००/-की कीमत का जैनागम नवनीत प्रश्नोत्तर १० पुस्तकों का संपूर्ण सेट मुफ्त मंगवाना हो तो १००/- व्यवस्था खर्च रूप में खाते में जमा करके अपनी बुकिंग कर लें जून-२०१५ तक ।

(२) पर्युषण में सेवा देने वाले स्वाध्यायी को उपरोक्त सेट मुफ्त चाहिए तो उन्हें २००/- व्यवस्था आदि(कर्मचारी-पोष्ट-पेकिंग)खर्च हेतु खाते में जमा करवा कर बुकिंग करें जून-२०१५ तक ।

(३) हमारे पास १०० सेट स्टोक में हैं । वह स्टोक समाप्त हो जाने पर जिन्हें सेट नहीं भेज सकेंगे उनके १०० या २०० रूपये वापिस पहुँचा दिया जायेगा। अत: बुकिंग शीघ्र कराने का ध्यान रखें ।

(४) खाता नं.व्यवस्थित ढंग से निबंधमाला भाग-३ या ४ में पृष्ट-४ देखें।

(५) मनीओर्डर भी स्वीकार्य होगा ।

(६) अपना एड्रेस पिन कोड सहित हमारे मोबाईल में या पोष्टकार्ड आदि में जरूर भेजना ।

(७) संलेखना संथारा संबंधी **अपनी बात** का मेटर इस पुस्तक के पृष्ट-१० में है । **विशेष:** १-२ महिना संथारा तारीख आगे-पीछे भी की जा सकती है उसके निर्णय की सूचना पाँचवें भाग में यथाशक्य कर दी जायेगी ।

(८) जिनको आगम ज्ञान चर्चा आदि का लाभ लेना हों, वे संत-सती श्रावक आदि संवत २०१५के डिसेम्बर तक लाभ ले सकते हैं । २०१६में मौन व्रत चालु होगा ११ महिने का ।

(९) जो कोई भी आगम जिज्ञासु अपने गाँव में बुलाकर ज्ञान लाभ दो-चार दिन का लेना चाहेंगे उन्हें पहले सारांश, प्रश्नोत्तर एवं निबंध की कुल २३ पुस्तकें (८+१०+५) पढकर प्रश्न संकलन करने होंगे तभी बुलाना और स्वीकृती संयोग हो सकेगा । निमंत्रक साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका कोई भी हो सकेंगे ।

(१०) संलेखना, संथारा तारीख का रहस्य जानना हो तो निबंधमाला भाग-३ पृष्ठ-२४९ पर पढें ।

(११) ऐच्छिक सहयोग कोई भी भेज सकते हैं इसमें आग्रह प्रतिबंध नहीं है ।

(१२) मोबाईल नंबर का उपयोग २०१५ के डिसेम्बर के बाद नहीं किया जा सकेगा । पत्र संपर्क चालु रहेगा ।

निवेदक : आगम मनीषी त्रिलोकचंद जैन